विकास

(द्वितीय भाग)

लेखक

श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए०, एल्-एल्० बी०

(विदा और विजय के यशस्वी लेखक)

प्रकाशक

राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल

मछुआटोली

पटना

द्वितीयावृत्ति

[सजिल्द ३)] सं० २००० वि० [सादी २॥)]

(११)

डॉक्टर नीलकंठ ने [illegible] कहा—"आभा, तुम क्या कर रही हो ?"

आभा अपनी धाय-मा के साथ बैठी कुछ परामर्श कर रही थी। गंगा और आभा ने उत्सुकता के साथ उनकी ओर देखा। आभा प्रसन्न वदन से उठकर तेज़ी के साथ उनके पास आकर खड़ी हो गई। उसकी आँखों से सौंदर्य का उज्ज्वल प्रकाश निकल रहा था, और उसके पीछे उत्साह झाँक रहा था। डॉक्टर नीलकंठ उसकी उत्फुल्लता देखकर चुप हो गए उनके मन का भाव मन ही में रह गया। भारतेंदु के साथ जो बातचीत हुई थी, उसका निष्कर्ष गंगा को सुनाना चाहते थे।

आभा ने पूछा—"क्या है पापा ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने बात टालते हुए कहा—"कुछ नहीं, यों ही बुलाया था। तू अच्छी तो है ?"

आभा ने उत्तर दिया—"जी हाँ, आप कुछ कहना चाहते हैं, लेकिन कहते क्यों नहीं ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"क्या कहूँ। हाँ, याद आया। तूने एक दिन कहा था कि मैं पृथ्वी-भ्रमण करने जाऊँगी। क्यों, याद है ?"

आभा का उत्साह छलाँगें भरने लगा।

उसने उत्तर दिया—"हाँ, मैंने कहा था, और अब भी मेरी इच्छा पृथ्वी-भ्रमण की है।"

का भाव भी प्रकट होने देना नहीं चाहती थी। उसके चित्त की व्याकुलता और संकोच से तो यही मालूम होता था कि कोई शोक-संवाद है। वह सहसा काँपने लगी। डॉक्टर नीलकंठ ने कोई चिंता प्रकट नहीं की, किंतु उनके आने से उसका संकोच किसी हद तक कम हो गया।

आभा दूसरे कमरे में जाकर उनकी बातचीत सुनने लगी।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"गंगा, यह तो तुम्हें मालूम है कि आभा का विवाह-संबंध भारतेंदु से ठीक किया है। सब तरह से दोनों एक दूसरे के उपयुक्त हैं, किंतु आज मुझे एक नए भेद का पता चला है, जिसकी वजह से कुछ शंका उत्पन्न हो गई है।"

गंगा ने अधीर होकर पूछा—"आप तो कहते नहीं। मेरी चिंता बढ़ रही है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"बात यह है कि अब तक मैं समझता था कि भारतेंदु एक विशाल संपत्ति का उत्तराधिकारी होगा, और उसके साथ विवाह होने से आभा को आर्थिक कष्ट का सामना नहीं करना पड़ेगा, जैसा हमें करना पड़ा था।"

गंगा ने कहा—"मुझे वे दिन बहुत अच्छी तरह याद हैं। बिटिया की वह तकलीफ़ याद आ जाने से अब भी मेरा मन दुःखित हो उठता है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने एक ठंडी साँस के साथ कहा—"तुम्हें तो सब कुछ मालूम है। उसके तमाम गहने बेचकर मैं इँगलैंड गया था, और फिर कई वर्षों बाद वैसे ही दूसरे गहने बनवाकर दे सका था। निर्धनता मनुष्य के लिये महान् शाप है—ईश्वर का कोप है। मैं उसके दारुण प्रसाद से पूर्णतया अवगत हूँ। यह सत्य है कि मैं उसे वे कष्ट नहीं होने दूँगा, जिन्हें स्वयं भुगत चुका हूँ, किंतु उसकी विशाल संपत्ति इस प्रकार नष्ट होते भी तो नहीं देख सकता।"

गंगा ने अधीर कंठ से पूछा—"क्या पंडितजी ने कोई जाल रचा था, या वह भी दग़ाबाज़ निकले ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"नहीं, यह बात तो नहीं है। उन्होंने कोई जाल नहीं रचा, और न वह दग़ाबाज़ हैं। इसमें तिल-मात्र संदेह नहीं कि वह करोड़पति हैं, और उनका कारबार विशाल है।"

गंगा ने अधिक उद्विग्नता के साथ पूछा—"तो आख़िर बात क्या है ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने खेद के साथ कहा—"उन्होंने अपनी सब संपत्ति दान करने का विचार कर लिया है। इन दिनों एक नई लहर उठी है कि कोई व्यक्ति अपने पास संपत्ति रखने का अधिकारी नहीं है, मनुष्य-मात्र का उस संपत्ति पर अधिकार है। इसे कहते हैं साम्यवाद, यानी सब कोई बराबरी के साथ रहे। इसी विचार के माननेवाले वह हैं, और उन्होंने अपनी समग्र संपत्ति उन मज़दूरों में बराबर बाँट देने का विचार किया है, जो उनकी खानों पर काम करते हैं।"

गंगा ने विस्मित स्वर में पूछा—"और, अपने लड़के के लिये एक पैसा भी न रक्खेंगे ? यह कैसी बात है। आजकल का ज़माना उलटा हो गया है। अभी तक तो यह रिवाज था कि मनुष्य अपनी संतान के लिये सब कुछ संचय करता था, और अब संतान को फूटी कौड़ी न देकर ऐरे-ग़ैरों का घर भर देगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"हाँ, आजकल रंग कुछ ऐसा ही है। भारतेंदु कह रहा था कि यह काम उसकी सम्मति से हुआ है। बाप का रंग बेटे पर भी चढ़ रहा है। इसी से तो मुझे चिंता होती है कि कहीं आभा को कष्ट न हो !"

गंगा ने करुण स्वर में पूछा—"अच्छा, अब उपाय क्या है ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"इलाज क्या है ? आभेंदु कह रहा था कि जो कुछ उनके पिता निश्चय कर लेते हैं, उसे कभी बदलते नहीं । वह अपनी सब संपत्ति अवश्य दान कर देंगे ।"

गंगा ने कहा—"दूसरे बच्चों की भी सम्मति ले लेना चाहिए, क्योंकि वह अब अपना भला-बुरा समझते हैं ।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"तुम सब हाल सुनाकर आभा से कह देना, और उसका विचार भी जान लेना । मुझसे वह कदापि हृदय का भेद नहीं कहेगी ।"

गंगा ने कहा—"पंडितजी का पागलपन क्या किसी तरह रोका नहीं जा सकता ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"मैं भी इन्हें एक बार समझाना चाहता हूँ, देखूँ, क्या असर पड़ता है । वह अभी तक तो फ़िज़ी में हैं । इसके लिये मुझे जाना पड़ेगा । आभा को भी साथ ले जाना चाहता हूँ, और अगर तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम भी चलो ।"

गंगा ने मलिन स्वर में कहा—"मैं जाकर क्या करूँगी । हाँ, अगर बिटिया होती, तो ज़रूर जाना पड़ता । वह मेरे बग़ैर एक क़दम बाहर न निकलती थी ।"

कहते-कहते गंगा का कंठ-स्वर स्मृति की करुणा से आर्द्र हो गया । डॉक्टर नीलकंठ भी विकल हो गए ।

डॉक्टर नीलकंठ ने शांत होते हुए कहा—"वह नहीं है, मैं तो हूँ । मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा । इससे आभा की तरफ़ से मैं निश्चिंत रहूँगा ; तुम भी देश देख आओगी, आभा का ऐश्वर्य भी देख-सुन आओगी ।"

गंगा ने कुछ सोचते हुए कहा—"हाँ, यह एक प्रलोभन ज़रूर है । उसके लिये अगर इस बुढ़ापे में समुद्र पार करना पड़े, तो करूँगी ।

यह चिट्ठिया की धरोहर है, जब तक ठिकाने नहीं लगती, मेरा खाना-पीना सब निष्फल है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"वही मेरा हाल है।"

गंगा ने कहा—"उस पागल पंडित को समझाना चाहिए कि यह क्या अनर्थ कर रहे हो। जब भगवान् श्रीकृष्ण ने सुदामा के तंदुल दो मूठी खा लिए, और तीसरी मूठी भरकर खानेवाले थे कि रुक्मिणीजी ने उनका हाथ पकड़ लिया, और कहा था कि क्या अब अपने को सुदामा बनाना चाहते हो। ठीक वही हाल यहाँ है। उन्हें किसी तरह समझाना पड़ेगा कि यह गाढ़ी कमाई ग़रीबों को बाँटकर क्या अपने पुत्र और पुत्र-वधू को पथ का भिखारी बनाना चाहते हो।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"मैं तो कहूँगा ही, और अगर तुम्हें मौक़ा मिले, तो तुम भी खरी-खरी सुनाना।"

गंगा ने हँसकर कहा—"मैं उनसे कुछ न कहूँगी।" फिर जोश के साथ कहा—"अगर वह न मानेंगे, तो मैं भी कहने में कुछ उठा न रक्खूँगी। मैं रानी का अनिष्ट किसी तरह नहीं देख सकती।"

डॉक्टर नीलकंठ ने हँसकर कहा—"उन्हें हमारा कहना मानना पड़ेगा। स्वामी गिरिजानंद भी उनके साथ हैं, मुझे विश्वास है, वह भी हमारा पक्ष लेंगे।"

गंगा ने उठते हुए कहा—"अच्छा, अब जाती हूँ। जाने का विचार कब तक है?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"कल छुट्टी के लिये लिखूँगा, मंज़ूर होने पर तुरंत चल दूँगा। जहाँ तक समझता हूँ, बड़े दिन की छुट्टी तक हम लोग चल देंगे।'

गंगा ने कहा—"तब तो रास्ते में बड़ी सरदी होगी।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"नहीं, सरदी की चिंता मत करो। यह

सरदी रहेगी कातिक तक या और कुछ आगे तक दिखेगी । इसके आगे तो ऐसी गरमी होगी, जैसी यहाँ बैसाख-जेठ में होती है !"

गंगा ने चकित होकर पूछा—"इन दिनों वहाँ ऐसी गरमी ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"हाँ, यहाँ से वहाँ की ऋतुएँ विपरीत हैं । जब यहाँ सरदी पड़ती है, तो वहाँ गरमी पड़ती है, और जब यहाँ गरमी पड़ती है, तो वहाँ घोर शीत-काल होता है ।"

गंगा ने हँसकर कहा—"तभी वहाँ के आदमी भी उलटे विचार के होते हैं ।"

डॉक्टर नीलकंठ हँस पड़े । गंगा भी हँसती हुई कमरे के बाहर चली गई ।

डॉक्टर नीलकंठ उस कमरे में टहलने लगे । उनका मुख चिंता-ग्रस्त था । वह धीरे-धीरे टहलते हुए खिड़की के पास आकर खड़े हो गए । बाहर प्रकृति अपने उल्लास में मस्त होकर शीतल वायु के साथ खेल रही थी । उन्होंने अपने मन की वेदना दूर करनी चाही, परंतु वह उत्तरोत्तर बढ़ती रही ।

उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"देखूँ, आभा के भाग्य में क्या है ?"

सन्-सन् करती हुई वायु ने उनका उपहास करते हुए कहा—"आभा के भाग्य में क्या है ?"

वह प्रकृति का यह व्यंग्य सुनकर चकित-दृष्टि से वातायन के बाहर दूर—सुदूर गोमती पर उठते हुए कुहरे के पुंज को देखने लगे ।

---

(१२)

मालती अपनी मोटर का हॉर्न वारंवार और ज़ोर से बजाती हुई डॉक्टर नीलकंठ के बँगले के सामने आकर खड़ी हो गई। माली ने दौड़कर फाटक खोल दिया। वह मोटर लेकर आगे बढ़ी, लेकिन हॉर्न बराबर बजाती रही। आभा अपने कमरे में बैठी केश-विन्यास करने में संलग्न थी। इतनी आतुरता के साथ हॉर्न बजता हुआ सुनकर वह बिखरे हुए केशों के साथ बाहर की ओर दौड़ी। उसके सामने मालती की लाल रंग की 'ब्यूक' मोटर खड़ी थी, और वह तत्परता से हॉर्न बजा रही थी।

आभा ने मोटर के पास आकर कहा—"ओह, आप हैं! माफ़ कीजिएगा, आपके स्वागत के लिये मैं फाटक पर खड़ी न मिल सकी। मैं ताज्जुब में थी कि कौन एक भूकंप लेकर आया है। कुँवरानी साहबा की सवारी पधारी है, यह अब मालूम हुआ। स्वागत है, पधारिए।"

मालती अभी तक हॉर्न बजा रही थी, अब बंद करके बोली—"तुम्हारी बदतमीज़ी की सज़ा देने के लिये मैं एक व्यक्ति रास्ते से पकड़ लाई हूँ। आओ, अगर बेतों की मार से बचना चाहती हो, तो पिछली सीट का दरवाज़ा खोलो, और उसके आगे सिर नत कर, हाथ जोड़कर पहले प्रणाम करो, और फिर माफ़ी माँगो।"

आभा ने मुस्किराकर आगे बढ़ते हुए कहा—"कुँवरानी साहबा का जैसा हुक्म होगा, करना ही पड़ेगा। माफ़ी क्या, अगर हुज़ूर के सामने नाक रगड़ना पड़े, तो वह भी स्वीकार है।"

यह कहकर वह मोटर के आगे की ओर का दरवाज़ा खोलने लगी।

मालती ने उसका हाथ झिटकते हुए कहा—"बदतमीज़, हुक्म नहीं मानती। मैं यह दरवाज़ा खुद खोल लूँगी, तुम दूसरा दरवाज़ा खोलो।"

आभा अभी तक मालती के परिहास में इतनी लीन थी कि उसने मोटर के अंदर बैठे हुए व्यक्ति को न देखा था। उसके कहने से वह ज्यों ही झुककर उस बैठे हुए व्यक्ति को देखने लगी त्यों ही, शीघ्रता से, वह दो क़दम अपने आप पीछे हट गई। मालती ठहाका मारकर हँस पड़ी, और दूसरे ही क्षण आभा के गले से लिपट गई। अस्त-व्यस्त आभा अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी।

दूसरे ही क्षण मोटर का दरवाज़ा खोलकर भारतेंदु भी उतर पड़े।

मालती ने आभा को उनके सामने लाते हुए कहा—"भारतेंदु बाबू, आप इस भोली लड़की का क़ुसूर माफ़ कर दीजिए। यह पहला अवसर है, आइंदा कभी ऐसी ग़लती न करेगी। आपके आने की राह यह सुबह से शाम तक फाटक पर खड़ी होकर बराबर देखा करेगी।"

भारतेंदु भी शरमाकर दूसरी ओर देखने लगे। आभा का क्रोध और शरम से बुरा हाल था। वह बार-बार अपने को मालती से छुड़ाने की कोशिश कर रही थी, और वह उसे छोड़ती न थी।

मालती ने कहा—"आभा, डरने की ज़रूरत नहीं, अब वह नहीं मारेंगे। हाँ, आइंदा ऐसा क़ुसूर न करना। इस मौक़े पर तो मैंने कह-सुनकर तुम्हें बचा दिया, अब अगर ऐसा अपराध करोगी, तो तुम जानो।"

यह कहकर वह वेग से हँस पड़ी।

आभा ने धीमे स्वर में कहा—"मालती, क्या करती हो; देखो, मैं ठीक से कपड़े वग़ैरह भी नहीं......"

मालती ने बीच ही में हँसकर कहा—"तुमने ठीक से कपड़े नहीं पहने, तो मेरा क्या क़ुसूर। तुमने अपने बाल नहीं बाँधे, तो इसमें मेरा क्या अपराध। अब कहो, कितनी मिठाई खिलाओगी, जो आज मैं घर बैठे गंगा ले आई। इस भगीरथ प्रयत्न के लिये मेरी बड़ाई करना, या मेरा मुँह मीठा करना तो दूर रहा, ऊपर से जली-कटी सुनाती हो। सत्य है, संसार में भलाई कोई नहीं देता। हवन करते हमेशा हाथ जलता आया, यह कोई नई बात नहीं।"

आभा ने सक्रोध अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा—"मालती, छोड़ो।"

आभा का क्रोध देखकर भारतेंदु शीघ्रता से बँगले के भीतर जाने लगे।

मालती ने उसके रोष की परवा न करके कहा—"इन बँदर-घुड़कियों से मैं डरने की नहीं। देखिए जनाब, डरना उनको है, जो बँगले में छिपने भागे जा रहे हैं। भारतेंदु बाबू, ज़रा ठहरिए तो। अरे, ऐसा मज़ा तो लाखों रुपए ख़र्च करने पर भी देखने को न मिलेगा।"

भारतेंदु ने कुछ ध्यान नहीं दिया, वह शीघ्रता से डॉक्टर नीलकंठ के कमरे में प्रवेश कर उन दोनो की दृष्टि से ओझल हो गए।

मालती ने आभा को छोड़ दिया। आभा अपने वस्त्र ठीक करने लगी। उसका मुख लाल था, आँखों से पशेमानी टपकी पड़ती थी।

मालती अपनी मोटर की ओर जाने लगी, और खिड़की खोलकर भीतर बैठने के लिये उद्यत हुई।

आभा ने उसे जाते देखकर कहा—"अब कहाँ जाती हो?"

मालती ने स्वाभिमान से कहा—"क्यों, मेरे जाने के लिए क्या कहीं जगह नहीं ? अपने घर जाती हूँ, और कहाँ जाती हूँ।"

यह कहकर मालती मोटर पर बैठ गई।

आभा ने उसके पास पहुँचकर उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—"यह नहीं होने का। मैं किसी तरह तुम्हें न जाने दूँगी। अगर तुम जाओगी, तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

मालती ने कहा—"यह भी कोई ज़िद है। मुझे देखकर जब आप दुखी हो रही हैं, तो जाने में ही कल्याण है। अभी तो झिड़की मिली है, अब आगे कहीं और कुछ न मिल जाय।"

आभा ने लज्जित होते हुए कहा—"मालती, मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने सचमुच अन्याय किया है। मैं नहीं जानती, उस वक्त मुझे क्या हो गया था।"

आभा के स्वर में पश्चात्ताप की मलिनता थी।

मालती ने प्रसन्नता छिपाते हुए कहा—"अब क्या होता है। पहले तो किसी का अपमान कर दो, फिर माफ़ी माँगो, यह कहाँ का न्याय है।"

आभा ने ग्लानि के साथ कहा—"मालती, आज तो तुम्हें मेरा अपराध क्षमा करना ही होगा, चाहे जो कुछ हो।"

उसके स्वर में सत्यता की कोमलता और विनय की नम्रता थी।

मालती ने मुस्किराते हुए कहा—"एक शर्त पर मैं यहाँ ठहर सकती हूँ।"

आभा ने व्यग्रता के साथ पूछा—"वह क्या ?"

मालती ने गंभीरता के साथ कहा—"पहले वचन दो, और मेरी क़सम खाओ।"

आभा ने कहा—"न, मैं सब करूँगी, जो कुछ कहोगी। इतनी छोटी बात के लिये तुम्हारी क़सम खाने की कौन ज़रूरत है।"

मालती ने कहा—"तुम्हारे क़सम खाने से मुझे विश्वास होगा, नहीं तो तुम फिर..."

आभा ने सहास्य कहा—"नहीं, तुम विश्वास रक्खो।"

मालती ने स्टार्टर दबाते हुए कहा—"बस, अब हो चुका। फ़िज़ूल की बकवाद में कौन समय नष्ट करे। मुझे ज़रूरी काम है। कई एक वोटरों के यहाँ वोट माँगने जाना है। चार बजनेवाला है।"

आभा ने उसे मोटर के बाहर घसीटते हुए कहा—"ज्यों-ज्यों मनाओ, त्यों-त्यों सिर पर चढ़ी जाती हैं। सीधी तरह उतरती हो या नहीं।"

मालती ने हँसकर कहा—"क्या करोगी, मारोगी। अब इतना ही बाक़ी रहा है, वह भी कर गुज़रो, जिसमें कोई अरमान बाक़ी न रह जाय।"

आभा ने फिर संकुचित होकर कहा—"अच्छा भई, मैं तुम्हारी क़सम खाती और यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि जो कुछ आप कहेंगी, वह मैं करूँगी। अब तो राज़ी हो?"

मालती ने अपनी हँसी रोकते हुए कहा—"जो कुछ मैं कहूँगी, वह करोगी?"

आभा ने कहा—"जो कुछ कहोगी, करूँगी, झख मारकर करना पड़ेगा।"

मालती ने मोटर से उतरते हुए कहा—"ठीक है, अब वचन-बद्ध हो चुकी हो, किसी समय कहूँगी। अभी कौन ज़रूरत है।"

आभा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"नहीं, जो कुछ कहना हो, अभी कह दो, मैं हमेशा के लिये अपने को तुम्हारे अधीन नहीं

कर सकती । तुम कैसी हो, यह मुझे मालूम है । किसी ऐन मौक़े पर धोखा देकर साफ़ ख़ुश होगी !"

आभा हँसने लगी, और मालती भी हँसने लगी ।

मालती ने अभिमान के साथ कहा—"जब तुम्हें विश्वास न था, तब वचन क्यों दिया ? अभी अच्छा है, ऐसे-वैसे धोखेबाज़ों के हाथ में अपने को क्यों सौंपती हो ? अच्छा भई, मैं जाती हूँ ।"

मालती यह कहकर मोटर की ओर मुड़ी ।

थोड़ी देर तक आभा कुछ सोचती रही, फिर उसके पास आकर कहा—"अच्छा भई, मान जाओ, मैं सब स्वीकार करती हूँ । जो कुछ होगा, देखा जायगा ।"

मालती ने मोटर के पास ठहरकर कहा—"अरे, मैं तो बिलकुल भूल गई थी कि कोई बैठा हुआ तुम्हारी राह देख रहा है, और मैं तुम्हें यहाँ व्यर्थ की बातों में उलझाए हुए हूँ ।"

आभा ने लज्जित होकर कहा—"सच कहती हूँ मालती, तुमने सूद-समेत असल रक़म अदा कर दी है ।"

मालती ने प्रसन्नता के साथ हँसते हुए कहा—"यह तो व्याज ही है, मूल तो अभी बाक़ी है । कभी मौक़ा हाथ आने पर वापस करूँगी ।"

आभा ने मुस्किराकर कहा—"भई, माफ़ करो, मैं आइंदा कोई परिहास तुमसे न करूँगी, मैं अपनी हार स्वीकार करती हूँ ।"

मालती ने कहा—"महज़ इतना कहने से छुटकारा नहीं होने का । जब तुम वार करती थीं, तब तो बड़ा आनंद आता था, अब क्यों घबराती हो ?"

आभा ने कहा—"मैं तुमसे कभी जीत नहीं सकती । भला बताओ, न-मालूम कहाँ......"

मालती ने बीच ही में टोककर कहा—"कहो, कहो, रुकती क्यों हो ? न-मालूम कहाँ से बंदर पकड़ लाई, क्यों ?"

आभा ने कहा—"न, मैं सब करूँगी, जो कुछ कहोगी। इतनी छोटी बात के लिये तुम्हारी क़सम खाने की कौन ज़रूरत है।"

मालती ने कहा—"तुम्हारे क़सम खाने से मुझे विश्वास होगा, नहीं तो तुम फिर..."

आभा ने सहास्य कहा—"नहीं, तुम विश्वास रक्खो।"

मालती ने स्टार्टर दबाते हुए कहा—"बस, अब हो चुका। फ़िज़ूल की बकवाद में कौन समय नष्ट करे। मुझे ज़रूरी काम है। कई एक वोटरों के यहाँ वोट माँगने जाना है। चार बजनेवाला है।"

आभा ने उसे मोटर के बाहर घसीटते हुए कहा—"ज्यों-ज्यों मनाओ, त्यों-त्यों सिर पर चढ़ी जाती हैं। सीधी तरह उतरती हो या नहीं।"

मालती ने हँसकर कहा—"क्या करोगी. मारोगी। अब इतना ही बाक़ी रहा है, वह भी कर गुज़रो, जिसमें कोई अरमान बाक़ी न रह जाय।"

आभा ने फिर संकुचित होकर कहा—"अच्छा भई, मैं तुम्हारी क़सम खाती और यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि जो कुछ आप कहेंगी, वह मैं करूँगी। अब तो राज़ी हो?"

मालती ने अपनी हँसी रोकते हुए कहा—"जो कुछ मैं कहूँगी, वह करोगी?"

आभा ने कहा—"जो कुछ कहोगी, करूँगी, झख मारकर करना पड़ेगा।"

मालती ने मोटर से उतरते हुए कहा—"ठीक है, अब वचन-बद्ध हो चुकी हो, किसी समय कहूँगी। अभी कौन ज़रूरत है।"

आभा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"नहीं, जो कुछ कहना हो, अभी कह दो, मैं हमेशा के लिये अपने को तुम्हारे अधीन नहीं

कर सकती। तुम जैसी हो, वह मुझे मालूम है। किसी ऐन मौक़े पर धोखा देकर नाव डुबा दोगी !"

आभा हँसने लगी, और मालती भी हँसने लगी।

मालती ने अभिमान के साथ कहा—"जब तुम्हें विश्वास न था, तब वचन क्यों दिया ? अभी अच्छा है, मेरे-जैसे धोखेबाज़ों के हाथ में अपने को क्यों सौंपती हो ? अच्छा भई, मैं जाती हूँ।"

मालती यह कहकर मोटर की ओर मुड़ी।

थोड़ी देर तक आभा कुछ सोचती रही, फिर उसके पास आकर कहा—"अच्छा भई, मान जाओ, मैं सब स्वीकार करती हूँ। जो कुछ होगा, देखा जायगा।"

मालती ने मोटर के पास ठहरकर कहा—"अरे, मैं तो बिलकुल भूल गई थी कि कोई बैठा हुआ तुम्हारी राह देख रहा है, और मैं तुम्हें यहाँ व्यर्थ की बातों में उलझाए हुए हूँ।"

आभा ने लज्जित होकर कहा—"सच कहती हूँ मालती, तुमने सूद-समेत असल रक़म अदा कर दी है।"

मालती ने प्रसन्नता के साथ हँसते हुए कहा—"यह तो ब्याज ही है, मूल तो अभी बाक़ी है। कभी मौक़ा हाथ आने पर वापस करूँगी।"

आभा ने मुस्किराकर कहा—"भई, माफ़ करो, मैं आइंदा कोई परिहास तुमसे न करूँगी, मैं अपनी हार स्वीकार करती हूँ।"

मालती ने कहा—"महज़ इतना कहने से छुटकारा नहीं होने का। जब तुम वार करती थीं, तब तो बड़ा आनंद आता था, अब क्यों घबराती हो ?"

आभा ने कहा—"मैं तुमसे कभी जीत नहीं सकती। भला बताओ, न-मालूम कहाँ......"

मालती ने बीच ही में टोककर कहा—"कहो, कहो, रुकती क्यों हो ? न-मालूम कहाँ से बंदर पकड़ लाईं, क्यों ?"

यह कहकर वह बड़े वेग से हँस पड़ी। आभा भी हँसने लगी।

मालती ने कहा—"सखी, बात तो बिलकुल सच है। तुम्हारे मुक़ाबले में भारतेंदु बाबू बिलकुल बंदर मालूम देते हैं।"

आभा ने कुछ उत्तर न दिया, और मालती हँसने लगी।

मालती ने कुछ सोचकर कहा—"अब बहुत हो गया, चलो, अंदर चलें। अकेले बैठे-बैठे भारतेंदु बाबू परेशान होते होंगे।"

आभा ने रूठे हुए स्वर में कहा—"तुम्हीं जाओ, मैं नहीं जाती। मुझे क्या ग़रज़ पड़ा है, तुम्हें होगी, तुम जा सकती हो।"

मालती के मुख का रंग फीका पड़ गया। आभा के श्लेष ने उसके उफनाते हुए उत्साह पर पानी की छींटें छोड़ दीं।

आभा उसका बदला हुआ ढंग देखकर सहम गई। वास्तव में उसके अनजान में अनायास वे शब्द निकल गए थे, जो मालती को दुखी करने के लिये पर्याप्त थे।

आभा ने सप्रेम उसके गले में बाहें डालकर कहा—"आओ, चलें, हम-तुम दोनो चलेंगी।"

मालती अपने मन के उग्र भाव को दमन करने का प्रयत्न करने लगी। आभा मन-ही-मन खेद प्रकाश करने लगी।

मालती और आभा अभी दो-चार क़दम गई होंगी कि डॉक्टर नीलकंठ की मोटर बंगले में प्रविष्ट हुई। मार्ग में मालती की मोटर खड़ी देखकर उन्होंने दूर ठहरा दिया, और उतरकर बँगले की ओर चले।

मालती ने उन्हें देखकर प्रणाम किया।

उन्होंने उसका उत्तर देते हुए उसकी कुशलता का समाचार पूछा, और फिर दोनो सखियों को छोड़कर अपने कमरे में चले गए।

---

(१३)

डॉक्टर नीलकंठ ने कमरे में प्रवेश करते ही देखा, भारतेंदु एक पुस्तक खोले सामने बैठे हैं, और उसे ध्यान-पूर्वक पढ़ रहे हैं। भारतेंदु आहट पाकर उठ खड़े हुए, और डॉक्टर नीलकंठ को देखकर प्रणाम किया।

उन्होंने प्रणाम का प्रत्युत्तर देते हुए कहा—"तुम यहाँ कब से बैठे हो? मालती और आभा तो बाहर घूम रही हैं।"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"अभी थोड़ी देर हुई, जब मैं मालती के साथ आया था। फिर यहाँ आकर यह किताब पढ़ने लगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने मुस्किराकर कहा—"आज मुझे कुछ देर हो गई। मेरी छुट्टी मंज़ूर हो गई।"

भारतेंदु ने प्रसन्नता के साथ कहा—"आज पिताजी का भी पत्र आया है। आपके नाम भी एक पत्र है, जिसे देने के लिये मैं आ रहा था। रास्ते में मालतीजी मिल गईं, वह भी यहीं आ रही थीं, इसलिये उनके साथ मैं भी चला आया।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्सुकता से पूछा—"क्या पंडितजी का पत्र आया है? वह सकुशल तो हैं? वह क्या अभी तक फ़िज़ी में हैं या दक्षिणी अमेरिका चले गए?"

भारतेंदु ने पंडित मनमोहननाथ का पत्र उन्हें देते हुए कहा—"जी हाँ, वह दक्षिणी अमेरिका के लिये रवाना हो गए हैं, और शायद अब तक पहुँच भी गए होंगे। साम्यवाद के सिद्धांतों ने उनके मन में अपना घर बना लिया है, और उन्हीं के अनुकरण में वह अपना छोटा-सा उपनिवेश चिली-देश में स्थापित करेंगे, जहाँ

से उनकी खानें अति निकट हैं। उन्होंने कुछ रुपया चिली-सरकार को, जो एक प्रजातंत्र राष्ट्र है, देकर कई मील पहाड़ी ज़मीन मोल ले ली है, और वहाँ उस उपनिवेश के बसाने की आज्ञा भी प्राप्त कर ली है। इसका उद्घाटन शायद स्वामी गिरिजानंद के हाथ से होगा—इन्हीं चंद बातों का ज़िक्र मेरे पत्र में है।"

डॉक्टर नीलकंठ गंभीर मुख से अपने नाम का पत्र खोलकर पढ़ने लगे। पत्र इस प्रकार था—

"प्रिय डॉक्टर शर्मा,

मुझे विश्वास है, आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मैं दक्षिणी अमेरिका में, जहाँ मेरी चाँदी, सोने तथा ताँबे की खानें हैं, एक उपनिवेश स्थापित करना चाहता हूँ, जिसकी नींव साम्यवाद के सिद्धांतों पर डाली जायगी। मेरा विश्वास है, मनुष्य को मनुष्य के प्रति अन्याय न करना चाहिए, और ईश्वर की दी हुई सब वस्तुओं पर मनुष्य-मात्र का समान अधिकार है। दूसरे साम्यवादियों की तरह मैं ईश्वर का अस्तित्व उड़ाता नहीं, बल्कि उसकी सत्ता और दृढ़ करता हूँ। यद्यपि मैं आज करोड़ों रुपयों की संपत्ति का एकमात्र स्वामी हूँ, लेकिन क्या वास्तव में वह मेरी या भारतेंदु की संपत्ति है? मेरे विचार से नहीं। इस संपत्ति के अधिकारी वे सब व्यक्ति हैं, जिन्होंने इसे खानों के भीतर से निकाला है। मैं यह विचार करता हूँ कि यह धरोहर अपने पास रखकर क्यों उनका अभिशाप लूँ? अतएव इसे मैं अपने उन्हीं कुलियों, मज़दूरों और श्रमजीवियों में समान रूप से वितरण करना चाहता हूँ, इस विचार से मैं दक्षिणी अमेरिका में 'वालपेराइज़ो'-नामक बंदर से सैंतीस मील उत्तर-पूर्व के कोण पर, 'ट्यूनिस योका'-नामक स्थान पर, एक आश्रम स्थापित करना चाहता हूँ, जहाँ साम्यवाद को पूर्ण विकास प्राप्त हो। उस

आश्रम के निवासियों में साम्यवाद का सच्चा रूप देखने को मिलेगा, जो देश-देशांतर में जाकर उसका प्रचार करेंगे। इसका विशेष हाल तो आपको उस समय मालूम होगा, जब आप यहाँ आकर कुछ दिन रहेंगे, और हमें तथा हमारे विचारों को समझने का प्रयत्न करेंगे। मुझे यह भी पूर्ण विश्वास है कि आपकी सहानुभूति तथा शुभेच्छा हमें प्राप्त होगी।

स्वामी गिरिजानंद बड़े आनंद में हैं। उन्होंने कृपा करके उस आश्रम का उद्घाटन करने का भार ग्रहण किया है। यहाँ प्रसंग-वश यह भी कह देना उचित होगा कि मेरी खानों पर काम करनेवालों में अधिकांश वे भारतीय हैं, जिन्हें ग़ुलाम बनाकर इधर के टापुओं में बसाने के लिये लाया गया था, अथवा दूसरे शब्दों में मेरे-जैसे बेघर-बार के, मुट्ठी-भर दाने के लिये अपना दीन और ईमान बेच देनेवाले, भूख के शिकार, भारतीय हैं—हमारे देशवासी हैं। इन्हें शिक्षित कर मनुष्य बनाना और उनके अधिकारों का ज्ञान कराना भी हमारा परम धर्म है। मुझे संतोष है, स्वामीजी ने उन्हें शिक्षित करने का भार ग्रहण कर लिया है।

हमारे इस आश्रम का उद्घाटन ३१ जनवरी को होना निश्चित हुआ है। अतएव इस अवसर पर यहाँ आप अपने इष्ट-मित्रों-सहित पधारने की कृपा करें, और अपने साथ भारतेंदु और आभा को भी लेते आवें। मुझे याद है, आभा को संसार-भ्रमण की कैसी उत्कंठा थी। उसे लाकर उसका भावी घर-बार दिखा देना उचित होगा। वह भी अपना कर्म-क्षेत्र देख ले, और उसमें प्रवेश करने के लिये अभी से तैयार हो जाय।

आपके लिये यह प्रदेश बिलकुल नया है, और एक प्रकार से पश्चिमीय सभ्यता से दूर है, अतएव आपको कुछ कष्ट हो सकता है। इस ख़याल से मैं अपना जहाज़ आप लोगों को लेने के वास्ते

भेज रहा हूँ, जो १५ दिसंबर को कलकत्ते पहुँच जायगा। उसके कैप्टेन का नाम मिस्टर ऐलफ़्रेड जैक्सन है, और वह न्यूज़ीलैंड के रहनेवाले हैं। वह एक विश्वासी सज्जन हैं, आप उन पर पूर्ण रूप से भरोसा कर सकते हैं। भारतेंदु इनसे भली भाँति परिचित है, जो आपका परिचय करा देगा।

अब आप इस पत्र के मिलते ही अपनी यात्रा का इंतिज़ाम करना शुरू कर दें। आपको अवश्य इस समारोह में सम्मिलित होना पड़ेगा। इस प्रकार आपकी यात्रा भी हो जायगी, और हमारे कार्य में आप सम्मिलित भी हो जायँगे। भारतेंदु और आभा को अवश्य लाइएगा।

सर रामकृष्ण, डॉक्टर पीतांबरदत्त, मुंशी कालीसहाय, नवाब अनवरअलीख़ाँ प्रभृति महानुभावों को भी निमंत्रण-पत्र दे दीजिएगा, जो आपको भारतेंदु से मिल जायँगे। आपको अधिकार है कि दूसरे सज्जनों को, जिन्हें आप चाहें, दे दें। और, यदि वे लोग यहाँ पधारने की कृपा करें, तो मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझूँगा।

अंत में मैं फिर नम्रता के साथ निवेदन करता हूँ कि कम-से-कम आप अवश्य ही पधारें।

दर्शनाभिलाषी
मनमोहननाथ"

पत्र समाप्त करके डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"वहाँ तो सब तैयारी हो गई।"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"जी हाँ, वे कभी कोई काम कल के लिये उठा नहीं रखते।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"मालूम तो ऐसा ही होता है। ख़ैर, आज मेरी छुट्टी सात महीने की मंज़ूर हो गई। मैं बड़ी आसानी के साथ चल सकता हूँ। तुम्हारी पुस्तक का क्या हुआ?"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"उसे मैंने ख़त्म कर दिया है, किंतु अभी प्रेस में देना नहीं चाहता, पीछे वापस आने पर दूँगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"हाँ, अब तो यही करना होगा। जब उन्होंने जहाज़ तक भेज दिया है, तब तो अवश्य ही जाना होगा।"

इसी समय मालती ने आकर पूछा—"कहाँ जाने का परामर्श हो रहा है डॉक्टर साहब?"

डॉक्टर नीलकंठ ने मुस्किराकर कहा—"पृथ्वी-पर्यटन करने के लिये विचार हो रहा है। तुम भी चलोगी?"

मालती ने हँसकर कहा—"क्या आभा भी जाएगी?"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"हाँ, उसे भी ले जाऊँगा। तुम्हारे साथ के लिये वह है, फिर तुम क्यों न चलो। भारतेंदु के पिता पंडित मनमोहननाथ दक्षिणी अमेरिका में चिली-नामक प्रदेश में एक आश्रम स्थापित कर रहे हैं, जिसका उद्घाटन ३१ जनवरी को होगा। सर रामकृष्ण के लिये भी निमंत्रण है। तुम लोग भी चलो। बड़ा आनंद रहेगा। योरप देखने के लिये सब जाते हैं, लेकिन दक्षिणी अमेरिका की ओर कोई नहीं जाता। वहाँ प्राचीन सभ्यता के चिह्न मिलते हैं, जिन्हें देखकर यह अनुमान होता है कि वे कभी सभ्यता के उच्च शिखर पर प्रतिष्ठित थे।"

मालती ने जाते हुए कहा—"आज बाबूजी से पूछूँगी।"

मालती ने सीधे आभा के कमरे में जाकर कहा—"अब सब हाल मालती ने सीधे आभा के कमरे में जाकर कहा—"अब सब हाल मालूम हुआ कि सरकार आज इतनी क्यों बिगड़ रही थीं।"

आभा गुलाबी रंग की साड़ी पहनकर उसमें पिन लगा रही थी। उसने विस्मित होकर मालती की ओर देखा—उसका ध्यान हटा, और पिन की नोक उसके दूसरे हाथ की उँगली में चुभ गई। आभा

ने ग़ुस्से से पिन फेकते हुए कहा—"तुम्हें तो हर वक़्त मज़ाक़ सूझता है, और यहाँ......"

मालती ने हँसकर कहा—"और यहाँ ख़ून हो गया।"

आभा ने मुस्किराकर कहा—"ख़ून हो गया नहीं, ख़ून निकल आया।"

मालती ने उत्तर दिया—"ख़ुशी में ऐसा ही होता है।"

आभा ने पिन उठाकर साड़ी में लगाते हुए कहा—"तुम वहाँ जाकर ऐसी कौन-सी बात जान आई, जिससे फूली नहीं समातीं?"

मालती ने कहा "क्या करूँ, अगर जासूसी करके कुछ पता न लगाऊँ, तो मुझसे कौन अपना भेद कहेगा।"

आभा ने चकित होते हुए कहा—"मैंने तो कभी तुमसे कोई भेद नहीं छिपाया, व्यर्थ क्यों दोष देती हो?"

मालती ने मुँह भारी करके कहा—"बहलाने को तो मैं ही मिली हूँ। अच्छा, यह तुमने मुझे बतलाया था कि मैं पृथ्वी-भ्रमण करने के बहाने शादी के पहले ही 'हनीमून' करने जा रही हूँ।"

आभा ने मालती को धक्का देते हुए कहा—"आज तुमने भाँग तो नहीं खाई। कहाँ-कहाँ के पत्थर भिड़ा-भिड़ाकर इमारत बनाना चाहती हो।"

मालती ने मुस्किराते हुए कहा—"अभी क्या हुआ, अभी तो भाँग ही खाई है, थोड़ी देर में पागल का सार्टिफ़िकेट भी दिलवा दोगी। मैं क्या झूठ कहती हूँ?"

आभा ने उत्तर दिया—"झूठ है ही। मैं इस बारे में कुछ नहीं जानती। न मुझसे किसी ने कुछ कहा है।"

मालती ने अविश्वास प्रदर्शित करते हुए कहा—"मैं कुछ नहीं मान सकती। अच्छा, मैं अभी भारतेंदु बाबू को बुलाकर लाती और [illegible] कराती हूँ।"

आभा ने मालती को पकड़ने की कोशिश की, किंतु वह बाहर निकल गई।

मालती ने डॉक्टर नीलकंठ के कमरे में आकर देखा, भारतेंदु चले गए हैं।

उसने डॉक्टर नीलकंठ से पूछा—भारतेंदु बाबू कहाँ गए?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"मैं नहीं कह सकता, कहाँ गए। मैं इस पत्र को पढ़ने में निमग्न था, इसी दर्म्यान वह कहीं चले गए।"

मालती निराश होकर बाहर निकली। कमरे के बाहर उसने उद्यान में नज़र दौड़ाई। कहीं उनका पता न था।

वह चारो ओर उन्हें ढूँढकर वापस लौट रही थी कि आभा के कमरे से उन्हें निकलते देखा। उसने द्विगुणित उत्साह से उसके कमरे में प्रवेश कर भारतेंदु को गिरफ़्तार कर लिया। आभा और भारतेंदु लाज से कट गए।

मालती ने हँसकर कहा—"भई, तुम लोग बड़े चालाक हो, मैं बेवक़ूफ़-सी इधर-उधर ढूँढती रही, और इस बीच में मिला-भेंटी हो गई।"

भारतेंदु ने हँसकर जवाब दिया—"पहरेदार की ग़फ़लत से सब कुछ हो जाता है।"

मालती ने उत्तर दिया—"बिलकुल सत्य है। ख़ैर, पकड़ तो लिया!"

भारतेंदु ने कहा—"यह पकड़ना नहीं कहलाता।"

आभा छिपकर बाहर जाने लगी।

मालती ने उसे पकड़कर कहा—"यह नहीं होने का। अजी सरकार, आप इस तरह छिपकर कहाँ जायँगी?"

आभा ने कहा—"शाम हो गई है, आज सिनेमा देखने चलेंगे।"

'ला प्लाजा' में एक अच्छा फ़िल्म आया है। कुछ जल-पान के लिये ले आऊँ।"

मालती ने कहा—"यह बहानेबाज़ी रहने दो। पहले अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।"

आभा ने चकित होकर पूछा—"कौन-सी प्रतिज्ञा ?"

मालती ने उत्तर दिया—"इतनी जल्दी भूल गईं ! अभी तो मुश्किल से आध घंटा बीता होगा।"

आभा चिंतित मुद्रा से कुछ सोचने लगी।

मालती ने कहा—"अभी-अभी तुमने प्रतिज्ञा की थी कि जो कुछ मैं कहूँगी, वह तुम बिला उज्र करोगी। इसी शर्त पर मैं ठहरने के लिये तैयार हुई थी।"

आभा ने उत्तर दिया—"ठीक है, कहिए, क्या करना पड़ेगा ?"

मालती ने कहा—"मेरे सामने भारतेंदु बाबू के पैर छूकर, फिर हाथ जोड़कर माफ़ी माँगो कि आइंदा कभी ऐसी भूल न करोगी।"

आभा ने चिढ़कर कहा—"वाह, यह भी कोई बात है। इसके लिये मैंने प्रतिज्ञा नहीं की थी।"

मालती ने आदेश-पूर्ण स्वर में कहा—"नहीं, तुम्हें मेरा हुक्म मानना पड़ेगा।"

आभा तेज़ी से बाहर जाने का उद्योग करने लगी।

मालती उसे पकड़ने के लिये आगे बढ़ी। इसी गड़बड़ में भारतेंदु शीघ्रता से चलकर डॉक्टर नीलकंठ के कमरे में आ गए।

आभा हँसने लगी, मालती शरमा गई।

---

(१४)

मालती सिनेमा देखकर लौटी, लेकिन उसका हृदय प्रसन्न नहीं था। वह सीधे अपने कमरे में चली गई, और वहीं भोजन लाने का आदेश दिया। मालती आराम-कुर्सी पर लेटकर दिन-भर की घटनाओं का मनन करने लगी। वह सोचने लगी—

"सुबह होता है, शाम होती है—उम्र यों ही तमाम होती है।" यह सत्य है, बिलकुल सत्य है। वास्तव में सुबह-शाम के चक्कर में तमाम उम्र बीत जाती है, युग बीत जाते हैं, और मन्वंतर बीत जाते हैं। मनुष्य-मात्र को जब से होश हुआ है, या उसका इस धरातल पर प्रादुर्भाव हुआ है, तब से वह सुबह-शाम का चक्र देख रहा है, और उस वक्त तक देखेगा, जब तक वह रहेगा। इसी चक्र को देखते-देखते मेरे भी अठारह-उन्नीस वर्ष बीत गए हैं।

"इतने वर्ष बीत गए, किंतु क्या मेरा स्त्री-जीवन एक बार भी सफल हुआ है? मैंने क्या एक दिन के लिये भी किसी से प्रेम किया है। आभा कहती है, स्त्री-जीवन की महत्ता है प्रेम करने में और किए जाने में। प्रेम का विनिमय स्त्री-जीवन का शृंगार है—उसके स्त्रीत्व का विकास है। ईश्वर ने स्त्री-जाति को केवल प्रेम करने के लिए रचा है, तभी तो वह उसकी कोमल रचना है, सुषमा और सौख्य, शृंगार और विलास, शोभा और सौंदर्य लावण्य और रूप का अटूट भंडार है। इस विश्व में, चराचर में जो कुछ भव्य है, मनोरम है, कोमल है, शृंगारमय है, वह सब हमारे में है। हम पुरुष-जाति पर शासन करती हैं, और उसकी स्वामिनी हैं।

"अरे, मैं कहाँ बहक गई! मेरे लिये यह शृंगारमय जीवन

बिलकुल निराशा है, केवल पागल का प्रलाप है। आह, यह विचार वृश्चिक-दंशन से भी अधिक भयंकर और विष की तड़पन से भी अधिक पीड़ाकारी है। मेरा स्त्रीत्व नष्ट हो गया, मेरा जीवन ध्वंस हो गया। यह मेरा सौंदर्य किसके लिये है, मेरा लावण्य किसके लिये है, मेरा श्रृंगार किसके लिये है, और मेरा प्रेम किसके लिये है? इसका उत्तर नहीं मिलता। शायद यह मेरे लिये है कि मैं इसका प्रतिबिंब देखकर कुढ़ूँ, रोऊँ और दग्ध होऊँ। हाय, कैसी विडंबना है!

"आभा देखो, कितनी प्रसन्न है, उसकी उमंगें चौकड़ी भर रही हैं, उसकी आशाएँ किलक रही हैं। उसका सौंदर्य उसके भोग की वस्तु है। आज ज़रा केश नहीं बँधे थे, वह कितनी व्याकुल हुई थी। वह साड़ी पहनकर कितनी प्रसन्न हुई थी, वह सिनेमा जाने के लिये कितनी आतुर थी। उसे ज्ञात था कि कोई उसके पहनाव, श्रृंगार, केश-विन्यास को देखनेवाला है, भोगनेवाला है। मैं जो वस्तु पहनूँ, ओढ़ूँ, केवल अपने को सुख देने के लिये, इससे बजाय सुख के कसक होती है, यंत्रणा होती है, और अकथनीय वेदना होती है। मेरा उत्साह मुझे धिक्कारने लगता है, मेरा श्रृंगार मेरा उपहास करने लगता है, मेरा विन्यास मुझे चिढ़ाने लगता है।

"मैं क्यों इतनी वेदना सहन करूँ? किसके लिये सहन करूँ? मैं अभी तक अविवाहित हूँ, कहीं एक स्त्री का विवाह दूसरी स्त्री से होता है। स्त्री और पुरुष के युग्म का नाम विवाह है। तब तो मैं कुमारी हूँ, और दूसरा विवाह कर सकती हूँ—दूसरे से प्रेम कर सकती हूँ। इसमें मैं कोई वैध रुकावट नहीं देखती।

"यह 'दूसरा'-शब्द किस बात का बोधक है? इससे तो यह बोध होता है कि कोई वस्तु पहले है। तब क्या मैं उस विवाह के नाटक को सत्य मानती हूँ। मेरे विचार के परदे में वह भाव तो छिपा हुआ है। तब मेरा प्रथम विवाह अवश्य कुछ सत्यता

लिए है। मैं इस भाव पर विजय प्राप्त करूँगी, और उस पुरानी ग़ुलामी का तौक उतारकर फेंक दूँगी।

"मैं थोड़े दिनों में एसेंबली की सदस्या होऊँगी, और स्त्री-जाति के हित के लिये कई बिल पेश करूँगी। थोड़े दिनों में मैं संसार में उथल-पुथल मचा दूँगी, स्त्री-जाति पर अत्याचार करना लोग भूल जायँगे। स्त्री-जाति के इतिहास में मेरा नाम स्वर्णाक्षरों से अंकित रहेगा।

"अच्छा, जिस वक़्त तलाक़ का क़ानून बन जायगा, और सबसे पहले मैं उससे फ़ायदा उठाने के लिये अग्रसर होऊँगी, उस समय भला 'वह' क्या कहेंगे, क्या विचार करेंगे। मैं जानती हूँ, उन्हें बेहद पीड़ा होगी, और उस आघात को सहन कर सकेंगे या नहीं, कहना मुश्किल है। देखो, मेरा स्वार्थ! मैं अपने लिये इतनी व्याकुल होती हूँ, किंतु उनका विचार तो करती नहीं। क्या उनके भी मेरे-जैसा हृदय नहीं, क्या उनके मन में आशाएँ नहीं, क्या उनके हृदय में उत्साह नहीं, तेज नहीं, उमंगें नहीं? उनकी ओर तो क्षण-भर के लिये दृक्पात नहीं करती, और न किया है। क्या यह मेरा अन्याय नहीं। वह मेरे लिये इतने आकुल हैं, मेरे विरह से इतने संतप्त हैं, और मैं अपनी ख़ुदग़र्ज़ी लिए बैठी हूँ। प्रेम तो यह करना नहीं सिखाता।

"ऐंद्रिक सुखों की दासता का नाम तो प्रेम नहीं, वह तो विलास है। फिर मैं क्या जिसे प्रेम समझ रही थी, वह विलासिता है, जिसके लिये आतुर हूँ, वह पशुत्व का केवल संस्कृत रूप है। प्रेम की सत्ता तो इससे भी सूक्ष्म है, इससे भी महत् है। वह संसार का, ईश्वरीय शक्ति का विराट् रूप है। मैं प्रेम की भूखी हूँ या विलास की! प्रेम में विलास तो सन्निहित हो सकता है, किंतु विलास में प्रेम हो भी सकता है, और नहीं भी हो सकता।

"उनका प्रेम शुद्ध सात्त्विक, निःस्वार्थ और विलास-हीन है। उसमें स्वर्गीय ज्योति है—उसमें असीम शांति है, उसमें अविनाशी माधुर्य है। जो कुछ है, वह अप्रतिम है, अद्वितीय है। मैं अब तक अपने विलासी विचारों में अंधी थी, इसलिये उनके दिव्य प्रेम की ज्योति देख न सकी, उनका सदैव निरादर किया और ठुकराया है। मेरा तो यह व्यवहार था, और उनका? सोचकर मेरा मन मुझे धिक्कारने लगता है। उन्होंने मेरे अनादर को अपने सिर पर सादर रक्खा है, मेरे तिरस्कार को मधुर हास्य से सहन किया है। मैं पशुत्व के आवेश में अपनी सुध-बुध खो बैठी थी। एक इच्छा दमन न कर सकी, और उसके आवेश में वह परम रत्न बारंबार ठुकराती रही। मेरा अभाग्य!

"उनके न-मालूम कितने पत्र आए, लेकिन मैंने जवाब एक का भी न दिया। उन्होंने क्या अनुमान किया होगा, और मेरे प्रति उनका क्या विचार हुआ होगा। आभा सत्य कहती थी कि मैं बड़ी हृदय-हीन हो गई हूँ। इस हृदय-हीनता पर मुझे स्वयं रोष आता है। मेरे ये विचार क्यों, और कहाँ छिप गए थे? अब क्या इसका कोई प्रायश्चित्त नहीं? मैंने अपराध किया है, उसके लिये उनसे क्षमा माँगूँगी।"

मालती आवेश में आकर पत्र लिखने बैठ गई। वह लिखने लगी—

"प्राणेश,

मैं अगर यह लिखूँ कि आपके पत्र मुझे नहीं मिले, तो यह बिलकुल झूठ है; अगर यह लिखूँ कि मिले तो, लेकिन उत्तर देने का अवकाश नहीं मिला, तो यह भी झूठ है; अगर यह लिखूँ कि उन पत्रों को पढ़कर रख दिया, और जान-बूझकर उत्तर न दिया, तो यह अवश्य सत्य होगा। किंतु इस सत्य-भाषण से आपको कष्ट

होगा, और मन में कई प्रकार की भावनाएँ उठेंगी। आपके हृदय में मेरे प्रति जो दुर्भावनाएँ उठें, उन सबको आप सत्य जानें, क्योंकि इसी में मेरे पाप की, अपराध की निवृत्ति है, और मेरे लिये पुरस्कार।

"जिसे ईसाई शैतान कहते हैं, उसे हम हिंदू पशुत्व कहते हैं, उन दोनो में भेद कोई नहीं। वे शैतान का रूपक दो सींग लगाकर दिखाते हैं, जो केवल पशुत्व का लक्षण है। वही शैतान इस दुनिया में ईश्वर की तरह शक्तिमान् है। मैं तो उससे भी उसे साहसी और शक्तिशाली जानती हूँ। ईश्वरीय शक्तियों को अपना घर बनाने में वर्षों लग जाते हैं, लेकिन शैतान तो क्षण-मात्र में मनुष्य को पराजित करके उसे अपना गुलाम बना लेता है। कहना न होगा, मैं अभी तक उसी शैतान या पशुत्व के चक्र में फँसी हुई अपने देवता की अवहेलना कर रही थी।

"शायद ये विचार पढ़कर आपको हँसी आवे, और केवल इन्हें झूठ तथा फ़रेब समझें। परंतु मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि यह असत्य नहीं। मैं अब अपनी असलियत समझने लगी हूँ, और प्रेम का असली तत्त्व भी पहचानने लगी हूँ..."

लिखती-लिखती मालती रुक गई। उसके घर में आनंद का कोलाहल होने लगा, और सर्वत्र भागने-दौड़ने के शब्द सुनाई देने लगे। सहसा उसका हृदय वेग से धड़क उठा, और वह उत्सुकता से दरवाज़े की ओर देखने लगी। भागते हुए पद-शब्द उसके कमरे के निकट सुनाई पड़ने लगे। उसकी उत्सुकता और बढ़ गई। वह इस असमय के हर्ष-रव को जानने के लिये आतुर हो गई। वह उत्सुक नेत्रों से हर्ष से उमगती हुई अपनी छोटी बहन कामिनी की ओर देखने लगी।

कामिनी ने प्रसन्नता के साथ कहा—"बहनजी, जीजाजी अभी-अभी आए हैं।"

मालती उसकी ओर अविश्वास के साथ देखने लगी।

कामिनी ने उसके इस भाव से रुष्ट होकर कहा—"तुम इस तरह क्या देखती हो। मैं झूठ नहीं कहती। वह सचमुच आए हैं, अगर विश्वास न हो, तो चलकर तुम ख़ुद देख आओ। जीजाजी बहुत दुबले हो गए हैं, पहचाने नहीं जाते। जैसे शादी में थे, वैसे नहीं हैं। आँखें गढ़े में घुस गई हैं, गाल सूखकर चपटे हो गए हैं, और बहुत दुबले हो गए हैं। अरे, बड़ा मज़ा आया। बाबूजी बैठे हुए हुक़्क़ा पी रहे थे, और कुछ काग़ज़ देख रहे थे। अम्माजी भी पास बैठी हुई पान लगा रही थीं, और मैं सुपारी काट रही थी। इसी समय एक ताँगा बाहर आकर खड़ा हो गया, और वह दरवाज़े पर खड़े होकर दरबान से पूछने लगे कि क्या साहब घर में हैं। दरबान ने उनको अजनबी समझकर कहा—यह वक़्त मिलने का नहीं है, सुबह आना। वह शायद जानेवाले थे कि बाबूजी ने दरबान को पुकारकर पूछा कि कौन आया है। तब उसने नाम पूछा, तो उन्होंने बतलाया—कामेश्वरप्रसादसिंह। बस, यह सुनते ही दरबान के भी होश ठिकाने आ गए, और बाबूजी ने भी उसे सुन लिया, वह भी दौड़ते हुए बाहर गए। फिर उन्हें पहचानकर लिवा लाए। अम्माजी बड़े वेग से इंतिज़ाम करने के लिये भागीं, और मैं तुम्हें ख़बर देने चली आई। वह इस समय कानपुर से आ रहे हैं, और इसके पहले कलकत्ते गए थे। क्यों बहनजी, उन्होंने क्या तुम्हें लिखा था कि वह इस तरह बिना इत्तिला दिए आवेंगे। आज तो नहीं, कल ज़रूर उन्हें अच्छी तरह बनाऊँगी।"

कामिनी अपनी बकवास में मस्त थी, और मालती अपने विचारों में मग्न थी। उसने कामिनी की बातें सुनीं या नहीं, यह ठीक नहीं कहा जा सकता।

कामिनी के लिये दूसरा बहुत काम था। वह हर्ष से नाचती हुई कोई दूसरा प्रबंध करने के लिये चली गई। मालती दूसरे विचारों में मग्न हो गई।

---

(१५)

मालती के सामने एक नई समस्या उपस्थित हो गई। कल्पना के आँगन से निकलकर उसे वास्तविकता के मैदान में आना पड़ा। मस्तिष्क के विचारों को कार्य-रूप में परिणत करने के लिये उसका मन उत्साहित करने लगा, किंतु महीनों से संचित विद्रोह अपने पूर्ण बल से उठकर उसका मुक़ाबला करने लगा। जब कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह मालती के सामने ससंकोच आकर खड़े हुए, तो मालती के मुख की मुस्किराहट गंभीरता में परिणत हो गई, किंतु उसका हृदय बड़े वेग से स्पंदित हो रहा था।

मालती उनको बैठने के लिये कहना भी भूल गई।

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह ने उसकी ओर भय-विह्वल दृष्टि से देखते हुए कहा—"मेरे असमय आने से आपको कष्ट हुआ, इसकी क्षमा चाहता हूँ।"

मालती का हृदय उत्फुल्ल तो हुआ, लेकिन वह कुछ उत्तर न दे सकी।

उन्होंने फिर किंचित् साहस-पूर्वक कहा—"मैं तो न आता, किंतु आपके देखने की लालसा ज़बरदस्ती घसीट लाई। जो कुछ हो, मैं हर तरह से अपराधी हूँ। कृपा करके क्षमा करें।"

मालती कुछ उत्तर न दे सकी। उसके हृदय में तूफ़ान उठने लगा।

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह ने थोड़ी देर चुप रहने के बाद कहा—"क्या मेरे अपराध की क्षमा नहीं? अच्छा, मैं कल सुबह की गाड़ी से चला जाऊँगा। अगर आपको ....."

मालती ने बीच ही में बात काटकर कहा—"क्या यही कहने के लिये आप आए हैं ?"

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह का मन-मयूर नाच उठा।

उन्होंने मृदु हास्य के साथ कहा—"अपनी आराध्य देवी की भर्त्सना में भी सम्मान प्राप्त होता है। नहीं, मैं यह कहने के लिये नहीं आया। कहने को तो बहुत कुछ है।"

मालती ने उत्सुक दृष्टि से देखा, किंतु कुछ उत्तर नहीं दिया। वह सोचने लगी, आज का दिन न-मालूम कितनी घटनाएँ अपने उर में छिपाए है।

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह ने धीमे कंठ से कहा—"आजकल मेरे, नहीं आपके घर में अनेकानेक उपद्रव उठ रहे हैं, जिनका जानना आपके लिये उचित है।"

मालती ने कुछ क्षुब्ध कंठ से कहा—"यह 'आप'-शब्द किसके लिये इस्तेमाल करते हैं ?"

कुँवर कामेश्वर ने हँसकर कहा—"अपनी आराध्य देवी के लिये, और किसके लिये !"

मालती ने रोष के साथ कहा—"व्यंग्य तो प्रेम का नाशक है।"

कुँवर कामेश्वर ने संकुचित होकर कहा—"यदि सत्य का कथन व्यंग्य है, तो फिर सत्य किस तरह कहा जायगा। तुम मेरे प्रेम के रूप को नहीं जानतीं, और न शायद उसे जान ही सकती हो। तुम्हारे पास वह हृदय नहीं। यह मैं जानता हूँ कि मैं तुम्हें पूर्ण रूप से सुखी नहीं कर सकता, किंतु मैं तुम्हारे लिये प्रेम का अगाध, असीम, अटूट भंडार लिए हुए हूँ। तुम्हारे आने के बाद यदि मैं बयान करूँ कि कैसे मैंने दिन काटे हैं, तो शायद तुम्हें विश्वास न होगा। एक तरफ़ तो घर की कलह, और दूसरी ओर तुम्हारा वियोग। ईश्वर ही जानता है, कैसे दिन व्यतीत हुए।

अम्माजी ने मुझे घर से ज़हर खिलाने के भय से बाहर जाने का आदेश दिया, और वह आजकल अपने भाई, यानी मेरे मामा के यहाँ हमारी दोनो बहनों को लेकर चली गई हैं। एक भयानक युद्ध उनमें और पिताजी में छिड़ गया है। पिताजी मुझे गद्दी की हक़दारी से अलाहिदा करने की तजवीज़ कर रहे हैं, और मुझे ज़हर देने का षड्यंत्र हो रहा है। पृथ्वीसिंह को, जो अनूपकुमारी का लड़का है, गद्दी पर बैठाने का चक्र रचा जा रहा है। इसलिये पिताजी एसेंबली के लिये खड़े हुए हैं, और उनके कामयाब होने की भी पूरी उम्मेद है। एसेंबली में जाकर वह अंतरजातीय विवाह को जायज़ कराने का क़ानून बनाने की चेष्टा करेंगे, और दूसरा बिल इस बात का पेश करेंगे कि जो संतान ऐसे विवाह से पहले या पीछे उत्पन्न हुई हो, वह जायज़ संतान समझी जाय। इस प्रकार पृथ्वीसिंह को अधिकार दिलाने की चेष्टा की जा रही है। अम्माजी का विश्वास है कि जिस रोग से मैं ग्रस्त हूँ, वह अनूपकुमारी और बाबू मातादीनसहाय के किसी षड्यंत्र का फल है। वह एक दिन अनूपकुमारी के घर गई थीं। अचानक उन्हें काग़ज़ों का एक बंडल और कुछ दवाइयों की शीशियाँ मिल गईं। उन काग़ज़ों में अनूपकुमारी के पिछले जीवन का कुछ हाल है।"

यह कहकर वह ठहर गए। मालती बड़ी उत्सुकता से सुन रही थी। उसने एक गंभीर निःश्वास लेकर कहा—"इतने थोड़े समय में इतनी घटनाएँ हो गईं, और मुझे आपने कुछ लिखा नहीं।"

कुँवर कामेश्वर ने मुस्किराकर कहा—"और अच्छा, तुम मुझे 'आप' क्यों कहती हो?"

मालती ने लजाकर अपना सिर नत कर लिया।

कुँवर कामेश्वर ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—"बोलो,

अब क्यों नहीं बोलतीं। क्या तुम्हें यह अधिकार है कि मुझे 'आप' कहकर संबोधन करो?"

मालती ने अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न नहीं किया। उसके शरीर में तड़ित्प्रवाह दौड़कर कंपन और बेसुधी पैदा करने लगा।

कुँवर कामेश्वर ने उसे अपनी ओर घसीटते हुए प्रेम के नवीन आवेश से कहा—"बोलो, प्रियतमे! तुम्हारे एक प्रेम-शब्द से मेरे मन का इतने दिनों का उत्ताप गलकर बह जायगा।"

मालती ने कोई आपत्ति नहीं की, वह उठकर उनके पास सोफ़े पर बैठ गई। विद्युत् का प्रकाश मुस्किराने लगा।

मालती की कुछ घंटे पहले लिखी हुई पत्रिका मेज़ पर उसी तरह रक्खी थी। वह इतनी विस्मय-सागर में डूब गई थी कि उसे उठाकर रखने का ध्यान बिलकुल न रह गया था। कुँवर कामेश्वर की दृष्टि सहसा उस पर पड़ी, और उन्होंने उसे उठा लिया। मालती ने झपटकर उसे छीनने का प्रयत्न किया। उनकी उत्सुकता विशेष जाग्रत् हुई, और उसे पढ़ने के लिये आतुर हो उठे।

मालती जब किसी प्रकार उसे न छीन सकी, तो उसने कहा—"आप उसे न पढ़ें, वह मैंने अपने एक प्रेमी को लिखा है।"

यह कहकर वह मुस्किराई।

कुँवर कामेश्वर ने हँसकर कहा—"आपका यह कथन तो मुझे पढ़ने के लिये और विवश करता है; किसी ईर्ष्या के ख़याल से नहीं, केवल उसके प्रेम की गहराई जानने के लिये।"

मालती ने हँसकर कुछ लज्जित स्वर में कहा—"अगर उसका प्रेम आपके प्रेम से ज़्यादा गहरा हो, तो आप क्या करेंगे?"

कुँवर कामेश्वर ने कहा—"उसका चेला हो जाऊँगा।"

यह कहकर वह हँसने लगे, और मालती भी नीची दृष्टि करके हँसने लगी। कुँवर कामेश्वर पत्र पढ़ने लगे। मालती का हृदय वेग

से स्पंदित होने लगा, और उसके कपोलों की रक्ताभा गहरी होने लगी।

कुँवर कामेश्वर के हृदय की एक-एक कली प्रस्फुटित हो रही थी, जिससे अनंत प्रेम की उज्ज्वल धारा मालती को चारो ओर से प्लावित कर रही थी, जिसमें कामुकता की कालिमा न थी, क्षणिक आवेश का नशा न था। पत्र समाप्त कर उन्होंने मालती को हृदय से लगाने का प्रयत्न किया, लेकिन वह छिटककर दूर खड़ी हो गई।

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा, फिर कहा—"यह छलना कैसी, गुड़ दिखाकर पत्थर मारना !"

मालती ने कहा—"आप अपनी अधिकार-परिधि से बाहर क्यों जाते हैं ? आपने कहा था, मुझे अपना मित्र मानो, मैं उसी दृष्टि से आपको मानती हूँ।"

यह आघात इस समय सहन करने के लिये वह तैयार न थे। उन्होंने असहाय दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—"मुझे स्मरण है, मैं इतने से ही संतुष्ट हो जाऊँगा। ख़ैर।"

उनकी आँखों से वेदना का मलिन प्रकाश निकलकर मालती के हृदय में दया का संचार करने लगा।

मालती ने मधुर मुस्कान-सहित कहा—"यह तो आपका ही निर्णय है।"

कुँवर कामेश्वर ने म्लान मुख से कहा—"फिर यह पत्र क्यों लिखा ?"

मालती ने हँसकर उत्तर दिया—"अपने मन को संतुष्ट करने के लिये। कवि जो कुछ लिखता है, वह अपने को सुखी करने के लिये। गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरित-मानस की रचना 'स्वान्तःसुखाय' के भाव से प्रेरित होकर की थी।"

उसकी आँखों से कौतुक और परिहास निकलकर उन्हें चिढ़ाने लगे।

कुँवर कामेश्वर ने वह पत्र अपनी जेब में रखते हुए कहा—"ख़ैर, यह अधूरा पत्र कभी, अवसर आने पर, प्रमाण में पेश किया जायगा।"

मालती ने हँसकर कहा—"विना हस्ताक्षरों के कोई दस्तावेज़ आजकल की अदालतों में प्रमाण नहीं माना जाता।"

कुँवर कामेश्वर ने हँसते हुए कहा—"मेरे प्रेम की अदालत में ऐसा अन्याय नहीं होता, वहाँ संकेत और भावों पर ही फ़ैसला मिलता है।"

मालती ने उत्तर दिया—"इशारों पर फ़ैसला देनेवाली अदालतों के फ़ैसले इजराय में नहीं आते। वे रद्दी की टोकरी की शोभा बढ़ावेंगे।"

कुँवर कामेश्वर ने मालती को पकड़कर सोफ़े पर बैठाते हुए कहा—"फ़ैसले भले ही रद्दी की टोकरी में फेंके जायँ, किंतु प्रेम की अदालत का न्यायाधीश तो मेरे हृदय-सिंहासन पर सदैव आसीन रहेगा।"

मालती ने लज्जित होते हुए कहा—"यह तो ज़बरदस्ती है। मित्रता का बंधन प्रेम के बंधन से उच्च नहीं।"

उसके स्वर में व्यंग्य का आभास था।

कुँवर कामेश्वर ने कुंठित होकर कहा—"इतना व्यंग्य क्यों, मैं अपने अपराध की क्षमा माँगता हूँ।"

मालती ने प्रसन्न होकर कहा—"तब यह लिखकर मेरी सखी से मेरा अपमान क्यों कराया ?"

कुँवर कामेश्वर ने हँसकर कहा—"अच्छा, इसीलिये इतने दिनों तक चुप रहीं, एक पत्र भी न लिखा।"

मालती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

कुँवर कामेश्वर ने उसे अपने पास सप्रेम घसीटते हुए

कहा—"प्रेमी का स्वत्व तो अपराध-पर-अपराध करने में ही प्रकट होता है।"

यह कहकर उन्होंने उसके अरुण कपोलों पर अपने गंभीर प्रेम का चिह्न अंकित कर दिया।

मालती ने लज्जित होकर उनके वक्षःस्थल में अपना मुख छिपा लिया। विद्युत् का प्रकाश अपने नेत्र बंद करने के लिये उत्कंठित हो उठा।

---

(१६)

आभा बड़ी उमंग से मालती के कमरे में प्रविष्ट हुई, किंतु कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह को बैठे देखकर, स्तब्ध होकर खड़ी हो गई। उनसे उसका परिचय न था, और न वह उन्हें पहचानती थी। मालती और कुँवर कामेश्वर सोफ़े पर बैठे हुए आलाप कर रहे थे। आभा को ठिठकते देखकर मालती ने सोफ़े से उठते हुए कहा—"ख़ुश आमदीद! आइए, जिनकी आप वकालत किया करती थीं, आपके वही मुअक्किल आपका मेहनताना देने के लिये घंटों से बैठे हुए आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

आभा अप्रतिभ होकर मालती की ओर देखने लगी। वह जहाँ-की-तहाँ खड़ी रही। उसने कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह की ओर दृष्टि-पात तक न किया।

मालती ने हँसकर कहा—"अरे, आप तो लाज की पुतली बन गईं। वह वकालत कहाँ गई। आज तक मैंने किसी वकील को अपने मुवक्किल से शरमाते और अपने मेहनताने के प्रति इस प्रकार उदासीन होकर संकुचित होते नहीं देखा।"

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह भी विस्मित दृष्टि से आभा और मालती की ओर देखने लगे।

मालती ने उन दोनो की ओर देखते हुए कहा—"क्या दृष्टि-विनिमय हो रहा है?"

आभा वापस लौटने लगी।

मालती ने उसे पकड़ते हुए कहा—"यह क्या बात है, और कौन-सी तहज़ीब है। मैं तुम्हें किसी प्रकार नहीं जाने दे सकती।"

आभा ने ठहरकर मृदु स्वर में कहा—"मुझे जाने दो मालती, मैं तुम्हारे सुख में विघ्न होकर नहीं ठहरना चाहती।"

'मालती ने हँसकर उत्तर दिया—"इसकी चिंता आपको न करनी होगी। आइए, आपका परिचय तो करा दूँ।"

मालती ने आभा को घसीटकर कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह के सामने खड़ा करते हुए कहा—"आपको इनका विशेष रूप से कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि बिना किसी मेहनताने के आपकी तरफ़ से वकालत करती थीं। आपका शुभ नाम है आभाकुमारी। आप मेरे प्रोफ़ेसर और डीन डॉक्टर नीलकंठ शुक्ल की पुत्री हैं। बड़ी प्रतिभा-संपन्न हैं, बी० ए० और एम्० ए० प्रथम श्रेणी में पास किया है, और गोल्ड-मेडलिस्ट भी हैं। आपका विवाह फ़िज़ी के प्रसिद्ध धन-कुबेर पंडित मनमोहननाथ के एकमात्र पुत्र भारतेंदुकुमारजी से, जो हमारे सहपाठी थे, होना निश्चित हुआ है। आप पूर्वजन्म के प्रेम में विश्वास...। उफ़ यह क्या? क्या यह पुरस्कार है?"

कुँवर कामेश्वर ने पूछा—"क्या हुआ, कहते-कहते आप रुक कैसे गईं?"

मालती ने उत्तर दिया—"मेरी सखी अपनी तारीफ़ सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई, जिससे मुझे पुरस्कार मिला है।"

यह कहकर उसने अपने हाथ का क्षत स्थान दिखाया, जो आभा के चुटकी काटने से हुआ था।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद मुस्किराने लगे, और आभा लज्जित होकर दूसरी ओर देखने लगी। मालती अपने क्षत स्थान को मलने लगी।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"अपना वाक्य तो पूरा करें। पूर्व-जन्म में मैं विश्वास करता हूँ। मेरा कोई साथी तो मिला, यह जानकर मुझे पूर्ण संतोष हुआ।"

मालती ने उत्तर दिया—"आपको तो संतोष हुआ, लेकिन मेरा तो काफ़ी नुक़सान हुआ। इतनी ज़ोर से चुटकी काटी, जिसका दाग़ जन्म-भर रहेगा।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने हँसकर कहा—"अनधिकार चेष्टा का यही फल होता है।"

मालती ने उत्तर में कहा—"अब आपके वकालत करने का मौक़ा आया है।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने आभा को नमस्कार करते हुए कहा—"आपकी सखी कभी सीधी तरह कोई बात नहीं कहेंगी, यह मुझे मालूम है। आप डॉक्टर नीलकंठ की पुत्री हैं, जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।"

आभा ने नमस्कार करते हुए कहा—"आपके दर्शन कर मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई।"

मालती ने हँसकर कहा—"अब ठीक हुआ। अब मेरा यहाँ क्या काम। जब एक दूसरे से मिलकर आप लोगों को इतनी प्रसन्नता हुई, तब मेरे रहने से तो उसमें विघ्न होगा, अतएव मैं जाती हूँ।"

यह कहकर वह जाने लगी।

आभा ने उसे पकड़ते हुए कहा—"यह मेरे जाने के लिये संकेत है। मैं तो पहले ही जाती थी, आपने ही परिचय देने के बहाने व्यर्थ मुझे रोक लिया। आप कष्ट न करें, मैं जाती हूँ। यही नहीं कि यहाँ से जाती हूँ, बल्कि आपके शहर और आपके देश से जाती हूँ। दो दिन से आपके दर्शन नहीं मिले। मिलते कैसे। ख़ैर, मुझे क्या मालूम था, आप इतनी व्यस्त हैं, नहीं तो परसों या कल आकर आप लोगों के दर्शन करती।"

मालती ने आभा को बैठाते हुए कहा—"कहाँ जा रही हो? विवाह होने के पहले ही क्या ससुराल जा रही हो?"

आभा के कपोल लाल हो गए, उसने कहा—"जिस बात की कोई बिना नहीं, उसे बार-बार कहकर सत्य नहीं बताया जा सकता।"

मालती ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—"क्या भारतेंदु बाबू के साथ आपका विवाह तय नहीं हुआ? क्या मैं झूठ कहती हूँ?"

आभा ने उत्तर दिया—"ख़ैर, इन बातों को जाने दीजिए। मैं पापा के साथ संसार-भ्रमण के लिये जा रही हूँ। पापा भी तो यहाँ मेरे साथ आए हैं, बड़े बाबू से पूछने के लिये कि क्या वह भी चलेंगे।"

मालती ने चकित होकर कहा—"क्या बाबूजी भी आयँगे? उन्होंने तो इसका कोई ज़िक्र नहीं किया। हाँ, याद आया, उस दिन तुम्हारे यहाँ डॉक्टर साहब ने कहा था कि तुम्हारे ससुर कोई आश्रम उद्घाटन करनेवाले हैं, उसमें सम्मिलित होने का निमंत्रण आया है। मुझसे भी चलने को कह रहे थे। क्या बताऊँ, अगर इलेक्शन का झगड़ा न होता, तो मैं यह सुअवसर हाथ से कभी न जाने देती।"

आभा ने कुँवर कामेश्वरप्रसाद से कहा—"आपने कुछ सुना है। मेरी सखी शीघ्र ही एम्० एल्० ए० होने जा रही हैं।"

उन्होंने मुस्कान-सहित कहा—"जी हाँ, आज कामिनी से सुना है, उसने मौक़ा मिलने पर यह भेद प्रकट कर दिया।"

आभा ने पूछा—"क्या आपको मालूम है, यह नाटक क्यों रचा गया है?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने सिर हिलाकर अपनी अनभिज्ञता प्रकट की।

आभा ने कहा—"पुरुष-जाति के विरुद्ध आंदोलन खड़ा करने के लिये। पुरुष-जाति हर प्रकार स्त्री-जाति को कुचल रही है, उसे अपनी दासी नहीं, ग़ुलाम बनाए हुए है, उससे छुटकारा दिलाने के लिये, स्त्री-जाति के अधिकार सुरक्षित करने के लिये।"

मालती ने तुरंत कहा—"और पुरुषों को अपना ग़ुलाम बनाने के लिये।"

आभा ने हँसकर कहा—"और तलाक़ का क़ानून बनाने के लिये।"

आभा के अंतिम शब्दों ने कुँवर कामेश्वरप्रसाद को चौंका दिया। उन्होंने आहत दृष्टि से मालती और आभा की ओर देखा। उनके मुख का रंग फीका पड़ गया, और मालती भी लज्जित होकर दूसरी ओर देखने लगी।

आभा को अपनी ग़लती तुरंत मालूम हुई, और वह भी म्लान दृष्टि से उन दोनो की ओर देखकर चुप हो गई।

उस कमरे में भयानक निस्तब्धता छा गई।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने उस निस्तब्धता को भंग करते हुए कहा—"मुझे प्रसन्नता है कि सुधार का श्रीगणेश पहले मेरे घर में होने जा रहा है। उधर पिताजी भी एम्० एल्० ए० होने जा रहे हैं, और इधर श्रीमतीजी भी। उन दोनो का मूल-कारण मैं ही हूँ।"

यह कहकर उन्होंने हँसने की चेष्टा की, किंतु उनके कंठ की कर्कशता उनकी मानसिक पीड़ा का परिचय देने लगी, जिससे आभा सत्य ही आकुल होकर पश्चात्ताप करने लगी। मालती निष्प्रभ मुख से दृष्टि नीची करके पृथ्वी की ओर देखने लगी।

इसी समय कामिनी ने सहर्ष उस कमरे में आकर कहा—"बाबूजी दक्खिनी अमेरिका जा रहे हैं। मैं भी उनके साथ जाऊँगी।"

मालती, जो बहुत देर से उद्विग्न हो रही थी, इस अवसर को पाकर धन्य हो गई। उसने कामिनी से कहा—"क्या सचमुच बाबूजी जायँगे।"

कामिनी ने उत्तर दिया—"क्या मैं झूठ कहती हूँ? अगर तुम्हें विश्वास न हो, तो जाकर पूछ आओ। आभा जीजी भी तो जायँगी। प्रोफ़ेसर साहब भी जा रहे हैं।"

मालती ने उठते हुए कहा—"अच्छा, मैं जाकर पूछती हूँ। अगर बाबूजी ने जाने से इनकार किया, तो याद रखना।"

कामिनी ने भोलेपन से कहा—"हाँ, अगर वह न जा रहे हों, तो मुझे मारना।"

यह कहकर मालती इसी बहाने कमरे के बाहर हो गई।

कामिनी ने कहा—"आभा जीजी, कहो, तो उस दिनवाली बात कह दूँ।"

आभा ने चकित होकर कहा—"कौन-सी बात कामिनी?"

कामिनी ने हँसकर कहा—"उस दिनवाली बात, जब तुम जीजाजी को जीजा कहते शरमाती थीं।"

यह कहकर वह हँसने लगी। आभा लज्जा से लाल हो गई।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कामिनी से आदर के साथ पूछा—"क्या बात है, कामिनी? मेरी बात मुझसे न छिपाओ।"

आभा ने आँखों से कामिनी को कहने के लिये मना किया।

कामिनी ने उत्तर दिया—"नहीं, आभा जीजी की बात मैं नहीं कहूँगी। वह मुझे बहुत प्यार करती हैं, और जब बड़ी जीजी मुझे मारती हैं, तो बचाती हैं।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"मैं तुम्हारे लिये बहुत-से खिलौने ला दूँगा। एक ऐसा हवाई जहाज़ ले दूँगा, जिस पर तुम बैठकर अपने घर में उड़ती हुई घूमो।"

कामिनी ने हँसकर कहा—"जाइए, कहीं ऐसा हवाई जहाज़ होता भी है। मैं सब जानती हूँ। मैं किसी तरह आभा जीजी की बात नहीं कहूँगी। हाँ, बड़ी जीजी की बात पूछो, सब बता दूँगी, चाहे हवाई जहाज़ ले दो, चाहे न ले दो।"

मालती ने लौटकर कहा—"हाँ, बड़ी जीजी तो तुम्हारी दुश्मन हैं। आभा से तुम्हारी बड़ी मित्रता।"

कामिनी ने कमरे के बाहर दौड़कर जाते हुए कहा—"तुम मुझे मारती क्यों हो, मैं जीजा से तुम्हारी शिकायत करूँगी।"

मालती, आभा और कुँवर कामेश्वर हँसने लगे। कामिनी प्रसन्नता में मगन चली गई।

मालती ने पूछा—"आभा, तुम कब जा रही हो?"

आभा ने उत्तर दिया—"कल शाम को हम लोग रवाना हो जायँगे, और दो दिन कलकत्ते ठहरकर फिर जहाज़ में रवाना होंगे। क्या तुम्हारा चलने का इरादा नहीं होता?"

मालती ने कहा—"बाबूजी नहीं जा रहे हैं। कामिनी को बहलाने के लिये उन्होंने कह दिया था। इस अवसर पर मैं कैसे देश छोड़ सकती हूँ।"

फिर धीरे से उसके कान के समीप कहा—"मेरे जाने से तुम्हारे 'हनी-मून' में विघ्न पड़ेगा।"

आभा ने उसे धक्का देते हुए कहा—"तुम्हें हमेशा मज़ाक़ ही सूझता है।"

मालती ने गंभीर होकर कहा—"जीवन क्या है? वह कुछ हँसी, कुछ रंज, कुछ शोक, कुछ चिंता, कुछ आनंद, कुछ सोहाग, कुछ आशा, कुछ निराशा का समूह-मात्र है।"

आभा ने हँसकर कहा—"वाह, कितना स्पष्ट वर्णन है।"

कुँवर कामेश्वर ने कहा—"बेशक, जीवन मृत्यु की भूमिका है।"

आभा ने हँसकर कहा—"अथवा ईश्वर की शक्तियों के संघर्षण की रणभूमि है।"

मालती ने हँसकर कहा—"अथवा पूर्व-जन्म का परिशिष्ट है।"

यह कहकर वह हँस पड़ी। आभा कुछ लज्जित हो गई।

आभा ने उठते हुए कहा—"अब तो आपके दर्शन नहीं होंगे, इसलिये अभी से बिदा माँग लेना उचित है।"

मालती ने उठते हुए कहा—"अच्छा, मैं जाकर पूछती हूँ। अगर बाबूजी ने जाने से इनकार किया, तो याद रखना।"

कामिनी ने भोलेपन से कहा—"हाँ, अगर वह न जा रहे हों, तो मुझे मारना।"

यह कहकर मालती इसी बहाने कमरे के बाहर हो गई।

कामिनी ने कहा—"आभा जीजी, कहो, तो उस दिनवाली बात कह दूँ।"

आभा ने चकित होकर कहा—"कौन-सी बात कामिनी?"

कामिनी ने हँसकर कहा—"उस दिनवाली बात, जब तुम जीजाजी को जीजा कहते शरमाती थीं।"

यह कहकर वह हँसने लगी। आभा लज्जा से लाल हो गई।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कामिनी से आदर के साथ पूछा—"क्या बात है, कामिनी? मेरी बात मुझसे न छिपाओ।"

आभा ने आँखों से कामिनी को कहने के लिये मना किया।

कामिनी ने उत्तर दिया—"नहीं, आभा जीजी की बात मैं नहीं कहूँगी। वह मुझे बहुत प्यार करती हैं, और जब बड़ी जीजी मुझे मारती हैं, तो बचाती हैं।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"मैं तुम्हारे लिये बहुत-से खिलौने ला दूँगा। एक ऐसा हवाई जहाज़ ले दूँगा, जिस पर तुम बैठकर अपने घर में उड़ती हुई घूमो।"

कामिनी ने हँसकर कहा—"जाइए, कहीं ऐसा हवाई जहाज़ होता भी है। मैं सब जानती हूँ। मैं किसी तरह आभा जीजी की बात नहीं कहूँगी। हाँ, बड़ी जीजी की बात पूछो, सब बता दूँगी, चाहे हवाई जहाज़ ले दो, चाहे न ले दो।"

मालती ने लौटकर कहा—"हाँ, बड़ी जीजी तो तुम्हारी दुश्मन हैं। आभा से तुम्हारी बड़ी मित्रता।"

कामिनी ने कमरे के बाहर दौड़कर जाते हुए कहा—"तुम मुझे मारती क्यों हो, मैं जीजा से तुम्हारी शिकायत करूँगी।"

मालती, आभा और कुँवर कामेश्वर हँसने लगे। कामिनी प्रसन्नता में मग्न चली गई।

मालती ने पूछा—"आभा, तुम कब जा रही हो?"

आभा ने उत्तर दिया—"कल शाम को हम लोग रवाना हो जायँगे, और दो दिन कलकत्ते ठहरकर फिर जहाज़ में रवाना होंगे। क्या तुम्हारा चलने का इरादा नहीं होता?"

मालती ने कहा—"बाबूजी नहीं जा रहे हैं। कामिनी को बहलाने के लिये उन्होंने कह दिया था। इस अवसर पर मैं कैसे देश छोड़ सकती हूँ।"

फिर धीरे से उसके कान के समीप कहा—"मेरे जाने से तुम्हारे 'हनी-मून' में विघ्न पड़ेगा।"

मालती ने उसे बैठाते हुए कहा—"वाह, अभी से चल दीं। पहले तो पत्र देने पर मिठाई माँगती थीं, अब आज जब वह स्वयं आ गए हैं, तो मुँह भी मीठा न करोगी।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"विना जल-पान किए हुए आप कैसे जा सकती हैं। आज यहाँ ठहरिए। थोड़ी देर में शाम होने-वाली है, हम लोग टेनिस खेलेंगे।"

फिर मालती से कहा—"आप कृपा करके भारतेंदु बाबू को बुला लें, और उनसे भी मेरा परिचय करा दें।"

मालती की आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं। उसने उत्साह-पूर्वक कहा—"उफ़्, मैं बड़ी बेवक़ूफ़ हूँ। यह मुझे अब तक क्यों याद नहीं आया। मैं अभी मोटर पर जाती हूँ, और उन्हें अपने साथ लेकर आती हूँ। नौकर भेजूँ, तो वह उसे टाल देंगे। मुझे ही जाना पड़ेगा।"

आभा ने आपत्ति-पूर्ण दृष्टि से मालती की ओर देखा।

मालती ने उस पर किंचित् ध्यान नहीं दिया, और कहा—"जनाब, मैं आपसे डरती नहीं, जो आप मुझे आँखें दिखाती हैं। आपको अगर जाना है, तो अपने मुअक्किल से पूछ लें। मेरे ऊपर आपका कोई ज़ोर नहीं।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने हँसकर कहा—"मेरा इतना अनुरोध नहीं टालेंगी, यह मुझे विश्वास है। कल तो आप चली जायँगी, आज ही मौक़ा है कि कुछ देर तक खेल लिया जाय।"

मालती ने उत्साह से उठते हुए कहा—"आभा को आप अगर जाने देंगे, तो याद रखिए, भारतेंदु बाबू आपको कभी क्षमा न करेंगे। मैं पंद्रह या बीस मिनट में उन्हें लेकर आती हूँ।"

यह कहकर वह सवेग कमरे के बाहर हो गई।

आभा और कुँवर कामेश्वर अन्य विषयों पर बातें करने लगे।

चतुर्थ खंड

मोह और प्रेम का। वह अभी तक अपना कर्तव्य निर्धारित नहीं कर पाए थे। अमीलिया के सम्मुख जाने का उनमें साहस न था, और न आभा की आशा छोड़ने का। आभा और अमीलिया का सम्मिलन अवश्यंभावी देख पड़ता था, परंतु उसका परिणाम क्या होगा, वह न सोच सकते थे। परिणाम सोचने का जब अवसर आता, वह सिहरकर उस विचार को अपने हृदय से दूर करने का प्रयत्न करते।

डॉक्टर नीलकंठ जीवन की जटिलताओं में इतने आबद्ध थे कि उन्हें किसी ओर ध्यान देने का अवसर न मिलता था। उनके सामने केवल एक चिंता थी, वह थी आभा को सुखी करने की-जब आभा तितली की तरह जहाज़ के एक सिरे से दूसरे सिरे तक मँडराती घूमती, उनकी आँखों से वात्सल्य उमड़कर उसकी रक्षा करता हुआ पीछे-पीछे घूमता। वह मुग्ध चित्त होकर देखते रह जाते।

सूर्य अपनी लालिमा पीछे छोड़कर पश्चिम में अस्त हो चुका था, और वह भी शब्द की प्रतिध्वनि की भाँति शनैः-शनैः कम हो रही थी। आभा ललचाई हुई आँखों से उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देख रही थी। भारतेंदु उसके पास जाकर खड़े हो गए। आभा उन्हें पास खड़े देखकर कुछ संकुचित हो गई।

भारतेंदु ने कहा—"समुद्र में सूर्यास्त की शोभा एक अद्भुत सौंदर्य धारण करती है। यहाँ वह वृक्षों या पर्वतों की आड़ में अस्त नहीं होता। जल से उदय होता और जल में ही अस्त होता है।"

आभा ने उत्तर दिया—"प्रकृति की शोभा का आगार समुद्र है। हिमाच्छादित पर्वत-माला का सौंदर्य भी निराला है, किंतु ऐसा नहीं, जैसा यहाँ देखने को मिलता है।"

भारतेंदु ने कहा—"यहाँ प्रकृति का सौंदर्य अपने साथ कुछ भय का आभास लिए रहता है। अथाह जल-राशि से मनुष्य का प्रीति-संबंध नहीं।"

आभा ने उत्तर में कहा—"सौंदर्य किसी स्थान या काल की संपत्ति नहीं। वह हर जगह व्याप्त है, केवल देखने के लिये आँखें और समझने के लिये बुद्धि चाहिए।"

भारतेंदु ने हँसकर कहा—"यह दूसरी बात है।"

आभा ने कहा—"होगी, किंतु जो मैं कहती हूँ, वह सत्य है या नहीं?"

भारतेंदु ने मुग्ध दृष्टि से देखते हुए कहा—"यह मैं कब अस्वीकार करता हूँ।"

आभा आत्मसंतुष्टि से मुस्किराकर चुप हो गई।

भारतेंदु ने बातों का सिलसिला बदलते हुए कहा—"मालती ने उस दिन आपको बहुत विरक्त किया था?"

आभा ने सलज्ज कंठ से कहा—"उसका शुरू से यही हाल है। वह विनोदी जीव है, और उसका यही व्यवसाय है। किंतु......"

भारतेंदु ने पूछा—"किंतु क्या?"

आभा ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं, यही कि भगवान् को उसका हँसना नहीं सुहाया।"

भारतेंदु ने चकित होते हुए कहा—"आख़िर वह क्या? भगवान् को क्यों नहीं सुहाया?"

आभा ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

आभा को चुप देखकर भारतेंदु की उत्सुकता बढ़ गई। उन्होंने पूछा—"मैं आपका मतलब नहीं समझा। ईश्वर की कृपा से मैं उसे सब प्रकार से संतुष्ट देखता हूँ। इस पृथ्वी पर जिस-जिस

वस्तु की कामना की जा सकती है, वह सब उसे प्राप्त है, फिर दुखी होने का क्या कारण ?"

आभा का ध्यान आकाश के पश्चिमीय खंड में देदीप्यमान शुक्र की ओर था, जो चंद्रमा की प्रतिद्वंद्विता कर रहा था। उसने भारतेंदु की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

भारतेंदु ने पुनः पूछा—"आपने कुछ नहीं बतलाया। क्या मुझसे कहने योग्य नहीं ?"

आभा ने अन्यमनस्क की भाँति कहा—"ऐसी कोई विशेष बात नहीं।"

भारतेंदु चुप हो गए।

आभा ने थोड़ी देर बाद कहा—"पुरुषों ने स्त्रियों का जीवन एक खिलौना बना रक्खा है।"

भारतेंदु कुछ अप्रतिम हो गए।

आभा ने धीमे स्वर में कहा—"वह युग गया, जब स्त्रियाँ पुरुषों की गुलामी करती थीं।"

भारतेंदु ने मुस्किराकर कहा—"बेशक, इस समय पुरुष स्त्रियों की गुलामी करेंगे।"

उनके स्वर में कुछ व्यंग्य की कर्कशता थी, जिसने आभा के स्वाभिमान को कोंच दिया।

उसने तीव्र स्वर में कहा—"हम स्त्रियाँ यह कदापि नहीं कहतीं कि पुरुष हमारी गुलामी करें, हम लोग तो अपने अधिकार-मात्र माँगती हैं। हम केवल यह कहती हैं कि हम भी मनुष्य हैं, और इस पृथ्वी पर जैसे पुरुष को अधिकार प्राप्त हैं, वैसे हमको भी मिलना वाजिब है। एक शब्द में, हम केवल समानता चाहती हैं।"

भारतेंदु ने कुछ हँसकर कहा—"हमारे हिंदू-समाज में उनको पुरुषों से श्रेष्ठ स्थान दिया गया है।"

आभा ने मन्यंग्य कहा—"हाथी के दाँत खाने के और होते हैं, दिखलाने के और। इस विषय में जो कुछ न कहा जाय, वह अच्छा है।"

भारतेंदु ने लज्जित होकर कहा—"व्यावहारिक रीति से चाहे जो कुछ हो, किंतु आदर्श रूप से तो उनका स्थान अवश्य उच्च है।"

आभा ने तीच्ण स्वर में कहा—"यह पोल तो यहीं देखने को मिलती है। सुनहले सिद्धांतों की ओट में लोहे की ज़ंजीरें इसी हिंदू-समाज में हैं। दुनिया के सामने ढोल पीटने को तो हमारे शास्त्रकार, क़ानून बनानेवाले कहेंगे—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।' परंतु साथ ही दूसरे टीकाकार कहेंगे—'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।' यह द्वैतवाद तो इसी हिंदू-धर्म में देखने को मिलता है।"

आभा के स्वर में तीव्र कटुता थी। भारतेंदु को उत्तर देने का साहस न हुआ।

आभा ने जोश के साथ कहा—"इस हिंदू-समाज में यह देखने को मिलेगा कि पुरुष एक स्त्री को परित्यक्त कर दूसरा विवाह कर सकता है, एक स्त्री का सर्वस्व नष्ट कर उसे दूध की मक्खी की तरह दूर फेंक सकता है। यही नहीं, संतान के नाम पर सैकड़ों विवाह कर सकता और उन विवाहिता स्त्रियों को पदाघात द्वारा गृहस्थी के समानाधिकार से वंचित कर सकता है। यह उच्चता का रूप इस समाज में देखने को मिलेगा! कहिए, या इससे अधिक कुछ और।"

भारतेंदु से कोई उत्तर देते न बन पड़ा। अमीलिया के साथ उनका व्यवहार उनके मानस-पटल में जाग्रत् होकर उन्हें धिक्कारने लगा। वह मलीन दृष्टि से सागर के ऊपर कालिमा का प्रसार देख अपने हृदय की कालिमा का मिलान करने लगे।

---

(२)

संभवतः, राजा सूरजमल्लसिंह के राज्य-काल में, यह पहला अवसर था, जब दरिद्रों को भोजन मिला हो। दरिद्र नारायण के लाड़ले पुत्र सकुटुंब अनूपगढ़ के राजमहल के सामने एकत्र होकर उनका जयजयकार मनाने लगे। पूड़ी और शक्कर के लिये निर्वस्त्र, अर्द्ध-नग्न गाँवों के ग़रीब एक दूसरे पर कौवों-कुत्तों की तरह टूट पड़ने लगे, और राज के सिपाहियों के डंडे भी अपना नृत्य निरंकुशता के साथ दिखाने लगे। एक तुमुल कोलाहल उमड़कर अनूपकुमारी को झरोखों पर लाने के लिये आह्वान करने लगा। दरिद्रों ने अपनी फ़रयाद की, और अनूपकुमारी की दासी ने आकर तुरंत आज्ञा प्रचारित कर दी। दरिद्र जयजयकार कर उसे आशीर्वाद देने लगे। क्षण-मात्र में रानी श्यामकुँवरि के प्रति जो सहानुभूति थी, अंतर्हित होकर अनूपकुमारी के प्रति श्रद्धा में परिवर्तित हो गई। उस दिन दरिद्रों ने उसे अपनी रानी स्वीकार कर लिया, और अनूपकुमारी हर्ष में मग्न हो गई। जनता का जयजयकार धीरे-से-धीरे मनुष्य का दिमाग़ फिरा देने का बल रखता है।

उत्तप्त मदिरा के आवेश ने अनूपकुमारी के हृदय की फ़ैयाज़ी का द्वार खोल दिया, जिसे उन दरिद्रों के जयजयकार ने उसमें और सहायता प्रदान की। उसने दासियों को पैसों की थैलियाँ लाने की आज्ञा दी। बात-की-बात में वे सरकारी ख़ज़ाने से आ गईं, जिन्हें लुटा देने का आदेश दिया। बिलखती हुई दरिद्रों की भीड़ घनी होने लगी, और कोलाहल पहले से भी अधिक होकर उसके हृदय में अनुपम आनंद भरने लगा। उनका जयजयकार भी उस

होने लगा। अनूपकुमारी की आँखों से कौतूहल का स्रोत उमड़कर राजा सूरजबख़्शसिंह को बुलाने के लिये आतुर हो उठा। वह दौड़ती हुई उनके पास गई। वह इस समय मदिरा के आवेश में बेसुध लेटे हुए थे।

अनूपकुमारी ने उन्हें जगाते हुए कहा—"ज़रा उठकर देखो तो, जिस जनता ने तुम्हें एसेंबली का मेंबर चुना है, वही किस तरह तुम्हारा गुण-गान कर रही है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह की तंद्रा न टूटी।

उसने एक गिलास में ठंडा जल लेकर, अलमारी से एक शीशी निकालकर दो बूँदें उस जल में डालीं, और उन्हें पिला दिया। थोड़ा-सा शीतल जल आँखों पर लगाकर पंखा झलने लगी। शीतल जल और दवा उनकी चेतना जागरित करने लगी। थोड़ी देर बाद उन्होंने अपने नेत्र खोल दिए, और प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा।

अनूपकुमारी ने कहा—"आपके मेंबर होने की ख़ुशी में जनता आपका जयजयकार कर रही है, और आप यहाँ बेहोश पड़े हैं।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने म्लान हास्य के साथ कहा—"तुम तो मौजूद हो, मेरी क्या ज़रूरत ?"

अनूपकुमारी ने हँसकर उत्तर दिया—"कल आप कहेंगे कि दिल्ली जाकर एसेंबली में मेरे स्थान पर बैठकर क़ानून बनाओ।"

राजा सूरजबख़्शसिंह का नशा अभी उतरा नहीं था, उन्होंने आवेश के साथ कहा—"मैं वह भी करके दिखा दूँगा। अगले चुनाव में तुमको भी किसी ज़िले से खड़ाकर निर्वाचित करवाऊँगा, और अपने साथ, एसेंबली में बैठाकर क़ानून बनाने में तुम्हारा मत दिलवाऊँगा।"

अनूपकुमारी ने मुस्किराकर कहा—"मालूम होता है, अभी

तक कुछ नशा बाक़ी है।" यह कहकर, वह गिलास में जल डालकर दूसरी ख़ुराक बनाने लगी।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने सक्रोध वह गिलास उठाकर दूर फेंक दिया। चाँदी का गिलास ज़ोर से गिरने से विकृतांग हो गया। अनूपकुमारी विस्मय से उनकी ओर देखने लगी।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने सक्रोध कहा—"मैं नशे में हूँ, यह तुमने कैसे कहा। जो मैं कहता हूँ, सत्य कहता हूँ, इसमें किसी प्रकार का शक या शुबहा न समझो। मैं यह करके तुम्हें दिखा दूँगा। तुम भी लेजिस्लेटिव एसेंबली की सदस्या होगी, यह मैं कहे देता हूँ।"

अनूपकुमारी ने उठते हुए कहा—"अच्छी सनक सवार हुई। परदे में तो जकड़े हुए हैं, घर से बाहर पैर रखना आफ़त है, कहीं सूरज की किरण पड़ गई, तो राजा की मर्यादा नष्ट हो गई, हाल तो यह है, उस पर भी कहते हैं कि मैं लेजिस्लेटिव एसेंबली का मेंबर बनवाऊँगा। वहाँ तो सैकड़ों-हज़ारों आदमियों के साथ बैठना पड़ेगा, बहस वग़ैरह करना और व्याख्यान देना पड़ेगा। यह तो कहिए, वहाँ राजघराने का परदा कैसे चलेगा। राजवंश की मर्यादा की नाक न कट जायगी।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने सरोष कहा—"ठीक है, आज से मैं अपने घर से परदा-प्रथा को विदा करता हूँ। पुरानी लकीर पीटते-पीटते वर्षों गुज़र गए, अब ज़माना उसे नहीं चाहता। मैं भी अपना पुरानापन छोड़ दूँगा। तुम्हें भी नई वेष-भूषा में सजाऊँगा, अपनी और तुम्हारी काया-पलट करूँगा।"

अनूपकुमारी ने साभिमान कहा—"अभी तो ऐसा कहते हो, और जब मैं ज़रा चिक के बाहर सिर निकालकर झाँक लूँगी, तो मेरी गरदन नापने के लिये तैयार हो जाओगे। जब तक नशा है, तब तक ये बातें हैं।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने अधीर होकर कहा—"मुझे परेशान मत करो। जो कुछ मैंने कहा है, वह किया है, और आगे भी करूँगा। कह दिया कि मैंने आज से परदा-प्रथा उठा दी। अब तुम्हारे साथ में खुल्लमखुल्ला सर्वत्र जाऊँगा।"

अनूपकुमारी ने वंकिम कटाक्ष-सहित कहा—"तब बड़ा अच्छा लगेगा। लोग उँगली उठाएँगे, और कहेंगे कि यह राजा की 'रखैल' है, उस वक़्त मारे शरम के मैं मर जाऊँगी। अभी तो ठीक है, न कोई देखता है, और न कहता है। मैं अपने क़ैदख़ाने ही में मस्त हूँ। क्षमा कीजिए, मैं परदे के बाहर निकलना नहीं चाहती।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने सँभलकर कहा—"मैं अब समझा। आपको इस बात का रंज है कि दशहरे के दिन तुम्हें राजरानी बनाने का वचन दिया था, और अब तक बनाया नहीं। क्यों, यही बात है न?"

अनूपकुमारी ने अपनी आँखें पोंछते हुए कहा—"नहीं, इसका रंज क्यों होगा? दुनिया में आजतक 'रखैल' कहीं 'परिणीता' हुई है, जो होऊँगी।"

उसके स्वर में व्यंग्य की तीव्रता थी, और वेदना का आभास था।

राजा सूरजबख़्शसिंह तिलमिला उठे। उन्होंने कहा—"यह तुम न समझना कि मैं उस बात को भूल गया हूँ। मुझे अच्छी तरह याद है। मैं केवल अवसर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। इधर लालसाहब और उनकी मा से बड़ी मुश्किलों से छुट्टी मिली है। यह तो तुम जानती ही हो कि मैं उनके झगड़े में किस तरह मशग़ूल था। चार-पाँच बार गवर्नर साहब से मिलने जाना पड़ा, और कई सवालों का जवाब देना पड़ा। अभी तक वह झगड़ा चल ही रहा है। लड़कियों की शादी के लिये हुक्काम ज़ोर दे रहे हैं, जान बड़े

अज़ाब में फँसी है। मेरे साले राजा किशोरसिंह का भी हुक्कामों में ख़ासा चलन और असर है। मैं अपनी सब शक्तियाँ उनसे लड़ने में लगा रहा हूँ। दम लेने को भी फ़ुरसत नहीं मिलती। अगर कहीं मेरे दुश्मनों की चल गई, तो बड़ी हँसी होगी। दूसरे, एसेंबली के लिये खड़े होने से उसमें भी काफ़ी वक्त सर्फ़ करना पड़ता था। यह सब तुम्हें मालूम ही है, कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। इसी गड़बड़ की वजह से मैंने तुम्हारे साथ विवाह की रस्म अदा नहीं की। सब काम मुझको स्वयं करना पड़ता है। बाबू मातादीनसहाय दीवान तो हैं, लेकिन उनमें काम करने की तामीज़ नहीं। गवर्नर साहब से मिलते, बात करते घबराते हैं। फिर तुम्हीं बताओ, कैसे काम चल सकता है। हाँ, उनसे दवाएँ चाहे जितनी बनवा लो, और इससे ज़्यादा उनसे कुछ नहीं होने का। तुम्हारे लिहाज़ से उनको ऐसी ज़िम्मेदारीवाली जगह पर रखना पड़ता है।"

अनूपकुमारी ने रुष्ट होकर कहा—"यह ख़ूब, मैंने कब आपसे सिफ़ारिश की थी कि मातादीन को दीवान बनाइए। मैं क्यों कहूँगी? आपने ही उनको अपनी ख़ुशी से इस पद पर तैनात किया है। दवाएँ खाने की ख़्वाहिश मुझे थी या आपको। मेरे ऊपर नाहक़ एहसान का बोझ रखते हैं।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने पूछा—"तो फिर मैं मातादीन को हटाकर किसी दूसरे चतुर व्यक्ति को नौकर रख लूँ? पीछे फिर मुझे कोई दोष न देना।"

अनूपकुमारी ने चिढ़कर कहा—"मातादीन मेरा कौन है, जो आपको दोष दूँगी। जब वह इस काम लायक़ नहीं, तो उनको हटा देने में कोई हर्ज नहीं।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"बस, तो ठीक, कल ही उनको

दीवान के पद से अलाहिदा करता हूँ, और किसी पढ़े-लिखे होशियार आदमी को रक्खूँगा, जिसका हुक्काम में असर हो।"

अनूपकुमारी ने उत्तर दिया—"बेशक, जैसी ज़रूरत हो, वैसा करना चाहिए। राजनीति यह सिखलाती है कि राजा को कभी किसी पुरुष के अधीन न रहना चाहिए। आप मातादीन की मुट्ठी में हैं। वह जैसा चाहता है, वैसा आपसे करा लेता है। आप भी आँखें बंद कर उसके कहने के माफ़िक़ कर देते हैं। आपके ख़र्च के लिये सरकारी ख़ज़ाने में पैसा नहीं और इधर वह ज़मींदारी-पर-ज़मींदारी ख़रीदता जाता है! क्या आपने कभी सोचा कि यह धन उसके पास आया कहाँ से? उसे सिर्फ़ डेढ़ सौ रुपया मासिक वेतन मिलता है। क्या इतनी कम तनख़्वाहवाला व्यक्ति ज़मींदारियाँ ख़रीद सकता है? यह सब आपका धन है, जो उसके बाल-बच्चों के लिये इकट्ठा हो रहा है। मेरे सिर्फ़ एक लड़का है, उसके लिये सिवा एक मकान के दूसरी, सुई की नोंक बराबर भी, ज़मीन नहीं, ख़रीदी गई। उसने आपके साथ-साथ मुझे भी अंधा कर रक्खा है। मैंने भी अभी तक न आपका ख़याल किया न अपना। मैं समझती थी, आप उसकी चतुराई के लिये उसकी क़द्र करते हैं। यहाँ मेरे पास तो वह अपनी तारीफ़ की बड़ी डींग मारता है। वह तो आपको बिलकुल मूर्ख साबित किया करता है। मैं क्या जानूँ, उसमें अफ़सरों से बोलने की भी तमीज़ नहीं। मैं ख़ुद कई साल से उससे परेशान हूँ, किंतु आपके डर से कुछ कहती न थी।"

राजा सूरज़बख़्शसिंह ने सक्रोध कहा—"अच्छा, अपनी अक़्लमंदी की बड़ाई तुम्हारे पास करता है, यह मुझे नहीं मालूम था। यह मैं देख रहा हूँ कि कैसे वह मेरी प्रजा को लूट रहा है। मगर मुझे सिर्फ़ तुम्हारा लिहाज़ था। तुम्हारा भाई होने से मैं उसके

ख़िलाफ़ कोई शिकायत न सुनता था। अब कल ही कान पकड़कर बाहर निकाल दूँगा।"

अनूपकुमारी ने शांत होकर कहा—"किसी तरह का अपमान करके निकालने में मेरी और आपकी बुराई होगी, और वह भी हमारा दुश्मन होकर हमारे शत्रुओं की सहायता करेगा। कहावत मशहूर है—'घर का भेदी लंका ढाही।' पुराने ज़माने में राजा लोग अपने किसी दीवान को ख़ुद नहीं मारते थे, बल्कि किसी को उसके विरुद्ध खड़ा कर देते थे, और न्याय करते हुए या न्याय की ओट में उसे मारते थे, जिसमें वह उनके विरुद्ध कुछ कह न सके। यह ठीक है कि आपके हाथ में न्याय करने की सत्ता यानी अख़्तियार-अदालत नहीं है, किंतु किसी षड्यंत्र में आप उसे सहज ही फँसा सकते हैं। ग़बन, हत्या, जालसाज़ी, डकैती, चोरी, ऐसे कई जुर्म हैं, जिनमें आप उसकी साज़िश दिखा सकते हैं। आजकल का न्याय तो सिर्फ़ शहादत पर है। एक राजा को झूठी शहादत खड़ी करने में कितनी देर लगती है। रुपयों का ज़ोर सब कुछ करा सकता है। शत्रु को इस तरह मारना चाहिए कि वह फिर न उठ सके, और कोई उसका पक्ष भी न ग्रहण कर सके, न लोगों की सहानुभूति ही पैदा हो।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने प्रसन्न मन से कहा—"तुम्हारी-जैसी चतुर मंत्रिणी की सहायता से मैं सबसे एक साथ लोहा ले सकता हूँ। तुम पृथ्वीसिंह की चिंता न करो। उसे मैं चाहे जैसे हो, इस गद्दी का मालिक बनाऊँगा, उसके लिये ज़मींदारी ख़रीदने की क्या ज़रूरत। अगर ईश्वर के कोप से मैं अपनी कोशिश में कामयाब न हुआ, तो उसे अनूपगढ़ का पुराना ख़ज़ाना, जिसका भेद मेरे सिवा कोई नहीं जानता, दे जाऊँगा, जिसमें इतना धन है कि उससे अनूपगढ़-जैसे दस राज्य ख़रीदे जा सकते हैं। मेरे परदादा

महाराजा महीपतिसिंह रुहेलों से लूटकर लाए थे। अभी तक उसमें से किसी ने एक पैसा नहीं छुआ। ज्यों-का-त्यों रक्खा हुआ है।"

अनूपकुमारी की आँखें विस्मय से चमक उठीं।

राजा सूरजबख़्शसिंह संतोष के साथ मुस्किराने लगे।

---

(३)

उसी दिन शाम को जब दीवान साहब अपने हस्बमामूल तरीक़े पर हाज़िरी देने के लिये अनूपकुमारी के महल में आए, तब उनके चेहरे पर प्रसन्नता और विजय की एक झलक थी, जिससे उनकी प्रौढ़ अवस्था की खसखसी दाढ़ी बहुत खूबसूरत देख पड़ती थी। वह कुछ ऊँचे क़द के, शरीर से हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति थे। उनका चेहरा रोबीला था, और कंठ-स्वर गंभीर। इधर वर्षों से दीवानी करते-करते उनका स्वभाव कुछ दबंग और कुछ क्रोधी हो गया था। उनके किए हुए के विरुद्ध कहीं शिकायत-फ़रयाद न थी, जिसके कारण वह निरंकुश और स्वाभिमानी हो गए थे। उनके शरीर का वर्ण गेहुआँ था, और आँखें कंजी तथा मस्तक छोटा। भृकुटियों के केश असंयत और टूटे हुए थे, जिनके देखने से कुछ अमानुषिकता मालूम होती थी। उनकी मूछें लंबी थीं, और पुराने ढंग के होने से गलमूछें भी रखते थे। खसखसी दाढ़ी भी थी, जिसको थोड़े दिनों से रखने का शौक़ पैदा हुआ था। वह पढ़े-लिखे ज़्यादा न थे, थोड़ी हिंदी और उर्दू जानते थ। अँगरेज़ी के अक्षर तथा गिनती छोड़कर वह कुछ न जानते थे। किंतु चालाकी, जालसाज़ी, मक्कारी और फ़रेब में उनका सानी दूसरा न था। वह दूर की सोचनेवाले थे, और हमेशा हरएक काम का जाल वर्षों आगे से बिछाया करते थे।

उनके पास गुप्त रूप से कई ऐसे नौकर और नौकरानियाँ थीं, जो तमाम राजमहल और बाहर के गुप्त भेद उनसे कहा करते थे। इनकी वह विशेष ख़ातिर करते और इन्हें वेतन भी देते थे।

उनके आतंक का सिक्का जमा हुआ था, जिससे सब लोग उनकी ख़ुशामद करते थे, और कभी-कभी तो सिर्फ़ उनका कृपापात्र होने के लिये बहुत-सी गुप्त बातें बतला जाया करते थे। अनूपकुमारी का महल भी उनके गुप्तचरों से बचा न था। वे नियमित रूप से वहाँ की घटनाएँ, जो उनके परोक्ष में घटा करती थीं, सूचित करते रहते थे।

जिस समय दीवान साहब अनूपकुमारी के कमरे में प्रविष्ट हुए, वह बैठी हुई अपने विचारों में मग्न थी। उनको देखकर उसकी भृकुटियों में बल पड़ गया, जिसे उनकी तेज़ आँखों ने तुरंत देख लिया। अनूपकुमारी के मुख पर दूसरे ही क्षण मृदुल हास्य-रेखा थी। उसने बड़े ही आदर से उन्हें बुलाते हुए कहा—"पधारिए।"

दीवान साहब बड़ी शांति से कुर्सी पर बैठ गए।

अनूपकुमारी ने कहा—"आज राजा साहब किसी विशेष कार्य से, अभी कुछ देर पहले, शहर चले गए हैं। आप उनके साथ नहीं गए?"

उसे मालूम था कि वह अकेले गए हैं, लेकिन फिर भी उसने यह प्रश्न उनसे किया।

दीवान साहब ने अपने मन के उदित भाव को बड़ी सतर्कता से दबाते हुए कहा—"मुझे ले जाने की अब कोई आवश्यकता नहीं, और न होगी।"

उत्तर सुनकर, अनूपकुमारी ने एक बार चौंककर त्रस्त दृष्टि से उनकी ओर देखा, किंतु उनका चेहरा संगमरमर की तरह भाव-हीन था।

अनूपकुमारी ने धीमे स्वर में कहा—"मैं आपका मतलब नहीं समझी।"

दीवान साहब ने मुस्किराकर कहा—"मैं अपने कथन में कठिन शब्द कभी इस्तेमाल नहीं करता, और न शायद कोई अर्थ-हीन या व्यर्थ।"

अनूपकुमारी ने कहा—"यह तो मैं अच्छी तरह जानती हूँ।"

दीवान साहब ने मंद मुस्किराहट के साथ कहा—"मैं इस राज्य का आजकल दीवान हूँ, और शायद अपने जीवन के अंत तक रहूँगा।"

अनूपकुमारी मन-ही-मन मुस्किराई। उसे मालूम था कि वह कितनी जल्दी उस जगह से जानेवाले हैं।"

दीवान साहब कहने लगे—"शायद आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैं बिलकुल झूठ कह रहा हूँ, जब कि राजा साहब एक चतुर व्यक्ति को खोजने शहर गए हुए हैं।"

अनूपकुमारी चुप होकर बेचैनी के साथ उस अद्भुत क्षमतावाले पुरुष की ओर देखने लगी। उसके विस्मय ने उसका कंठ अवरुद्ध कर लिया।

दीवान साहब बड़ी गंभीरता से कहने लगे—"जिस मनुष्य के भाग्य में विधाता राजगद्दी पर बैठने का अंक नहीं लिखता है, वह कभी-कभी उसको इतनी क्षमता देता है, जो राजाओं को गुलाम बनाकर रखता है।"

अहंकार के आवेश ने उन्हें अधिक बोलने नहीं दिया।

अनूपकुमारी ने कुछ चिढ़कर कहा—"आप न-मालूम क्यों ये बातें मुझे सुना रहे हैं?"

दीवान साहब ने सहास्य कहा—"मैं तो सिर्फ आपकी तारीफ में कुछ कह रहा था। आपके भाग्य में राजगद्दी पर बैठने का सुख नहीं लिखा था, लेकिन राजा को अपना गुलाम बनाने का लेख था। देख लीजिए, क्या इसमें किसी तरह का झूठ है।"

अनूपकुमारी ने श्लेष समझकर भी न समझने का भाव धारण किया।

दीवान साहब ने हँसकर कहा—"क्या मैंने झूठ कहा है?"

अनूपकुमारी को उत्तर देना पड़ा—"नहीं, सत्य है। परंतु यह भी तो हुआ है आपकी कृपा से।"

दीवान साहब ने गंभीरता के साथ कहा—"यह सत्य है, किंतु मनुष्य के जीवन में एक अवसर आता है, जब वह अकृतज्ञ हो जाता है, और अपने साथ भलाई करनेवाले का अहित करने पर उतारू होता है। परंतु यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जो मनुष्य किसी को बड़ा बनाने की क्षमता रखता है, वह उसे उस पद से गिरा देने का भी कौशल जानता है।"

अनूपकुमारी के मुख से भय के चिह्न प्रस्फुटित होने लगे, जिन्हें वह छिपाने का प्रयत्न करने लगी।

दीवान साहब ने मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए कहा—"मैं तुमको एक कहानी सुनाऊँगा। सुनोगी।"

अनूपकुमारी ने सरोष कहा—"मेरे पास तुम्हारी कहानी सुनने के लिये समय नहीं।"

दीवान साहब की भृकुटियाँ चढ़ गईं। उन्होंने उस भाव को दबाते हुए कहा—"ठीक है, मैं भूल गया था कि आप शीघ्र ही अनूपगढ़ की गद्दी पर विराजनेवाली और उसकी रानी होनेवाली हैं।"

इस व्यंग्य ने अनूपकुमारी के मर्म-स्थान पर आघात किया। वह तड़प उठी। उसकी आँखों में खून उतर आया। उसने सक्रोध कहा—"सत्य ही वह दिन दूर नहीं। जो अभी आपका व्यंग्य है, वह सत्य में परिणत हो जायगा।"

दीवान साहब ने पूछा—"वह भी किसकी कृपा से?"

अनूपकुमारी ने सक्रोध कहा—"अपने भाग्य और अपने कौशल से।"

दीवान साहब ने कहा—"हूँ।"

दीवान साहब के 'हूँ' ने अनूपकुमारी के रोष को प्रज्वलित कर दिया, जो शांत हो रहा था।

उसने क्रुद्ध स्वर में कहा—"अब जब आप मेरे साथ इस तरह व्यवहार करते हैं, तब मुझको भी साफ़-साफ़ कह देना पड़ता है। अगर मैं आज अनूपगढ़ की सर्वेसर्वा होकर बैठी हूँ, तो इसमें आपकी कोई बहादुरी नहीं, और न आपका कोई एहसान है। मेरा भाग्य मुझको यहाँ लाया, और उसके निमित्त केवल आप हुए। आपने मेरे साथ जो किया है, अगर उसे सोचती हूँ, तो आपके प्रति विद्वेष से मन ओत-प्रोत हो जाता है। आपने मेरा जीवन इस प्रकार नष्ट किया है, जिसे सुधारने का अब कोई उपाय नहीं। अब तो मेरी निष्कृति इसी पाप में है, और मैं पाप-वासना में और गहरे डूबना चाहती हूँ। मैं एक गृहस्थ की आदरणीय स्त्री थी। झूठा भाई का संबंध स्थापित करके मेरे हृदय में विलास और ऐश्वर्य का प्रेम उत्पन्न किया। यही नहीं, पहले मेरा सतीत्व भ्रष्ट करके भाईपन की मर्यादा बढ़ाई, फिर मेरे हाथ से मेरे पति की हत्या कराई, और फिर अपने स्वार्थ-साधन के लिये मुझे यहाँ लाकर बेच दिया। इतना करने पर भी क्या एहसान का बोझ मेरे ऊपर बाक़ी है। मेरे ऊपर ऐसा शासन करते हो, जैसे मैं तुम्हारी ग़ुलाम होऊँ। यह नहीं जानते कि अगर मैं आज इशारा कर दूँ, तो तुम्हारी सारी इज़्ज़त-आबरू पर पानी पड़ जाय, और शायद ज़िंदगी के भी लाले पड़ जायँ।"

कहते-कहते अनूपकुमारी भयंकर हो उठी। उसके ओठ फड़कने लगे, और आँखें रक्त-रंजित हो गईं।

दीवान साहब पर इसका कुछ भी असर न पड़ा। वह वैसे ही भाव-विहीन चेहरे से उसकी रोष-भरी धमकी सुनते रहे।

उन्होंने व्यंग्य-भरी मुस्किराहट के साथ कहा—"मेंढकी को भी ज़ुकाम पैदा होने लगा!"

यह कहकर वह बड़े ज़ोर से हँस पड़े। उनकी हास्य की प्रतिध्वनि उसका विद्रूप करने लगी।

उसने क्रुद्ध नागिन की भाँति फुफकारकर कहा—"अब मैं तुम्हें बहुत जल्द इसका प्रतिफल भी दिखा दूँगी, और प्रतिशोध लेकर अपनी पुरानी अग्नि शांत करूँगी। तेरी शक्ति से मैं लड़ूँगी, और दिखा दूँगी कि मैं क्या कर सकती हूँ। तेरे घर की ईंट-ईंट निकलवाकर फेकवा दूँगी, और अगर तुझे आजन्म कारावास न कराऊँ, या फाँसी पर न लटकवाऊँ, तो मेरा नाम अनूपकुमारी नहीं।"

अनूपकुमारी अधीरता से उठ खड़ी हुई। भावावेश ने उसका मुख बंद कर दिया। वह भयंकर दृष्टि से दीवान साहब की ओर देखने लगी।

दीवान साहब वैसे ही निश्चल बैठे रहे। थोड़ी देर बाद शांति-पूर्वक कहा—"कह लिया कि अभी कुछ और कहना बाक़ी है?"

अनूपकुमारी ने क्रोध से अधीर होते हुए कहा—"मैं तुम्हारा मुख नहीं देखना चाहती। अगर आज से अपने महल में तुम्हें देखा, तो मारे जूतों के सिर गंजा करवा दूँगी।"

दीवान साहब ने बड़ी गंभीरता से कहा—"यह सौभाग्य तुम्हारे भाग्य में नहीं है अहल्या उर्फ़ अनूपकुमारी, मुझे इसका बड़ा अफ़सोस है। और, न मेरे लिये फाँसी का फंदा या आजन्म कारावास है। जो-जो सज़ाएँ तुमने मेरे लिये तजवीज़ की हैं, मुझे

भय है कि कहीं वे तुम्हें न भुगतनी पड़ें। तुम्हें यह मालूम होना चाहिए कि मातादीन कच्चा खिलाड़ी नहीं। अगर वह कच्चा होता, तो उसे लोग कभी ग़ारत कर दिए होते, आज उसकी एक हड्डी भी ढूँढ़े न मिलती। मैं जो भी काम करता हूँ, उसकी चाभी अपने पास रखता हूँ। तुमने आज तक यही समझा है कि तुम्हारा पति मर गया है; नहीं-नहीं, तुमने उसकी हत्या करके उससे अपना पीछा छुड़ा लिया है। किंतु अहल्या, मुझे सख़्त अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि दरअसल ऐसी बात नहीं। तुम्हारा पति अभी तक ज़िंदा है, जिसे तुम मृत समझती हो।"

अनूपकुमारी भय-विह्वल आँखों से मातादीन की ओर देखने लगी। उसने आकुल कंठ से कहा—"झूठ, बिलकुल झूठ। तुमने ख़ुद उन्हें ज़हर दिलवाया था। तुम्हारी दी हुई ओषधि खिलाने से उनकी क्षण-भर में मृत्यु हो गई थी। और, उसी काली अँधेरी रात में, जब बादल घिरे हुए थे, और बिजली बार-बार कौंधती थी, जिनकी गड़गड़ाहट से हृदय में आतंक पैदा होता था, उन्हें श्मशान ले जाकर जला आए थे। तुम उस दिन मेरे पति से छिपे हुए सब षड्यंत्र रचा रहे थे। मैं ज्ञान-शून्य होकर, तुम्हारी पिशाचिनी मोह-शक्ति में पड़कर मंत्र-चालित पुतली की भाँति तुम्हारे इशारों के मुताबिक़ नाच रही थी। अब अगर मैं पकड़ी भी जाऊँ, तो अपने साथ तुम्हें भी ले डूबूँगी।"

दीवान साहब ने हँसकर कहा—"मातादीन इतना भोला नहीं कि वह तुम्हें इतने सहज में पकड़ाई देगा। लोगों ने तुम्हारे पति को जलाया नहीं था, मैंने उन्हें जलाने का अवसर नहीं दिया। वे उसे श्मशान में छोड़कर चले आए थे, और मैंने गेरुए वस्त्र पहनकर उसे पुनर्जीवित किया था। दरअसल वह मरा न था, केवल बेहोश हो गया था। यही उस दवा का गुण

था। उस दवा के प्रभाव से मनुष्य दो हफ़्ते तक मृतक-जैसी अवस्था में रक्खा जा सकता है। अगर दो हफ़्ते तक उसे चैतन्य न किया जाय, तो अवश्य वह मर जायगा। किंतु वह मरेगा उस वक़्त भूख और प्यास से, उस दवा से नहीं। मैंने उसे मरने नहीं दिया, वह अभी तक सकुशल है, और उसे ऐसा कर दिया था, जिसमें वह तुम्हारा पीछा छोड़ दे। उसके आराम होते ही मैं तुम्हें यहाँ अनूपगढ़ ले आया, और यहाँ क़ैद करवा दिया, जहाँ सूर्य को भी तुम्हारे दर्शन न मिल सकें। वह अच्छा होने पर पहले अपने घर गया, और जब वहाँ तुम्हारा कोई नाम-निशान न मिला, तो तुम्हारी ओर से निराश होकर फिर संसार से भी निराश हो गया। अभी तक कभी-कभी उससे मुलाक़ात हो जाती है। और, उसे यह विश्वास है कि तुम्हीं ने उसकी हत्या का षड्यंत्र रचा था। वह आज भी तुम्हारे पापों का दंड देने के लिये आतुर है। अगर मैं आज कह दूँ कि तुम्हारी हत्याकारिणी अनूपगढ़ के राजा की 'रखैल' है, तो वह तुम्हारा और राजा साहब का सत्यानास करने में ज़रा संकुचित न होगा। तुम्हें अभी मेरी ताक़त का विश्वास नहीं, और शायद परिचय भी नहीं मिला। अच्छा अहल्या, कहो, तुम क्या करोगी; अगर वह आज तुम्हारे सामने आकर जीता-जागता खड़ा हो जाय?"

अनूपकुमारी की आँखें भय से विस्फारित होकर दीवान साहब की ओर देख रही थीं। उसने आवेश के साथ कहा—"नर-पिशाच, नराधम, मैं तेरा ख़ून पी जाऊँगी। तेरा कल्याण इसी में है कि तू यहाँ से अभी चला जा।"

उसके मुख से थूक का फेना निकलने लगा। वह आगे न कह सकी।

दीवान साहब ने बड़ी शांति के साथ मुस्किराते हुए कहा—"जो

हुक्म। मैं आपके महल से नहीं, अनूपगढ़ से जाता हूँ। आज दोपहर को जो परामर्श आप और राजा साहब में हो चुका है, वह शब्दशः मेरे गुप्तचरों ने मुझे बता दिया है। राजा साहब एक चतुर दीवान की खोज में गए हैं, और मेरे ऊपर कोई झूठा मुक़द्दमा दायर कराने की कोशिश की जायगी। मैं स्वयं इस्तीफ़ा देकर जा रहा हूँ, जिसमें आप लोगों को कोई कष्ट न करना पड़े। मैं इस्तीफ़ा लेकर आया हूँ, आप मेहरबानी करके राजा साहब को दे दीजिएगा। मैं अपने बाल-बच्चे लेकर जाता हूँ। गाड़ियाँ तैयार होकर, सामान से लदकर स्टेशन पहुँच गई हैं। मैं अब जा रहा हूँ। केवल यही कहने के लिये आया था कि अब आप लोग सतर्क हो जायँ। मातादीन अपने शत्रुओं को धोखे में कभी नहीं मारता, चेतावनी देकर उन पर वार करता है। यही हमारे बैसवाड़े की रीति है।"

यह कहकर उन्होंने अनूपकुमारी के पास इस्तीफ़ा फेंक दिया, और दूसरे क्षण कमरे के बाहर हो गए।

अनूपकुमारी भय तथा विस्मय से देखती रही।

---

(४)

अनूपकुमारी थोड़ी देर तक उसी निश्चेत अवस्था में बैठी रही। गैस-बत्ती का तीव्र प्रकाश उसकी आँखों को दुख पहुँचा रहा था। उसने कर्कश कंठ से दासी को पुकारकर सामने से रोशनी हटाने का आदेश दिया। दूसरे क्षण कमरे में अंधकार छा गया। उसने कमरे के दरवाज़े भी बंद करने की आज्ञा दी।

दरवाज़े बंद कर दासी ने हाथ जोड़कर कहा—"आप लेट जायँ, तो आपका सिर दाब दूँ।"

अनूपकुमारी ने तीव्र कंठ से कहा—"जा, हट, मेरे सामने से दूर हो। तुम सब लोग मेरी तनख़्वाह उड़ाती हो, और यहाँ की ख़बरें उस मातादीन को जाकर सुनाती हो। आने दो राजा साहब को, मैं सबकी ख़बर लूँगी।"

दासी थर-थर काँपने लगी। उसे मालूम था कि अनूपकुमारी का ग़ुस्सा कैसा है।

थोड़ी देर बाद अनूपकुमारी ने कहा—"जा, बाहर से दरवान को बुला ला।"

दासी आज्ञा पालन के लिये तेज़ी से चल दी।

दरवान ने आकर, झुककर प्रणाम किया, फिर हाथ जोड़े आदेश की प्रतीक्षा में खड़ा रहा।

अनूपकुमारी ने कहा—"देखो, आज रात को कोई नौकर महल के बाहर न जाने पाए, मेरा एक क़ीमती गहना खो गया है।"

दरवान ने उत्तर दिया—"जो हुक्म सरकार। मैं एक चींटी तक को बाहर न जाने दूँगा।"

में ले गई। उसका पति नई उम्र का सुंदर युवक था, और शहर के किसी कॉलेज में पढ़ता था। गर्मी की छुट्टियों में ससुराल आया था। वह मुझे चकित दृष्टि से देखने लगा। मैं भी लाज से अवगुंठित होकर एक कोने में खड़ी हो गई। पर-पुरुष के सामने जाने का वह मेरा पहला अवसर था।

"धीरे-धीरे मैं उससे बातें करने लगी, और मेरी लज्जा भी दूर होने लगी। मेरे मन में तो बहुत दिनों से उमंग थी, आज सहसा प्रकट होने के लिये मचल उठी। मैंने भी अपने ज्ञान को तिलांजलि दे दी, और उससे खूब खुलकर बातें करने लगी। मेरी सखी मेरे पास बैठी हुई मेरी लाज के बंधन क्रमशः तोड़ रही थी। उसे इसमें आनंद आ रहा था, और मुझे भी कोई आपत्ति न मालूम होती थी। हम तीनो बातों में विभोर थे।

"इतने ही में कमरे के बाहर मेरी सखी की मा ने पुकारकर उसे बुलाया। मुझे होश आया, और मैं भी उसके साथ-साथ बाहर निकलने लगी। मेरी सखी ने मुझे रोककर कहा—'अभी ठहर जाओ, मैं अम्मा को यहाँ से हटाकर लिए जाती हूँ, फिर आकर बातें करूँगी।' मैं ठहर गई। दरअसल वहाँ से जाने की मेरी क़तई इच्छा नहीं थी। मैं सहज ही में उसकी बात मानकर ठहर गई। मेरी सखी कमरे के बाहर चली गई। अब मैं और उसका पति, दोनो अकेले उस कमरे में रह गए।

"हालाँकि मेरी इच्छा उसके साथ बात करने की होती थी, किंतु मेरा हृदय बड़े ज़ोर से धड़क रहा था, और मुख लाल हुआ जा रहा था। सहसा मेरी सखी के पति ने मेरे पास आकर एक सोने की माला मेरे गले में पहना दी, और दस-दस रुपए के चार नोट मेरे हाथ में ज़बरदस्ती दे दिए। मेरे मन ने मुझे धिक्कारा, परंतु लोभ और लालसा मुदित होकर उसे स्वीकार करने के लिये

बाध्य करने लगे। फिर भी उन्हें वापस करने लगी। उसने वे चीज़ें मुझे ज़बरदस्ती देते हुए विनय-पूर्ण स्वर में कहा—'इन्हें ले जाओ, मैं तुम्हें भेंट करता हूँ। इन्हें लेकर चली जाओ, और घर में रख आओ, नहीं तो तुम्हारी सखी आ जायगी, और फिर हमारी और तुम्हारी, दोनो की हँसी होगी।' मैं अपनी लालसा न दबा सकी, और उन्हें लेकर चोरों की तरह अपनी सखी के घर से भाग आई।

"घर में आकर देखा, मेरी मामीजी अभी तक सो रही थीं। मेरे काँपते हुए हाथ-पैर कुछ शांत हुए। अब उन रुपयों और गहने को छिपाकर रखने की समस्या सामने आ गई। मैं उन्हें एक कपड़े में बाँधकर भंडार-घर के बर्तनों में, जिनमें खाने का सामान रहता था, छिपा आई; क्योंकि यही एक ऐसी जगह थी, जहाँ मामीजी कभी न जाती थीं, और उसकी मालकिन मैं थी। इस तरह प्रथम प्रेम-भेंट को मिट्टी के बर्तनों में दफ़नाकर रखना पड़ा।

"उस सखी के पति से मेरी घनिष्ठता बढ़ने लगी, और एक दिन दोपहर को मैंने अपने को उसके समर्पण कर दिया। पाप का द्वार एक बार खुल जाने से फिर मुश्किल से बंद होता है। मेरे मन में भी उमंग थी, और वासना तथा लालसा बड़े वेग से मेरे ऊपर हावी हो रही थीं। मैं अंधी होकर उसके प्रेम में फँस गई। अब हम लोग वक़्त-बेवक़्त मिलकर अपनी काम-वासना तृप्त करने लगे।

"धीरे-धीरे मेरी सखी को यह हाल मालूम हो गया। उसने एक दिन देख भी लिया। बस, उस दिन मेरे और उसके प्रेम का बंधन टूट गया, और वह दूसरे ही दिन अपनी मा से सब हाल कहकर अपने पति के साथ शहर चली गई। मेरे मुख पर कालिख पोती जाने लगी। मामा और मामी ने भी सब हाल सुना, और

मुझे बहुत मारा-पीटा। एक दिन घर से भी बाहर निकाल दिया, किंतु फिर न-मालूम क्या सोचकर मामीजी ने घर में बुला लिया।

"ओस चाटने से प्यास नहीं बुझती। मैं इंद्रिय-सुख को जान गई थी, और उसे किसी तरह पुनः प्राप्त करने के लिये आकुल थी। मामा और मामी की मार-पीट सब भूल गई, और किसी प्रकार उनसे छुटकारा पाने के लिये आकुल हो उठी। मामा अब बड़ी तत्परता से मेरे योग्य किसी पात्र को ढूँढ़ रहे थे, किंतु कोई मिलता न दिखलाई देता था। ज्यों-ज्यों वह परेशान होते, त्यों-त्यों उनका क्रोध मेरे प्रति बढ़ता था।

"आख़िर एक दिन अनायास मेरे विवाह की बातचीत तय हो गई। बात यह थी कि मेरे मामा के एक मित्र के मित्र अपना विवाह करना चाहते थे। यह उनका दूसरा विवाह था। उन्होंने अपनी पहली स्त्री को त्याग दिया था, और अब दूसरा विवाह करना चाहते थे। वह दहेज़ वग़ैरह कुछ न चाहते थे, सिर्फ़ सच्चरित्र कन्या चाहते थे। मेरे मामा ने यह अवसर हाथ से नहीं जाने दिया, और विवाह की बातचीत पक्की हो गई।

"एक दिन मेरी मामी ने मुझे बहुत समझाया, और पति-सेवा तथा सती-धर्म पर बहुत उपदेश दिया। मेरे मन में सचमुच बड़ी ग्लानि पैदा हुई, और आगे से सच्चरित्र जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा की। मामी को मेरी प्रतिज्ञा सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं उसी दिन शाम को, जब पानी भरने जा रही थी, अपनी सखी के पति के उपहार और आभूषण पोटली में बाँधकर लेती गई। उन्हें कुएँ में डालना चाहा, लेकिन डाल न सकी। मेरा लोभ मुझे पुनः अपने वश में करने लगा। मैं उसे दमन न कर सकी, और उन्हें लेकर पुनः वापस आई।

उन्हें फिर उसी जगह छिपाकर रख दिया, जहाँ वे अब तक पड़े हुए थे। लोभ और लालसा की पुनः विजय हुई।

"विवाह होने के बाद मैं अपने पति के घर आई। मेरे विवाह में कोई आडंबर नहीं किया गया था। दोनो पक्षवाले ग़रीब थे, और मेरे पति की आर्थिक स्थिति तो बड़ी ही ख़राब थी। यहाँ आकर मालूम हुआ कि वह बड़े क्रोधी स्वभाव के हैं। उन्होंने अपनी पहली स्त्री को त्याग दिया था, जिसका कहीं पता न था। लोगों का अनुमान था कि उसने आत्महत्या कर ली। उसे त्यागने का कारण बहुत साधारण था। एक दिन मेरे पति ने उसे एक युवक से बातें करते देख लिया था। यह युवक उसके मायके का था, और अचानक उसके घर के सामने से निकलते हुए, उसे द्वार पर खड़ी देख बातें करने लगा था। मेरी सौत उसे बिदा कर रही थी कि सहसा मेरे पतिदेव आ गए, जिससे दोनो घबरा गए। मेरे पति को कुछ शक पैदा हो गया, और उन्होंने तुरंत ही क्रोध में आकर उसे उसी क्षण घर से निकाल दिया। पहले तो उसने बड़ी विनय की, तरह-तरह की क़समें खाकर अपनी निर्दोषिता साबित करनी चाही, परंतु जब वह किसी तरह न माने, तो उसे जाना पड़ा। वह उसी युवक के साथ अपने मायके चली गई। जिस दिन मैं उनके घर में गई, उन्होंने बड़ी शेख़ी से सब हाल कहकर मुझे बाक़ायदे चलने की चेतावनी दी। मैं सचमुच भय से काँपने और सोचने लगी कि यह पुरुष कहीं राक्षस तो नहीं।

"मेरा विवाहित जीवन सुख के साथ बीतने लगा। मेरे पति पचीस रुपए मासिक पर रेलवे में नौकर थे। उनकी आर्थिक दशा ठीक न थी, और उन पर क़र्ज़ भी था, जो उन्होंने अपनी बहन के विवाह में लिया था। उनकी बहन तो इस वक़्त मर गई थी, लेकिन क़र्ज़ बजाय घटने के बढ़ता गया था। महाजनों ने दावा

मुझे बहुत मारा-पीटा । एक दिन घर से भी बाहर निकाल दिया, किंतु फिर न-मालूम क्या सोचकर मामीजी ने घर में बुला लिया ।

"ओस चाटने से प्यास नहीं बुझती । मैं इंद्रिय-सुख को जान गई थी, और उसे किसी तरह पुनः प्राप्त करने के लिये आकुल थी । मामा और मामी की मार-पीट सब भूल गई, और किसी प्रकार उनसे छुटकारा पाने के लिये आकुल हो उठी । मामा अब बड़ी तत्परता से मेरे योग्य किसी पात्र को ढूँढ़ रहे थे, किंतु कोई मिलता न दिखलाई देता था । ज्यों-ज्यों वह परेशान होते, त्यों-त्यों उनका क्रोध मेरे प्रति बढ़ता था ।

"आखिर एक दिन अनायास मेरे विवाह की बातचीत तय हो गई । बात यह थी कि मेरे मामा के एक मित्र के मित्र अपना विवाह करना चाहते थे । यह उनका दूसरा विवाह था । उन्होंने अपनी पहली स्त्री को त्याग दिया था, और अब दूसरा विवाह करना चाहते दे । वह दहेज़ वग़ैरह कुछ न चाहते थे, सिर्फ़ सच्चरित्र कन्या चाहते थे । मेरे मामा ने यह अवसर हाथ से नहीं जाने दिया, और विवाह की बातचीत पक्की हो गई ।

"एक दिन मेरी मामी ने मुझे बहुत समझाया, और पति-सेवा तथा सती-धर्म पर बहुत उपदेश दिया । मेरे मन में सचमुच बड़ी ग्लानि पैदा हुई, और आगे से सच्चरित्र जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा की । मामी को मेरी प्रतिज्ञा सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई । मैं उसी दिन शाम को, जब पानी भरने जा रही थी, अपनी सखी के पति के उपहार और आभूषण पोटली में बाँधकर लेती गई । उन्हें कुएँ में डालना चाहा, लेकिन डाल न सकी । मेरा लोभ मुझे पुनः अपने वश में करने लगा । मैं उसे दमन न कर सकी, और उन्हें लेकर पुनः वापस आई ।

उन्हें फिर उसी जगह छिपाकर रख दिया, जहाँ वे अब तक पड़े हुए थे। लोभ और लालसा की पुनः विजय हुई।

"विवाह होने के बाद मैं अपने पति के घर आई। मेरे विवाह में कोई आडंबर नहीं किया गया था। दोनो पक्षवाले ग़रीब थे, और मेरे पति की आर्थिक स्थिति तो बड़ी ही ख़राब थी। यहाँ आकर मालूम हुआ कि वह बड़े क्रोधी स्वभाव के हैं। उन्होंने अपनी पहली स्त्री को त्याग दिया था, जिसका कहीं पता न था। लोगों का अनुमान था कि उसने आत्महत्या कर ली। उसे त्यागने का कारण बहुत साधारण था। एक दिन मेरे पति ने उसे एक युवक से बातें करते देख लिया था। यह युवक उसके मायके का था, और अचानक उसके घर के सामने से निकलते हुए, उसे द्वार पर खड़ी देख बातें करने लगा था। मेरी सौत उसे बिदा कर रही थी कि सहसा मेरे पतिदेव आ गए, जिससे दोनो घबरा गए। मेरे पति को कुछ शक पैदा हो गया, और उन्होंने तुरंत ही क्रोध में आकर उसे उसी क्षण घर से निकाल दिया। पहले तो उसने बड़ी विनय की, तरह-तरह की क़समें खाकर अपनी निर्दोषिता साबित करनी चाही, परंतु जब वह किसी तरह न माने, तो उसे जाना पड़ा। वह उसी युवक के साथ अपने मायके चली गई। जिस दिन मैं उनके घर में गई, उन्होंने बड़ी शेख़ी से सब हाल कहकर मुझे बाक़ायदे चलने की चेतावनी दी। मैं सचमुच भय से काँपने और सोचने लगी कि यह पुरुष कहीं राक्षस तो नहीं।

'मेरा विवाहित जीवन सुख के साथ बीतने लगा। मेरे पति पचीस रुपए मासिक पर रेलवे में नौकर थे। उनकी आर्थिक दशा ठीक न थी, और उन पर क़र्ज़ भी था, जो उन्होंने अपनी बहन के विवाह में लिया था। उनकी बहन तो इस वक़्त मर गई थी, लेकिन क़र्ज़ बजाय घटने के बढ़ता गया था। महाजनों ने दावा

कर दिया, और मकान वग़ैरह सब नीलाम हो गया। हम लोग किराए के मकान में रहने लगे। क़र्ज़ अब भी बेबाक़ न हुआ था। इस थोड़े-से वेतन में अपना गुज़र करना पड़ता था।

"इसी समय दीवान साहब पुच्छल तारा की भाँति उदय हुए। वह मेरी सौत के दूर के रिश्ते के भाई थे। उन्होंने आते ही मेरे पति को एक हज़ार रुपए उधार दिए, और सारा क़र्ज़ अदा कराने का वचन दिया। मेरे पति का उन पर विश्वास जम गया, और वह अबाध रूप से आने-जाने लगे। मैं अभी तक ग़रीबी के आनंद में मस्त थी। अभी तक प्रलोभनों को रोके हुए अपनी इच्छाएँ दमन कर रही थी। यह नर-पिशाच मेरे सामने सुनहले जाल बिछाने लगा, और जब कभी आता, तब नए-नए उपहार लेकर आता। एक ही दो महीने में उसने मेरे हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया, और एक दिन, जब मेरी आत्मा शिथिल पड़ गई थी, उसने उससे लाभ उठाकर अपने भाईपने के संबंध पर कालिख पोत दी। मैंने भी उसकी दवा के वशीभूत होकर उसको आत्मसमर्पण कर दिया।

"इसके बाद? इसके बाद मेरा पतन शुरू हुआ। इस धूर्त की दवाओं ने मेरी वासनाओं का द्वार उन्मुक्त कर दिया था, और मैं धीरे-धीरे पतन के गह्वर में प्रवेश होने लगी। वह मुझे राजा की रानी बनाने का प्रस्ताव करने लगा। पहले मैंने इनकार किया, किंतु विलास की भावना ज़ोर पकड़ रही थी। आख़िर हम लोग अपने पति से निष्कृति पाने का विचार करने लगे।

"एक दिन इसी दुष्ट ने मुझे एक दवा देकर कहा कि इसे आज सुबह के खाने में मिलाकर खिला देना, इससे हैज़ा-जैसा रोग उत्पन्न हो जायगा, और बारह घंटे बाद वह मर जायँगे। चतुर-से-चतुर डॉक्टर उन्हें हैज़े का रोगी बतलाएगा। इस तरह किसी को शक न होगा कि उन्हें ज़हर दिया गया है। वह दवा लेकर मैं

बहुत दिनों तक अपने पास रक्खे रही, उसे देने का साहस न होता था।

"आखिर एक दिन उसी दुष्ट ने वह दवा अपने हाथ से उनके खाने में मिला दी। मैं इस तरह उसके वश हो गई थी कि 'ना' न कर सकी। दोपहर को जब वह लौटे, तो उन्हें हैज़ा हो गया था। तमाम डॉक्टरों और हकीमों ने अपनी-अपनी दवाएँ दीं, लेकिन वह अच्छे न हुए। मेरे मन में उस दिन कैसी ग्लानि उत्पन्न हुई थी। बारंबार यही विचार उठता कि सब हाल खोल दूँ, किंतु भय और लोभ ने मेरा मुँह बंद कर दिया था। हाय, मैं कितनी नीच-हृदय हूँ! मेरे पाप का प्रायश्चित्त नहीं।"

पश्चात्ताप के आँसू उमड़कर उसके हृदय की अग्नि शांत करने की जगह प्रज्वलित करने लगे। अतीत के चित्र क्रमशः आकर अपने-अपने डंकों के दंशन का आनंद देने लगे, जिसकी पीड़ा से वह अपनी शय्या पर तड़पने लगी। पश्चात्ताप और परिताप हृदय की असलियत के चिह्न हैं।

अनूपकुमारी पुनः सोचने लगी—"इसके बाद मैं यहाँ आ गई। मातादीन ने मशहूर किया कि मैं उसकी बहन हूँ। इसमें मेरी कोई हानि न थी, मैंने कोई आपत्ति नहीं की। वह दीवान हो गया, और मैं उसकी शक्ति होकर उसकी सहायता करने लगी। वह राजा साहब को दवाएँ खिलाकर वश में करने लगा, और मैं भी उस खेल में मस्त होकर स्वयं खेल हो गई। वास्तव में मातादीन हम दोनो को खिला रहा था। उसने मुझे अपनी स्वार्थ-पूर्ति का साधन बना रक्खा था। मैं चेती, लेकिन बहुत देर में, जब सब नाश हो गया।

"यह ठीक है कि मैंने उसी के कौशल से रानी श्यामकुँवरि के साथ वैर किया, और उन्हें परास्त किया, और अब मैं अपने चातुर्य

है, जिससे हमारी शान किरकिरी हो जायगी। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता।

"मुझे सिर्फ़ पृथ्वीसिंह की चिंता है। मेरे बाद उस अभागे का कोई नहीं। वह जारज पुत्र है, जिसका हिंदू-समाज में कोई स्थान नहीं। वह अभी दस वर्ष का बालक है। बड़ी कोशिशों के बाद पैदा हुआ, लेकिन उसका भविष्य कितने गहन अंधकार में है। उसकी कैसी शोचनीय अवस्था है। उसे अपनी मा का परिचय देने में संकुचित होना पड़ेगा। उसकी मा का स्थान वेश्याओं की श्रेणी में ही नहीं, वरन् उससे भी हीन है। वेश्याओं का एक समाज तो है, जिसमें उनकी संतान आराम के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सकती है, किंतु उसके लिये तो समाज के सब द्वार बंद हैं। आज मेरी समझ में नहीं आता कि मैंने क्यों उसके पैदा होने की इतनी कोशिश की, इतना परिश्रम किया।

"उसका जीवन सुधारने का क्या उपाय है? बस, एक उपाय है कि राजा साहब मेरा पाणि-ग्रहण करें, और उसे जायज़ वारिस बनाया जाय। राजा साहब उसके लिये कटिबद्ध हैं, और अथक परिश्रम कर रहे हैं। इसी में उसका और मेरा कल्याण है।"

अनूपकुमारी की आँखों के आँसू सूख गए, और हृदय में आशा का दीपक प्रज्वलित होकर अपने धूमिल प्रकाश से उसके हृदय की ग्लानि, वेदना, क्षोभ और परिताप को नष्ट करने लगा।

थोड़ी देर बाद मातादीन का फिर ख़याल आया, और उसकी विचार-धारा ने ज़ोर पकड़ा। वह सोचने लगी—"मातादीन बड़ी क्षमता का पुरुष था। देखो, उसके जासूस चारो ओर मौजूद थे। आज मैंने जो परामर्श किया, वह ज्यों-का-त्यों उसे विदित हो गया, और वह कितनी शीघ्रता से मेरे हाथ से निकल गया। मैं अपना प्रतिशोध न ले सकी, अपनी ज्वाला शांत न कर सकी।

मेरा सारा कौशल व्यर्थ गया। अब वह न मालूम कहाँ जाकर क्या करेगा। अगर वह मेरे शत्रुओं से मिल गया, तो अवश्य मुझे हानि पहुँचा सकता है। किंतु वे इस पर क्या विश्वास करेंगे? नहीं, असंभव है। वे लोग भी तो इसे अपना शत्रु— परम शत्रु जानते थे। मेरी अपेक्षा किसी तरह कम नहीं। वह चाहे सोने का बन जाय, तब भी वे इस पर कभी विश्वास नहीं करेंगे।

"मेरे जो पत्र खोए हैं, उनसे इसका घनिष्ठ संबंध है। हमारे और उसके पहले के पत्र हैं, जिनमें मेरे पति की हत्या करने के उपदेश लिखे हुए हैं। हाँ, उसके हस्ताक्षर नहीं हैं, किंतु उसके लिखे हुए हैं, इसमें कोई शक नहीं। मैं उन्हें उसके खिलाफ़ सुबूत में पेश कर सकती थी। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि उसने उन्हें अपने जासूसों द्वारा चुरवा लिया है, और यह काम कस्तूरी का है। जिस दिन से उसे मारा है, उसका भाव मेरे प्रति विद्वेष-पूर्ण रहता है। वह अपने भाव को छिपाने का बहुत प्रयत्न करती है, किंतु मेरी तेज़ निगाहों से वह अपने को छिपा नहीं सकती। मैं इसका उपाय शीघ्र करूँगी। इस मर्तबे उसकी खाल निकाल लूँगी, और उसे चुग़ली खाने का मज़ा चखाऊँगी। बाक़ी दूसरी दासियाँ तो विश्वासपात्र हैं, मैंने उन्हें कभी महल से बाहर या किसी से बात करते नहीं देखा। एक यही कुछ मेरे मुँह लगी थी, और शायद सब इसी का कर्म है। उस दिन इसी ने उस अलमारी से मेरे काग़ज़ चुराए, और उस अपराध से बचने के लिये कितनी ख़ूबसूरती से रानी श्यामकुँवरि को ले आई, जिसमें अगर किसी प्रकार का शक हो, तो बेचारी रानी पर हो। आख़िर हुआ भी वही। वह तो साफ़ निकल गई, और मैंने रानी श्यामकुँवरि को ही अपराधी ठहराया। उफ़्! उस

दिन मैंने उनका कितना अपमान किया। वह कितनी आजिज़ी से अपनी लड़कियों के लिये विवाह करा देने की दरख़्वास्त लेकर आई थीं। वह मेरी कितनी बड़ी विजय थी, किंतु मैंने कितनी नादानी से अपने हाथ से उस स्वर्ण अवसर को खो दिया। ज़रा-से इशारे से मैं उसे अपना मित्र बना लेती। अब पछताने से क्या होता है। वह अवसर हाथ से निकल गया।"

अनूपकुमारी उठकर बैठ गई। अंधकार उसका विद्रूप करने लगा। उसने दासी को आवाज़ दी। उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो उसके कमरे के पास से कोई हट गया है। वह तड़प उठी, और एक ही छलाँग में दरवाज़े के पास पहुँचकर उसे ज़ोर से खोल दिया। उसने देखा, कोई सत्य ही वहाँ से अभी-अभी गया है, क्योंकि बरामदे के दूसरी ओर एक छाया शीघ्रता से अदृश्य हो गई। वह तेज़ी से उसे पकड़ने के लिये दौड़ी, किंतु वहाँ पहुँचकर किसी को नहीं देखा। उसने बड़े तीव्र स्वर से दासियों का नाम लेकर पुकारा। क्षण-भर में उसके सामने कई दासियाँ भय और शीत से काँपती हुई आकर खड़ी हो गईं। उसने देखा, उनमें कस्तूरी नहीं है।

उसने तीव्र कंठ से पूछा—"कस्तूरी कहाँ है?"

एक दासी ने डरते-डरते उत्तर दिया—"वह आज तीसरे पहर से सिर-दर्द से व्याकुल लेटी हुई है। अभी शाम को कुछ दर्द कम हुआ, तब सो गई, और मैं उसे सोती हुई छोड़कर आई हूँ।"

अनूपकुमारी ने उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा।

वह दासी अपना सिर नत किए चुपचाप खड़ी रही।

अनूपकुमारी ने उसे आदेश दिया कि कस्तूरी को सामने हाज़िर करो।

वह दासी जाने लगी। उसे रोककर उसने कहा—"तू ठहर

जा, तेरे जाने की ज़रूरत नहीं। मेरी दूसरी दासियों को उसका कमरा मालूम है। वे जाकर बुला लाएँगी।"

वह दासी ठहर गई।

अनूपकुमारी ने दूसरी दासी को बुलाने का आदेश दिया।

थोड़ी देर में कस्तूरी अपनी आँखें मलती हुई उसके सामने आकर खड़ी हो गई।

अनूपकुमारी ने उसे अपने सामने खड़े होने का आदेश दिया। उसकी आँखों की ओर बड़ी तीक्ष्णता से देखने लगी।

वह भी भय से थर-थर काँपने लगी।

अनूपकुमारी ने उसकी ओर देखकर सोचा—इसके लक्षणों से तो यही मालूम होता है कि यह सत्य सो रही थी।

फिर उसने प्रत्येक की उसी भाँति परीक्षा ली। उसे किसी पर संदेह करने का कारण नहीं दिखाई पड़ा।

वह अपना क्रोध अपने साथ लिए अपने कमरे में चली आई।

दासियों का झुंड भी उसके पीछे-पीछे आ गया।

उसने उन्हें जाने का आदेश दिया। वे सब जाने लगीं।

अनूपकुमारी ने एक दासी को गैस लाने का आदेश दिया। गैस के तेज़ प्रकाश से कमरा जगमगाने लगा। उसने तीक्ष्ण दृष्टि से पुनः अपने कमरे को देखा, और फिर उस दासी को जाने का आदेश दिया।

उसके जाने के बाद उसने कहा—"क्या कारण है कि आज एक प्रकार की आशंका से मैं व्याकुल हो रही हूँ।"

फिर थोड़ी देर बाद कहा—"यह मेरा भ्रम है। आज क्या मैं कुछ पागल हो गई हूँ।"

अनूपकुमारी बड़े वेग से हँस पड़ी। उसकी प्रतिध्वनि उसके कथन का अनुमोदन करने लगी।

दक्षिणी अमेरिका के चाइल अथवा चिली-नामक देश में वाल-पेराइज़ो-नामक बंदर ३३°५' दक्षिणी अक्षांश और ७१°५' पूर्वीय देशांतर पर स्थित है। यह इस देश का मुख्य बंदर है, जहाँ से आस्ट्रेलिया आदि देशों से व्यापार होता है। यह उसकी राजधानी सेंटियागो से थोड़ी दूर पर आबाद है। इसकी जन-संख्या लगभग डेढ़ लाख है और जल-वायु स्वास्थ्यकर।

चाइल-प्रदेश को अगर पहाड़ी प्रदेश कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। उत्तर से दक्षिण तक आंडीज़-पर्वत कई समानांतर रेखाओं की भाँति केवल पश्चिमीय तट में फैला हुआ, समुद्र-तट को चुंबन करने का प्रयत्न करता हुआ चला गया है। चाइल में वह कुछ पूर्वीय तट की ओर झुकता है, और ३० से ३४ मील का मैदान चाइल-निवासियों के विहार के लिये छोड़ देता है। वालपेराइज़ो से पूर्व आंडीज़-पर्वत का सर्वोच्च शिखर अकांकागुआ है, जिसके समीप एक ज्वालामुखी है, जिससे अभी तक कभी-कभी धुआँ निकलता देखा जाता है।

वालपेराइज़ो और अकांकागुआ के मध्य में, आंडीज़ की तलहटी में, एक छोटी-सी झील है। इसी के समीप पंडित मनमोहननाथ का आश्रम स्थित है, जिसका उद्घाटन स्वामी गिरिजानंद के द्वारा होने की बातचीत थी। इस झील का नाम था ब्यूनेसबोका, जिसका अर्थ है स्वास्थ्यप्रद जलाशय। वास्तव में उस झील का जल ऐसा ही था।

स्वामी गिरिजानंद को वह स्थान विशेषकर सुंदर प्रतीत हुआ,

और वह ऐसे लुब्ध हुए कि उन्होंने एक दिन पंडित मनमोहननाथ से कहा—"पंडितजी, आपने इस स्थान को आश्रम के लिये चुना है, यह बहुत अच्छा है। इसे देखने से यही मालूम होता है कि वास्तव में प्रकृति ने इस स्थान को आपके आश्रम के लिये बनाया है।"

पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्नता के साथ कहा—"जी हाँ, मालूम तो ऐसा ही होता है। प्रकृति का इतना सुंदर दृश्य सिवा हिमालय-पर्वत के और कहीं न मिलेगा। वहाँ भी एक बात की कमी है।"

स्वामी गिरिजानंद ने उत्सुकता से पूछा—"वह क्या ?"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"उस धूम-पुंज का, जो निरंतर अविराम रूप से निकल रहा और पृथ्वी के गर्भ की ज्वाला निकाल रहा है, वहाँ सर्वथा अभाव है।"

स्वामी गिरिजानंद ने मुस्किराते हुए कहा—"किंतु यह धूम-पुंज अपने उदर में मनुष्य का भीषण अंत भी तो छिपाए हुए है।"

पंडित मनमोहननाथ ने हँसकर कहा—"इसी अंत में तो मनुष्य और मनुष्यत्व का रहस्य छिपा हुआ है। मनुष्य कहाँ नहीं मरता ? वह मरने के लिये पैदा हुआ है, आप उससे मृत्यु को दूर नहीं कर सकते।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"आप तो दार्शनिक भाव से कह रहे हैं। जिस दिन इस ज्वालामुखी का विस्फोटन होगा, क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि मनुष्यों का अंत कितनी भीषणता और वीभत्सता के साथ होगा। चारो ओर त्राहि-त्राहि का रव होगा, और पिघले हुए शोलों की नदी उमड़कर उनका अंत करेगी। वह दृश्य किसी रौरव के दृश्य से कम न होगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने मुस्किराते हुए कहा—"आप घबराएँ

नहीं, वह दिन अभी दूर है। यह ज्वालामुखी सदियों से बुझा है, केवल कभी धरातल की अग्नि को धूम-रूप में निकाल देता है। अभी तक इसका प्रलयकारी प्रभाव चाइल देश में नहीं, उस पार अर्जेंटाइन देश पर अवश्य पड़ा है। आंडीज़ में सोने और चाँदी की खानें बहुतायत से हैं। न-मालूम इनमें कितना सोना छिपा हुआ है। हमारे देशवासी सूखी रोटी से गुज़र कर लेना पसंद करते हैं, भाई के प्रति मुक़द्दमेबाज़ी करने में अपना साहस, शौर्य प्रकट करते हैं, परंतु घर से बाहर निकलकर लक्ष्मी की खोज करना उचित नहीं समझते।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"यह ध्रुव सत्य है। हमारे देश का जाति-विचार, धर्म के प्रति अंध-विश्वास हमारे पतन का कारण हुआ है। हम धर्म का असली तत्त्व न समझकर केवल परंपरा के आचार को ही धर्म मान बैठे हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"मैं धर्म को हृदय की वस्तु मानता हूँ, शरीर की नहीं। शरीर की शुद्धता का नाम धर्म नहीं, हृदय की शुद्धता अथवा आत्मा के ज्ञान का नाम धर्म है। हमारे आने-जाने, खाने-पीने, मिलन-सहवास से धर्म का नाश नहीं होता।"

स्वामी गिरिजानंद ने उत्फुल्ल कंठ से कहा—"हाँ, यही बात है। किंतु पुरानी परिपाटी की लकीर पीटनेवालों की समझ में यह कहाँ आता है!"

पंडित मनमोहननाथ ने जोश के साथ कहा—"मनुष्य का यह जन्मजात स्वभाव है कि वह अपने को अपराधी नहीं मानता। वह अपराध का बोझ किसी अन्य के सिर पर लादकर स्वयं उससे मुक्त होना चाहता है। हम पुराने विचारवालों को इसका अपराधी ठहरा-कर स्वयं बरी-उल्-ज़िम्मा होते हैं। आप उन्हें क्यों व्यर्थ दोष

देते हैं, आप स्वयं नहीं करना चाहते। अगर दल-के-दल यानी नवयुवकों की मंडली कटिबद्ध होकर, जीविका की खोज में स्वदेश का मोह छोड़कर परदेश में आने-जाने लगे, तो कितने दिनों तक उसका विरोध रहेगा। बात दरअसल यह है कि हमारा खून ठंडा हो गया है, और हममें वह स्फूर्ति नहीं रही, जो आज पश्चिम के नवयुवकों में देखने को मिलती है।"

स्वामी गिरिजानंद ने उत्तर में केवल "हूँ" कहा।

पंडित मनमोहननाथ कहने लगे—"जिस देश के नवयुवक केवल उदर-पूर्ति करने में अपने जीवन की सफलता समझते हैं, उनसे कोई दूसरी आशा करना व्यर्थ है। कहावत है—'मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक।' वे बहुत करेंगे, तो गुलामी, जिसमें उनके पेट की समस्या हल हो जाय। इसके अतिरिक्त उन पर कोई दूसरी ज़िम्मेवारी नहीं।"

इसी समय अमीलिया ने आकर कहा—"पंडितजी, आपको माधवी बुला रही है।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"अब उसकी कैसी तबियत है?"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"तबियत तो उसकी वैसी ही है, जैसी फ़िज़ी में थी। यहाँ आने से दो-एक दिन परिवर्तन रहा, और अब फिर वैसी हो गई है। अब वह फिर किसी से नहीं बोलती। डॉक्टर साहब भी परेशान हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"डॉक्टर हुसैनभाई की योग्यता के विषय में कोई संदेह नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त ऐसे स्वभाव का आदमी मिलना मुश्किल है। उनके विचारों का सादृश्य बहुत कुछ हमारे विचारों से है, और इस आश्रम के प्रति उनकी पूर्ण सहानुभूति है। किंतु माधवी की दशा दिन-ब-दिन ख़राब होती जाती है, यही चिंता सतत मुझको सताती है।"

पंडित मनमोहननाथ इस प्रकार कह रहे थे, मानो स्वयं अपने से कह रहे हों। कहने लगे—"मैं इस अनाथ लड़की के बारे में जब सोचता हूँ, तब मेरा हृदय करुणा और दया से द्रवीभूत हो जाता है। उसका भोला मुख देखकर बार-बार यही विचार उठता है कि यह कोई स्वर्ग की देवी है, जो कर्म-वश इस लोक की नरक-यंत्रणा भोगने के लिये अवतीर्ण हुई है। इसका अतीत क्या है, कोई नहीं जानता। आश्चर्य है, उसे स्वयं नहीं मालूम।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"उसका अतीत तो उसकी बातों में छिपा हुआ है। वह किसी सद्गृहस्थ की गृहिणी है, जो इन डोपोवालों द्वारा भगा लाई गई है।"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"नहीं स्वामीजी, आपका यह विचार बिलकुल ग़लत है। मैंने डॉक्टर के परामर्श से उनके बताए हुए चिह्नों से परीक्षा की है, उससे मैं निर्भयता-पूर्वक कह सकती हूँ कि वह अभी तक कुमारी और अविवाहित है।"

पंडित मनमोहननाथ ने विचार-लीन मुद्रा से कहा—"यही तो आश्चर्य-जनक बात है। उसकी अवस्था पंद्रह-सोलह वर्ष से अधिक नहीं मालूम होती, और प्रलाप में कहती है कि वह एक लड़की की मा है। कभी चाची-चाची कहकर पुकारती है, और उस लड़की को लाने को कहती है, जिसके लिये वह रात-दिन रोया करती है। अपने पति के लिये भी इतनी व्याकुल रहती है कि किसी तरह समझाने से नहीं मानती। यह एक अद्भुत समस्या है। मैं इसे कितने दिनों तक ऐसी अवस्था में रख सकूँगा।"

अमीलिया ने कहा—"डॉक्टर हुसैनभाई की यह धारणा है कि वह पागल हो गई है, और मस्तिष्क विकृत हो जाने से ऐसा प्रलाप करती है।"

इसी समय डॉक्टर हुसैनभाई भी आ गए।

अमीलिया ने उनकी ओर देखते हुए कहा—"क्यों डॉक्टर साहब, माधवी को आप किस प्रकार का पागल समझते हैं ?"

डॉक्टर हुसैनभाई, जो सबके साथ इस नवीन आश्रम में आए थे, माधवी का इलाज पहले की तरह कर रहे थे। वह तरह-तरह की अनेकों दवाएँ उसे खिला चुके थे, परंतु उनका कोई असर होता न दिखाई पड़ता था। उसका पागलपन घटने की अपेक्षा उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। वह अपनी दवाओं से निराश हो चुके थे, और किसी अन्य डॉक्टर की सहायता लेने का विचार कर रहे थे। आज उसी विचार को प्रकट करने के लिये वह आए थे।

डॉक्टर हुसैनभाई ने उत्तर दिया—"मैं उसे कैसा पागल समझता हूँ, यह कहना मेरे लिये अत्यंत कठिन है। मैंने ग्लासगो, एडिनबरा, लंदन, बंबई, सिंगापुर आदि कई अस्पतालों में एक-से-एक विकट पागल देखे हैं, किंतु ऐसा रोगी तो मुझे कहीं भी देखने को नहीं मिला ! उसकी परीक्षा करके कोई उसे पागल या विक्षिप्त नहीं कह सकता, किंतु वह पागल है। इसी भ्रम के वश होकर मैंने मिस जैकब्स से उसकी परीक्षा कराई, तो मालूम हुआ कि वह सर्वथा कुमारी है, उसका कौमार्य अभी तक नष्ट नहीं हुआ है। अब समझ में नहीं आता कि पति और पुत्री के विचारों का उद्गम कहाँ से हुआ ? यदि यह कहा जाय कि उसे सनक है, तो भी ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि सनक-जैसी बातें मालूम नहीं होतीं। उसके प्रलाप में किसी क़दर सचाई मालूम होती है, और उसका विश्वास भी अपने कथन पर रहता है—यानी उसकी बातों से मुस्तक़िल-मिज़ाजी ज़ाहिर होती है। मैं इस केस को लेकर स्वयं हैरान हो गया हूँ, और समझ में मुतलक़ नहीं आता कि क्या करूँ ?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"यही तो विस्मय-जनक है। क्या किसी अन्य डॉक्टर की सहायता लेनी पड़ेगी?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"जी हाँ, अगर आपको कुछ आपत्ति न हो, तो सहायता अवश्य लेनी चाहिए। दरहक़ीक़त यही कहने के लिये मैं आया भी हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"तब तो वालपेराइज़ो में ही अच्छे डॉक्टर मिल सकेंगे। या चिली-गवर्नमेंट को लिखकर कोई चतुर डॉक्टर बुलवाना पड़ेगा। यहाँ के प्रेसीडेंट पर मेरे कई ऐसे एहसान हैं, जिनके कारण वह हमें अच्छी तरह सहायता दे सकता है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने प्रसन्न होकर कहा—"तब तो आप ज़रूर उन्हें लिखकर किसी विशेषज्ञ को बुलावें।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"साथ में किसी नर्स को भी बुला लें, तो ठीक रहेगा। अकेले अमीलिया पर सब भार छोड़ देना ठीक नहीं। पहले फ़िज़ी में तो राधा थी, जो उसकी सहायता करती थी, परंतु जब से वह अपनी मा से मिलने गई, तब से वापस नहीं आई, और उस वक़्त से सारा बोझ अमीलिया पर आ पड़ा है।"

अमीलिया ने प्रसन्न चित्त से कहा—"मुझे इसमें कोई कष्ट नहीं मालूम होता, बल्कि एक प्रकार का आनंद मिलता है। इसके अतिरिक्त मेरे पास कोई काम भी तो नहीं, जिससे मेरा मन बहल सके।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"राधा की कोई ख़बर नहीं। मुझे विश्वास था, वह अपना पुराना जीवन छोड़कर नवीन, धर्म-विहित पथ पर चलेगी, और उसने इसका वचन भी दिया था, किंतु अब ऐसा मालूम होता है कि वह उसी पुराने भ्रष्ट पथ पर चलकर पापमय जीवन व्यतीत करेगी।"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"मुझे तो यह विश्वास नहीं होता। उसकी मा की तबियत पहले ख़राब थी, जिससे वह हम लोगों के साथ यहाँ (चाइल) नहीं आ सकी। मैंने आपको उसका पत्र दिखलाया था, क्या आप भूल गए ?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"यहाँ आए तो हम लोगों को लगभग दो सप्ताह हो गए, अभी तक उसका कोई पता नहीं।"

अमीलिया ने कहा—"मैंने पिताजी से कह दिया था कि जब वह कलकत्ते से यहाँ आवें, तो राधा और उसकी मा को अपने साथ लेते आवें। वह उन लोगों के साथ अवश्य आवेगी। इसी आशय का पत्र भी मैंने उसे लिख दिया है। वह हमारा जहाज़ आने की राह देखेगी।"

पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्न होकर कहा—"तुम्हारी कार्य-कुशलता देखकर ही मैंने तुम्हें इस आश्रम का प्रबंधक बनाने का निश्चय किया है। तुम्हारी दृष्टि सब ओर रहती है, और तुम उसे सुचारु रूप से कर सकती हो।"

अमीलिया की चिर-सहचरी मलिनता किंचित् क्षणों के लिये दूर हो गई।

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"डॉक्टर नीलकंठ, आभा और भारतेंदु के आ जाने से यह स्थान वास्तव में आनंद से मुखरित हो उठेगा।"

आभा और भारतेंदु के नाम ने अमीलिया का क्षणिक हर्षावेग फिर मलिन कर दिया। वह अपने मन का भाव छिपाने के लिये त्वरित पदों से वहाँ से चली गई।

डॉक्टर हुसैनभाई के साथ पंडित मनमोहननाथ भी माधवी को देखने के लिये चले गए। अकेले स्वामी गिरिजानंद सुदूर ज्वालामुखी के धूम को शून्य दृष्टि से देखने लगे।

---

(६)

माधवी ने शून्य दृष्टि से पंडित मनमोहननाथ की ओर देखा, जैसे किसी को पहचानने या अपनी बिखरी हुई स्मृति को एकत्र करने का उद्योग करती हो। वह उसकी ओर दयार्द्र भाव से देखने लगे।

माधवी ने धीमे स्वर में पूछा—"तुम कौन हो ? मुझे स्मरण नहीं होता कि मैंने कभी तुम्हें देखा है। हाँ, याद आया, तुम्हीं ने मेरी लड़की और स्वामी को मुझसे छीन लिया है, और मुझे बाँधकर यहाँ ले आए हो। अच्छा, बोलो, मैंने तुम्हारा कौन अपराध किया है ?"

उसके स्वर में विनय की परा काष्ठा का दिग्दर्शन था। पंडित मनमोहननाथ काँप उठे। उनकी हृत्तंत्री का एक-एक तार हिल उठा। वह अधीरता से कमरे में टहलने लगे; जिससे साफ़ ज़ाहिर था कि वह अपने हृदय की पीड़ा सहन करने में असमर्थ हैं।

माधवी कुछ देर बाद फिर कहने लगी—"वे मेरे कैसे सुख के दिन थे ! स्वामी के सुहाग को लेकर मैं विभोर थी, मेरे सामने कोई दूसरी वस्तु न थी, जिसका आकर्षण हो। मुझे सबने त्याग दिया था। मा-बाप, भाई-भतीजे, सखी - सहेलियाँ, सबने मुझसे अपना संबंध विच्छेद कर लिया था—एक न किया था उन्होंने और चाची ने। दोनो का पूर्ण सुख मुझे प्राप्त था, और उसी में मेरे जीवन की शांति केंद्रित थी। दोनो मेरे बिना क्षण-भर न रह सकते थे। अब नहीं मालूम, वे लोग कैसे हैं, और उन पर क्या बीती। इन दुष्टों ने मुझे उनसे छीन लिया, उनकी प्रेम-छाया मेरे ऊपर से हटा दी। मैंने कभी किसी का अनिष्ट नहीं किया, सदा दूसरों

का हित साधन करने का प्रयत्न किया है, फिर भी मुझे यह दंड भोगना पड़ा है। हे दैव! क्या इसका कोई प्रतिकार नहीं?"

माधवी कहते-कहते चुप होकर शून्य दृष्टि से कमरे के बाहर पर्वत-शृंग-माला की ओर देखने लगी। पंडित मनमोहननाथ उसके सिरहाने बैठकर उसकी ओर वात्सल्य-भरी दृष्टि से देखने लगे।

माधवी ने उनकी ओर किंचित् ध्यान नहीं दिया। वह पुनः कहने लगी—"दोपहर होने आई, अभी तक मैंने उनके लिये भोजन नहीं तैयार किया। वह क्या खाकर जायँगे? चाची का भी कहीं पता नहीं। मैंने उनसे कई मर्तबे कह दिया है कि उन्हें ठीक वक्त पर खाना दे दिया करो, परंतु न तो वही कुछ ख़याल करते हैं, और न चाची ही। मैं आज चाची से अच्छी तरह कह दूँगी; वह चाहे बुरा मानें चाहे भला। उनकी ऐसी बेपरवाही मुझे अच्छी नहीं मालूम होती। उन्हें भी कुछ खाने-पीने की फ़िक्र नहीं। दिन-रात मेरी दवा के लिये परेशान घूमा करते हैं। उनसे कई मर्तबे कह दिया कि मैं मरूँगी नहीं, तुम इतना परेशान मत हो, मगर वह मेरी कब सुनते हैं। मेरे पास जब तक बैठे रहते हैं, तब तक तो अपने अश्रुओं का वेग रोके रहते हैं, परंतु यहाँ से जाते ही जी खोलकर रोते हैं। वह अपनी वेदना छिपाने का यत्न करते हैं, किंतु छिपा नहीं सकते। मैं सब जानती हूँ। देखो, उनकी आँखें रोते-रोते लाल हो गई हैं, और मुख की श्री उतर गई है। हाय, मैं क्या करूँ? उन्हें देखकर मेरा रुदन साक्षात् रूप से प्रकट होने के लिये आकुल होता है। मैं उनके सामने रोती नहीं। जिस दिन वह मुझे रोते देख लेंगे, उन्हें भयानक यंत्रणा होगी। यह कैसी चोरी है, हम दोनो अपने-अपने भाव हृदय में छिपाए हुए हैं, हालाँकि हम लोग इतने निकट हैं। उनका प्रेम आकाश से भी उच्च है, सागर से भी गंभीर है, वायु से भी प्रबल है, अग्नि से भी प्रदीप्त है, और जल

से भी तरल है। पंचतत्त्वों से भी सूक्ष्म है, निर्मल है, सत्य है, शिव है और सुंदर है। वह मेरे लिये भगवान् से भी महान् हैं। उनके सामने भगवान् का कोई पृथक् अस्तित्व नहीं।"

माधवी पुन: चुप हो गई। प्रलाप बंद होते ही वह उठ खड़ी हुई, और आतुरता तथा विह्वलता से चारो ओर देखने लगी। पंडित मनमोहननाथ ने उसे पकड़कर बैठाने की चेष्टा की। माधवी अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी। जब वह अकृत-कार्य हुई, तो अग्नि-प्रदीप्त नेत्रों से उनकी ओर देखने लगी।

पंडित मनमोहननाथ ने सप्रेम कहा—"बेटी, अधीर क्यों होती हो? बोलो, तुम कहाँ जाना चाहती हो?"

माधवी ने सरोष कहा—"तुम मुझे रोकनेवाले कौन हो? मैं अपने पति के पास जाना चाहती हूँ। जहाँ से तुम लाए हो, वहाँ जाऊँगी।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"अच्छा, बताओ, मैं तुम्हें कहाँ से लाया हूँ?"

माधवी सोचने लगी, और शांत होकर पुनः शय्या पर लेट गई। परिश्रम करने से उसका शरीर काँप रहा था, और हृदय का स्पंदन बड़े वेग से हो रहा था।

पंडित मनमोहननाथ ने उसके रुक्ष केशों को सस्नेह सुलझाते हुए कहा—"माधवी, मेरी बेटी, तुम किसी बात की चिंता कर अपने को दुखी मत करो। मैं तुम्हारा पिता हूँ।"

माधवी ने विस्फारित नयनों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"असंभव है। तुम मेरे पिता नहीं हो, उनका नाम था पंडित लक्ष्मी-कांत। उनके विशाल दाढ़ी थी, और वह बहुत गोरे रंग के थे, उनका रंग तुम्हारी तरह गेहुआँ न था। वाह, क्या मैं अपने पिता को नहीं पहचानती? तुम तो कोई चोर हो, ठग हो, जो

मेरे स्वामी के पास से छीन लाए हो। मैं बीमार थी, मेरे एक छोटी लड़की थी, वह फूल की तरह सुंदर थी, ओस की तरह निर्मल थी, दूर्वा की तरह पवित्र थी। वह हमारी प्रेम-लता का मनोहर, अभिराम फल थी। मैं उसे अपने हृदय से लगाए थी, इसी समय बेहोश हो गई, और तुम डाकू की तरह मुझे लूट लाए। मेरे स्वामी ने मेरी लड़की को छीन लिया होगा, तभी तुम उसे नहीं ले आ सके, नहीं तो उसे भला कब छोड़ते। तुम कपटी हो, कपटमय प्रेम दिखाकर मुझे ठगते हो। याद रखना, मैं प्राण दे दूँगी, किंतु......"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"अच्छा, अपने पति का नाम तो बताओ। उन्हें भी यहाँ बुला लूँ।"

माधवी ने उलटकर तेज़ी के साथ कहा—"नहीं बताऊँगी, नहीं बताऊँगी। चाहे प्राण भले ही चले जायँ, मैं कदापि न बताऊँगी। मैं जानती हूँ, तुम्हारा यह प्रलोभन है। तुम उनका नाम पूछकर जैसा मुझे दुख दिया है, वैसा ही उन्हें दोगे। तुम उनका अनिष्ट करोगे, और मेरी रानी को, मेरी लड़की को हानि पहुँचाओगे। मैं सब जानती हूँ। तुम मुझे घर से बाहर नहीं निकलने देते, और कहते हो कि मैं तुम्हारा पिता हूँ। पिता का कर्तव्य खूब पालन करते हो। तुम मुझे जहाज़ पर बिठाकर ले आए हो। न-मालूम मैं कहाँ हूँ? अपने स्वामी और लड़की से कितनी दूर हूँ। मैं जानती हूँ, तड़प-तड़पकर मुझे अपने प्राण विसर्जन करने पड़ेंगे। शायद यही मेरे भाग्य में है।"

माधवी अपना शोकावेग न रोक सकी, उसका प्रतिबंध टूट गया, और वह फूट-फूटकर रोने लगी। पंडित मनमोहननाथ भी व्याकुल होकर उठ खड़े हुए। उन्हें साहस न हुआ कि उसे सांत्वना दें।

माधवी रोकर कहने लगी—"हाय ! तुम उन्हें भी दुःख देने जाते हो। मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। पहले मेरा वध कर डालो, फिर उन पर अपना हाथ उठाना। उनकी पीड़ा देखने की शक्ति मुझमें नहीं। मान लो, मेरी बिनती मान लो। मेरी लड़की बहुत छोटी है, दूध-पीती बच्ची है, उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? जान-बूझकर मैंने कभी कोई तुम्हारा या किसी का अपराध तो नहीं किया, फिर भी मैं अपना क़ुसूर स्वीकार करती हूँ। जो कुछ दंड देना हो, मुझे दे लो, लेकिन उन्हें न छुओ। मैं स्त्री हूँ, मैं पीड़ा सहन कर सकती हूँ, पति और पुत्री के लिये हँसते-हँसते मर सकती हूँ। मैं हिंदू-रमणी हूँ। हिंदू-रमणी का पति और संतान के लिये जीवन उत्सर्ग करना महान् यज्ञ है, यही उसका कर्तव्य है। मैं उस धर्म को जानती हूँ। लो, मैं तुम्हारे सामने सहर्ष अपना मस्तक नत करती हूँ। मेरे प्राणों की बलि लेकर मेरे स्वामी और मेरी पुत्री की रक्षा करो।"

कहते-कहते माधवी ने अपना सिर उनके सामने नत कर दिया।

पंडित मनमोहननाथ किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर उसकी ओर करुण-दृष्टि से देखने लगे।

माधवी ने विनय-पूर्ण स्वर में कहा—"देखते क्या हो ? क्या तुम्हें मेरे ऊपर दया आती है ? हाँ, तुम्हारी दृष्टि यही कह रही है, तुम्हारे मुख के भाव मेरे मन में यह विश्वास पैदा करते हैं कि तुम उनकी हत्या न करोगे।"

पंडित मनमोहननाथ की आँखों से अश्रु-धारा बहने लगी। भावावेश ने उनका कंठ अवरुद्ध कर लिया।

थोड़ी देर बाद उन्होंने अपने को सँभालकर कहा—"कौन कहता है कि यह पागल है ?"

माधवी ने तुरंत विस्मित स्वर में कहा—"क्या तुम मुझे पागल समझते हो ?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"दूसरा तुम्हें भले ही पागल समझे, किंतु मैं तो नहीं समझता।"

माधवी ने प्रसन्न कंठ से उत्तर दिया—"यह ठीक है। मैं बिलकुल पागल नहीं हूँ। मैं अपने होश-हवास में हूँ। इसी तरह कभी वह भी मेरी ज़िद देखकर प्रेम के साथ पागल कहा करते थे, तो इससे क्या मैं पागल हो गई थी। मैं एक बच्ची की मा हूँ। मेरे स्वामी विद्वान् पुरुष हैं, और उनका यश चारो ओर फैला हुआ है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मैं पागल नहीं हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने स्नेह से आर्द्र स्वर में कहा—"तुम्हारे पति का क्या नाम है, क्या तुम बतला सकती हो ?"

माधवी ने गंभीरता के साथ सोचते हुए कहा—"मैं उनका नाम भूल गई। मैं नहीं बतला सकती। मेरा तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"अच्छा, तुम मेरे ऊपर विश्वास क्यों नहीं करतीं ?"

माधवी ने हँसकर कहा—"यह भी कोई कहने की बात है। तुम अपने मन से स्वयं पूछो। क्या तुमने मेरे साथ कोई भलाई की है। मुझे उनके पास से हर लाए हो, और यहाँ छिपा रक्खा है, जैसे रावण ने सीता का हरण कर लंका में छिपा रक्खा था। यह भली भाँति जान लो कि भगवान् रामचंद्र की भाँति मेरे पति भी यहाँ आकर मुझे ले जायँगे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं।"

माधवी चुप हो गई। पंडित मनमोहननाथ कुछ विचारने लगे। माधवी ने उनकी ओर देखते हुए कहा—"तुम्हारी मुद्रा देखने से मालूम होता है कि तुम्हारे मन में भय उत्पन्न हुआ। मैं फिर

कहती हूँ कि तुम्हारा कल्याण इसी में है कि मुझे मेरे स्वामी और कन्या के पास भेज दो, नहीं तो इसमें तुम्हारा अकल्याण होने के अलावा कोई दूसरा शुभ परिणाम न होगा। तुम चाहे मुझे कितने समंदर पार ले जाकर छिपा रक्खो, वह मेरा पता लगा लेंगे।"

इसी समय डॉक्टर हुसैनभाई औषधि लेकर उस कमरे में आए। उन्हें देखते ही माधवी ने चिल्लाकर कहा—"मेरे लिये तुम विष लाए हो। मैं नहीं पिऊँगा। मैं अभी नहीं मरना चाहती। मुझे एक बार उन्हें और अपनी बच्ची को देख लेने दो। एक बार—केवल एक बार उन्हें दिखला दो, और फिर चाहे मेरी हत्या कर डालो, मुझे कोई उज्र न होगा।"

वह भय-विह्वल दृष्टि से भीत हरिणी की भाँति उनकी ओर देखने लगी।

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"डॉक्टर साहब, दवा पिलाने से कोई विशेष लाभ नहीं। इसके लक्षणों से यह नहीं मालूम होता कि इसका मस्तिष्क विकृत है। मुझे तो इसके कथन में सत्यता का आभास मिलता है, और मन कहता है कि विश्वास करो।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"मैं आपको क्या बतलाऊँ, मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं देती। मैंने ऐसी विलक्षण बीमारी आज तक नहीं देखी।"

पंडित मनमोहननाथ ने भ्रू कुंचित करके पूछा—"आप इसे बीमार किस तरह कहते हैं?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उत्तर दिया—"अप्रासंगिक बातों से यही निश्चय होता है। कभी-कभी ऐसे विकृत मस्तिष्कवाले देखने में आते हैं, जो बाह्य लक्षणों से तो पागल नहीं मालूम होते, किंतु दरअसल होते हैं पागल।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"माधवी की बातों से मैं यही निष्कर्ष निकालता हूँ कि इसका कथन अक्षरशः सत्य है। यह एक बच्चे की मा है। बिना माता हुए कोई स्त्री अपनी संतान से मिलने के लिये इतनी आतुर नहीं हो सकती। मातृत्व की वेदना बिना संतान प्रसव किए किसी स्त्री को नहीं हो सकती। मैं आपकी परीक्षा पर विश्वास नहीं करता। कभी-कभी ऐसी परीक्षाएँ ग़लत भी हो जाया करती हैं। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि डीपोवालों ने इस पर बहुत अत्याचार किया है। इसे कोई दवा खिलाकर बेहोश कर दिया गया है, और फिर किसी तरह वे लोग उठा लाए हैं। राधा की कहानी से मुझे मालूम हुआ है कि वे लोग कैसे-कैसे उपायों का अवलंबन करते हैं, और किस प्रकार साध्वी नारियों को बहका-कर, प्रलोभन देकर दग़ा-फ़रेब से निकाल लाते और उन्हें अपने अड्डों अथवा सुदृढ़ व्यूह-मंडलों में छिपा रखते हैं, फिर उन्हें कौशल से जहाज़ में उठा लाते हैं। इन बुर्दाफ़रोशों का व्यापार अभी तक इस सभ्य संसार में प्रचलित है। लोभ के वशीभूत होकर मनुष्य कितना अत्याचार अपने भाई पर करता है! इस व्यापार के संरक्षक हम पूँजी-पति लोग हैं, जो इन्हें 'शर्तबंदी मज़दूर' के संरक्षित नाम से ख़रीद लेते हैं, और नाम-मात्र मज़दूरी देकर उनसे पशुओं से भी ज़्यादा काम लेते हैं!"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"आपका कथन सत्य है। जितना अत्याचार क़ानून की ओट लेकर होता है, उतना असभ्य और बर्बर जातियों में नहीं होता। मैंने पूर्वीय द्वीप-समूहों में भ्रमण किया है, और कई जंगली जातियों के साथ रहकर उनके रीति-रस्म का अध्य-यन किया है। मैं यह भली भाँति कह सकता हूँ कि सभ्य संसार में जितना अंधेर होता है, उसका शतांश भी उनमें देखने को नहीं मिलता।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"हमारी सभ्यता का आवरण अपने नीचे मदांधता और पशुत्व छिपाए हुए है। मनुष्य ज्यों-ज्यों अपने को सभ्य बनाता है, वह कृत्रिमता के समीप और प्राकृतिक बंधनों से दूर होता जाता है। वास्तव में कृत्रिमता का नाम ही सभ्यता है।"

पंडित मनमोहननाथ डॉक्टर हुसैनभाई के साथ इतनी तल्लीनता से बात कर रहे थे कि उन्होंने माधवी को उस कमरे के बाहर जाते नहीं देखा। अब जो उनकी दृष्टि उस ओर गई, तो उसे वहाँ न देखकर बड़े व्याकुल हुए, और कमरे के बाहर बड़े वेग से दौड़े।

घर से बाहर निकलते ही उन्होंने देखा, स्वामी गिरिजानंद माधवी को पकड़कर ला रहे हैं। उन्होंने पास आकर कहा—"भाग्य-वश मैं झील के किनारे टहल रहा था, नहीं तो आज अनर्थ हो जाता। हमें माधवी से हाथ धोना पड़ता। अगर मैं ठीक समय पर पहुँचकर पकड़ न लेता, तो यह उसमें कूदकर प्राण दे देती।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आज ईश्वर ने ही रक्षा की। हम लोग बातों में इतने मशग़ूल हो रहे थे कि इसका निकल भागना नहीं देख पाए, और इसी दर्म्यान न-मालूम कब निकल भागी। अब तो मुझे विश्वास करना पड़ता है कि दरअसल यह विक्षिप्त है।"

डॉक्टर हुसैनभाई विजय-दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे।

माधवी ने कहा—"मैं डूबने नहीं जा रही थी। हाँ, तुम्हारी क़ैद से निकलने की ज़रूर कोशिश कर रही थी।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"अब बिना एक नर्स के काम नहीं चलेगा। डॉक्टर साहब, आप विशेष रूप से इसका उपचार करें।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने पुनः विजय-गर्व से उनकी ओर देखा, और माधवी के साथ-साथ वह भी अपनी प्रयोगशाला में चले गए, तथा दूसरी ओषधि बनाने में संलग्न हो गए।

---

(७)

व्यूनेसवोका-नामक झील की परिधि लगभग पाँच मील होगी। उसे चारो ओर से पत्थर की शिलाएँ इस प्रकार घेरे हुए थीं, मानो किसी ने उसे पक्का बँधाया हो। उसका जल इतना निर्मल था कि नीचे की चट्टानें साफ़ दिखाई पड़ती थीं, जिससे उसकी गहराई का बोध नहीं होता था। उसमें जल-जंतु भी बहुतायत से रहते थे—मगर और घड़ियालों की कमी न थी। पंडित मनमोहननाथ ने उसके एक कोने को लोहे की मोटी जालियों से बँधवा दिया था, जिसमें स्नान करनेवालों पर वे जल-जंतु आक्रमण न कर सकें।

उस दिन दोपहर को असह्य गरमी थी। अमीलिया उससे व्याकुल होकर उस झील के पास घूमती-घूमती चली गई। शीतल जल की लहरें उसे स्नान करने का निमंत्रण देने लगीं। वह उसमें कूद पड़ी। उसने यह ध्यान नहीं दिया कि यह वह सुरक्षित घाट नहीं, जिसे पंडित मनमोहननाथ ने बनवाया है। वह अपनी व्याकुलता में उनका आदेश भी भूल गई कि उन्होंने उसे घाट के अतिरिक्त अन्य सब स्थानों में स्नान करने से मना किया है। हिम की तरह शीतल जल उसकी व्याप्त ऊष्मा को कम करने लगा।

उसका मस्तिष्क शीतल होते ही उसे याद आया कि वह उस घाट से दूर है। एक प्रकार के भय का तड़िद्वेग उसके शरीर में व्याप्त हो गया। वह किनारे निकलने का प्रयत्न करने लगी, किंतु चिकने पत्थरों की कगारें उसे पैर रखने का स्थान

नहीं देने लगीं। वह तैरकर जाने लगीं, जहाँ का तट कुछ छिछला था।

जंगली जंतुओं की घ्राण-शक्ति बहुत तीव्र होती है, और विशेषकर अपने आहार का ज्ञान उन्हें सुगमता और बहुत दूर से हो जाता है। बुभुक्षित मगर अपने आहार की सुगंध पाकर बड़े वेग से अमीलिया की ओर झपटे। अमीलिया उन्हें आते देखकर बड़ी शीघ्रता से उस छिछले तट की ओर संतरण करने लगी। अपना शिकार भागते देखकर एक मगर द्विगुणित उत्साह से उसका पीछा करने लगा। अमीलिया प्राणों की बाज़ी जीतने के लिये अपनी संपूर्ण शक्ति से उस तट की ओर अग्रसर होने लगी।

अमीलिया तट पर पहुँच गई। जल उसके घुटने तक आ गया, वह खड़ी होकर भागनेवाली थी कि एक घड़ियाल उसके समीप पहुँच गया, और उसे पकड़ने के लिये झपटा। अमीलिया भय से चिल्ला उठी। उसकी भय-विह्वल चीख़ उस अरण्य में गूँजकर, किसी सुदूर पर्वत की श्रेणी में जाकर विलीन हो गई। अमीलिया भय से मूर्च्छित-सी होकर अवश हो गई।

डॉक्टर हुसैनभाई भी अमीलिया की भाँति गरमी से व्याकुल होकर झील के तट की शीतल हवा में विचरण करते हुए पक्षियों का शिकार करने के लिये आ रहे थे। उन्होंने अमीलिया का चीत्कार सुना। वह उसकी रक्षा करने के लिये दौड़े।

दूसरे क्षण तट पर पहुँचकर उन्होंने देखा कि अमीलिया का जीवन ख़तरे में है।

डॉक्टर हुसैनभाई ने बड़ी तत्परता से बंदूक़ का निशाना साधा। दूसरे क्षण गगनभेदी शब्द हुआ, और चारो ओर पानी की लहरें आकाश को स्पर्श करने के लिये फैल गईं। डॉक्टर हुसैन-

भाई ने अमीलिया को पकड़कर जल्दी से खींचा, किंतु वह उसका वेग न सँभाल सके, और गिर पड़े। उनके ऊपर बेहोश अमीलिया भी गिर पड़ी। वे जल-जंतु प्राण लेकर, अपनी भूख भूलकर भागे, और सुदूर जल में जाकर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

बंदूक़ के शब्द ने आश्रम-वासियों को आकृष्ट किया। वे उसका रहस्य जानने के लिये दौड़ पड़े। उनमें पंडित मनमोहननाथ भी थे।

उन्होंने आकर देखा, डॉक्टर हुसैनभाई और अमीलिया, दोनो बेहोश पड़े हैं, एवं उनके सिर और शरीर के कई स्थानों से रक्त निकलकर पानी में मिल रहा है। उन्होंने उन दोनो को आश्रम में पहुँचाने का आदेश दिया। मोटर द्वारा वालपेराइज़ो से एक अन्य चतुर डॉक्टर लाने का प्रबंध करने लगे।

❀ ❀ ❀

थोड़ी देर के परिश्रम से डॉक्टर हुसैनभाई को होश आ गया, और वह पंडित मनमोहननाथ की ओर देखने लगे।

पंडित मनमोहननाथ ने आकुल स्वर से पूछा—"डॉक्टर, यह घटना कैसे घटित हुई?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उत्तर दिया—"मैं मगर का शिकार करने के लिये बाहर निकला था कि मिस जैक्सन का चीत्कार सुनाई पड़ा। शायद वह भी गरमी से घबराकर झील के किनारे घूमने आई थीं, और स्नान करने लगीं। इसी अवसर में एक मगर ने उनका पीछा किया। वह उन पर झपट ही रहा था कि मैं पहुँच गया, और उस पर बंदूक़ का निशाना साधा। ईश्वर की कृपा से गोली निशाने पर बैठी, और ज्यों ही मैंने उन्हें अपनी ओर घसीटा, मेरा पैर फिसल गया, और मैं गिर पड़ा। इसके आगे मुझे याद नहीं, क्या हुआ।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"अमीलिया की जीवन-रक्षा

हुईं, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। कुछ गहरी चोटें उसके अवश्य लगी हैं, लेकिन वे सब शीघ्र अच्छी हो जायँगी। वह अभी तक बेहोश है। वालपेराइज़ो से मैंने डॉक्टर बुलाया है, जो आज संध्या तक आ जायगा।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उठने की चेष्टा करते हुए कहा—"आप चिंतित न होइए, मैं अभी मिस जैकब्स को ठीक कर दूँगा। मेरे तो मामूली चोट लगी है। अब मैं अच्छा हूँ। सिर्फ़ थोड़ी-सी चोट है, जो दो-एक दिन मलहम लगाने से अच्छी हो जायगी। अब देखूँ कि मिस जैकब्स की तबियत कैसी है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"स्वामी गिरिजानंद उसकी देख-भाल कर रहे हैं। अगर आपकी तबियत अच्छी है, तो अमीलिया को होश में लाने का प्रयत्न करना चाहिए। मैं तो आजकल बड़ी विपद् में फँसा जा रहा हूँ। अभी तक माधवी की फ़िक्र थी, और अब अमीलिया भी बुरी तरह घायल हो गई है। अब इसकी देख-रेख कौन करेगा।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"आप इसकी चिंता न करें। मैं सब देख-भाल लूँगा। माधवी की ज़रूर कुछ फ़िक्र है, क्योंकि वह अपने होश में नहीं। अच्छाई केवल यही है कि सिवा बकने के और कोई उपद्रव नहीं करती। मैं उसे भी सँभाल लूँगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"माधवी के लिये मैंने सैंटियागो से नर्स बुलाई है, जो कल या आज शाम तक आ जायगी। जब तक नर्स न आवे, तब तक तो आपको देखना होगा।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कमरे के बाहर निकलते हुए कहा—"मैं सब प्रबंध कर लूँगा। केवल कठिनता यही है कि दोनो रोगी स्त्रियाँ हैं।"

यह कहकर वह अमीलिया को देखने के लिये शीघ्रता से चले गए।

---

(८)

तीन दिन की बीमारी में अमीलिया के सौंदर्य में बहुत कुछ कमी हो गई थी। शरीर का रक्त अधिक मात्रा में निकल जाने से कमज़ोरी के साथ उसके शरीर का वर्ण भी पीला पड़ गया था। सहज सुचिक्कण, आलुलायित केश-राशि रूक्ष हो गई थी, और इस समय उसने अपना स्वाभाविक रंग छोड़कर कुछ भूरापन धारण करना शुरू किया था। अधरों की लालिमा परिवर्तित होकर कुछ श्वेतता-मिश्रित भूरे रंग की हो गई थी। उनके चिकनेपन का सर्वथा नाश हो गया था, वे सूखकर पपड़ियों से आवृत हो गए थे। आँखों की ज्योति निष्प्रभ हो गई थी। उसे देखकर पहचानना मुश्किल था।

डॉक्टर हुसैनभाई तीन दिन से निरंतर परिश्रम कर रहे थे। उसे अकेले छोड़कर कभी क्षण-भर के लिये न जाते थे। भोजन भी वह उसी कमरे में करते थे। इतनी तन्मयता और मनोयोग से उन्होंने किसी दूसरे रोगी की परिचर्या की थी या नहीं, यह ठीक से नहीं कहा जा सकता।

वालपेराइज़ो से डॉक्टर आने के पहले-पहले अमीलिया को होश आ गया था, इसलिये पंडित मनमोहननाथ उसे माधवी के कमरे में ले गए। माधवी का समस्त वृत्तांत सुनकर वह भी चकित रह गया, और परीक्षा करके उसने यही स्थिर किया कि वह किसी हद तक ज़रूर विक्षिप्त है। डॉक्टर स्पेन का रहनेवाला था, और अभी हाल में ही चिली आकर अपने व्यवसाय का प्रसार किया था। डॉक्टर हुसैनभाई से मिलाप होने पर वह प्रसन्न हुआ, और उसने

उनके उपचार का अनुमोदन कर उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की। डॉक्टर वान फ़रडीनेंड को अँगरेज़ी का बहुत थोड़ा ज्ञान था, परंतु फिर भी दोनो डॉक्टरों ने अपने विचारों का विनिमय बड़ी सुगमता से कर लिया। वह साथ में एक नर्स भी लाया था, जिसे माधवी की परिचर्या के लिये नियुक्त कर दिया गया। अमीलिया का भार तो डॉक्टर हुसैनभाई ने स्वयं अपने ऊपर रक्खा।

आज अमीलिया को उस दुर्घटना से बचे हुए चौथा दिन था। तीन दिनों तक वह चुपचाप लेटी रही, किसी के पुकारने से आँख खोलकर देख लेती, और पुनः नेत्र बंद करके विचार-निद्रा में डूब जाती। डॉक्टर हुसैनभाई ने एक दिन भी उसे बुलाकर विरक्त नहीं किया था, वह शांत मन से उसकी सेवा में दत्तचित्त थे। रात्रि का मध्यकाल था, चतुर्दिक् निस्तब्धता छाई हुई थी। आश्रम-प्रवासी निद्रा में मग्न होकर स्वप्न-लोक में विचरण कर रहे थे। बाहर पूर्व दिशा में चंद्रमा उदय हो रहा था, जिसकी किरणों ने पूर्व के वातायन से आकर, अमीलिया के शुष्क मुख-मंडल पर पड़कर उसे जगा दिया। उसने अपने नेत्र धीरे-धीरे खोल दिए। सामने चंद्रमा मुस्किरा रहा था। वह उसका हास्य सहन न कर सकी, और उसने अपने नेत्र पुनः बंद कर लिए। टूटी हुई नींद उसकी आँखों से तिरोहित होकर थोड़ी दूर बैठे हुए डॉक्टर हुसैनभाई को वशीभूत करने के लिये आतुर हो रही थी।

अमीलिया उन्हें ऊँघते देखकर बोली—"डॉक्टर साहब, आप सो जाइए।"

डॉक्टर हुसैनभाई चौंक पड़े। वह चकित होकर इधर-उधर देखने लगे। उन्हें विश्वास न हुआ कि उनसे कहनेवाली अमीलिया है। आज के पहले उसने कभी एक शब्द भी उनसे न

था।

उन्हें इस प्रकार चकित होते देखकर अमीलिया अपनी हँसी न रोक सकी। वह सुमधुर शब्द से हँस पड़ी।

डॉक्टर हुसैनभाई पहले से भी अधिक विस्मित होकर चारो ओर देखने लगे। उन्हें यह अनुमान न हुआ कि अमीलिया हँस रही है। भ्रांति का दूसरा नाम भय है। वह कुछ भयाकुल होकर कमरे के बाहर सुदूर आकाश में नवोदित चंद्र की ओर देखने लगे।

अमीलिया ने शय्या से उठते हुए मधुर कंठ से कहा—"डॉक्टर साहब, आप उधर क्या देख रहे हैं। मैं आपसे कह रही हूँ कि आप कई दिनों से परेशान हो रहे हैं, आज मेरी तबियत अच्छी है, आप विश्राम कीजिए।"

डॉक्टर हुसैनभाई का विस्मय दूर हुआ। उन्होंने मृदु हास्य के साथ कहा—"आप फ़रमा रही हैं! मैं ताज्जुब में था कि कौन मुझे सोने का आदेश दे रहा है!"

अमीलिया के उठने से उसके घावों पर ज़ोर पड़ा, वह कराहकर पुनः लेट गई। डॉक्टर हुसैनभाई एक ही छलाँग में उसके पास पहुँच गए, और कहा—"आप यह क्या करती हैं! मैंने आपको हिलने-डुलने के लिये कई बार मना किया, किंतु आप मेरे कहने पर ज़रा ध्यान नहीं देतीं।"

उनके स्वर में गुप्त वेदना का आभास था।

अमीलिया ने उनकी पीड़ा अनुभव करते हुए कहा—"सुनूँगी। आपका कहना न सुनूँगी, तो किसका सुनूँगी!"

यह कहकर उसने अपने नेत्र पुनः बंद कर लिए।

डॉक्टर हुसैनभाई की सुप्त आशा सजग होकर, उसका मुख देखकर उसके हृदय का भेद जानने का प्रयत्न करने लगी।

अमीलिया ने आँखें बंद किए हुए कहा—"आइए, मेरे समीप बैठ जाइए। आज मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ। कल से मैं

अपने हृदय का भेद आप पर प्रकट करना चाहती हूँ, लेकिन साहस नहीं होता।"

डॉक्टर हुसैनभाई सहस्र-सहस्र उत्कंठाओं को लेकर उसके समीप, कुर्सी पर, बैठ गए। उनके हृदय का स्पंदन बड़े वेग से होने लगा।

अमीलिया ने एक बार उनकी ओर देखा, फिर अपने नेत्र बंद कर कहा—"आप जानने के लिये व्यग्र हैं कि मैं आपसे क्या कहना चाहती हूँ। यह मैं जानती हूँ कि आपका प्रेम मेरे प्रति अगाध और असीम है। आपने एक दिन फ़िज़ी में मुझसे प्रेम-प्रतिदान माँगा था, किंतु मैंने आपके प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। उस दिन से आज तक मैं बराबर अपनी आत्मा से युद्ध कर रही हूँ, और वह युद्ध इधर तीन दिनों से कुछ ज़्यादा उग्र हो उठा है, जब से आपने मुझे मृत्यु के मुख से घसीट लिया है..."

डॉक्टर हुसैनभाई ने बात काटकर कहा—"यह आपका भ्रम है; मैंने केवल अपना कर्तव्य पालन किया है।"

अमीलिया ने मंद स्वर में कहना आरंभ किया—"कृपा करके आप मेरे विचारों को सुनते जाइए, पीछे बहस कीजिएगा।"

यह कहकर वह मुस्किराई। मलिन हास्य-श्री उसे अपूर्व सुंदरी कहकर परिचय देने लगी। डॉक्टर हुसैनभाई ने कोई उत्तर नहीं दिया।

अमीलिया कहने लगी—"कर्तव्य पालन करने के लिये मनुष्य का जन्म हुआ है। यदि आपने अपना कर्तव्य पालन किया है, तो मुझे भी उचित है कि मैं भी अपना कर्तव्य पालन करूँ। यह विषय तो निर्विवाद है।"

थोड़ी देर बाद अमीलिया पुनः कहने लगी—"हाँ, मैं तीन दिन से बराबर अपनी आत्मा से युद्ध कर रही हूँ। आपको

यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे हृदय का युद्ध कर्तव्य को लेकर ही हो रहा है। अभी तक मैं किसी के प्रति अपना कर्तव्य पालन करती थी, हालाँकि उसने निष्ठुर पुरुष-जाति के स्वाभावानुसार मुझे त्याग दिया था, फिर भी मैं उसके प्रति अपना कर्तव्य निबाहे जाती थी। क्या मुझमें संसार के सुख भोगने की लालसा नहीं, क्या मैं किसी से प्रेम किए जाने के लिये लालायित नहीं, क्या मैं नारी-जीवन को सार्थक बनाने के लिये आतुर नहीं। स्त्री का स्त्रीत्व तो प्रेम में निहित है। उसकी आत्मा प्रेम है, उसका जीवन सोहाग है, उसका शरीर शृंगार है। स्त्री का जन्म केवल प्रेम करने और प्रेम किए जाने के लिये हुआ है। मैंने भी किसी से प्रेम किया था, और अब भी करती हूँ; किंतु प्रेम के साथ कर्तव्य भी तो है। उसने दूध की मक्खी की भाँति मेरा तिरस्कार किया, किंतु मैंने उसे अपने हृदय से लगा रक्खा और प्यार करती रही।"

वह ठहरकर विश्राम लेने लगी। डॉक्टर हुसैनभाई बड़ी मुश्किल से, अपने मनोगत भावों को रोके हुए, उसकी कहानी सुन रहे थे।

थोड़ी देर बाद अमीलिया फिर कहने लगी—"किंतु अब मेरी अवस्था में कुछ परिवर्तन हो गया है। उस दिन की घटना के बाद मेरा पुनर्जन्म हुआ है। ल्यूनेसबोका की उस घटना ने मेरे उस जीवन का अंत कर दिया। यदि इस जीवन की रक्षा हुई है, तो इसका श्रेय आपको है, और इसके स्वामी भी आप ही हैं।"

डॉक्टर हुसैनभाई के एक-एक अवयव पुलकित हो उठे। उनकी आँखों से प्रकाश निकलकर उसके मुख का मालिन्य दूर करने का प्रयास करने लगा।

उन्होंने अधीर होकर उसका हाथ सप्रेम अपने हाथ में ले लिया, और उस पर अपने हृदय के अगाध उद्गार की छाप

अंकित करने लगे। उन दोनो के शरीर में एक तड़िस्प्रवाह प्रवाहित होकर उन्हें अचेत करने लगा। अमीलिया की विरोध-शक्ति प्रेमावेश से मूर्च्छित होकर निश्चेष्ट हो गई। उसने कोई आपत्ति नहीं की, वरन् अपना हाथ और ढीला कर दिया।

थोड़ी देर बाद आवेश का उफान शांत होने पर अमीलिया ने अपना हाथ धीरे-धीरे खींच लिया, और बोली—"उस दिन से मेरे सामने एक नया प्रश्न उपस्थित हुआ है कि मुझे मेरे पुराने संबंध के साथ आबद्ध रहना कहाँ तक न्याय संगत है? मुझे उस ओर से सिवा उपेक्षा के और कुछ नहीं मिला। मैं उसी को लेकर संतुष्ट थी, किंतु इधर आपके प्रेम ने मेरे सामने एक नया विचार रक्खा है। आपके प्रेम की गहराई मुझसे छिपी नहीं, और मुझे विश्वास है कि......"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उसे आगे बोलने नहीं दिया। वह अपने प्रेमावेग को दमन करने में कृतकार्य नहीं हुए। उनके धैर्य का बाँध टूट गया, और उन्होंने उसके हाथ को अधीरता के साथ चुंबन करते हुए कहा—"हाँ, अमीलिया, मैं तुम्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करता हूँ। अपने हृदय का प्रेम व्यक्त करने के लिये मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं। आज मेरा जीवन, मेरी तपस्या सार्थक हुई।"

वह आनंद में मग्न होकर पुनः उसका हाथ तप्त चुंबनों से अंकित करने लगे। प्रेमदेव अपने शिकार को अचेत करने का आयोजन करने लगे।

अमीलिया कहने लगी—"जब इस शरीर की रक्षा तुमने की है, तो मेरा कर्तव्य कहता है कि मैं इसे तुम्हारे हाथ में समर्पण कर दूँ। परंतु..."

डॉक्टर हुसैनभाई ने अधीरता के साथ कहा—"परंतु, परंतु, इसमें अब क्या परंतु है, प्रिये!"

अमीलिया ने बड़ी कठिनता से अपने मन का भाव दमन करते हुए कहा—"अभी मेरे अतीत जीवन की बातें तुम्हें कहाँ मालूम हैं, उन्हें जान लेना आवश्यक है, जिसमें कभी तुम्हें पश्चात्ताप न करना पड़े।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने बड़ी अधीरता के साथ कहा—"तुम्हारा अतीत जीवन सुनने की मुझे इच्छा नहीं। मैं अतीत पर विश्वास नहीं करता। मेरे सामने केवल वर्तमान है। मेरे लिये यही यथेष्ट है कि तुम मुझे प्यार करती हो। बस, इतना ही मुझे संतुष्ट करने के लिये पर्याप्त है—मेरे जीवन को सुखी करने के लिये काफ़ी है।"

इसके आगे वह न कह सके। उन्होंने उसके हाथ को अपने हृदय से लगा लिया। उनका हृदय वेग से स्पंदित हो रहा था।

अमीलिया ने अपना हाथ खींचते हुए कहा—"नहीं, अतीत का संबंध वर्तमान से सदैव रहता है। वर्तमान बिना अतीत के असंभव है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"होगा, मैं उसे नहीं सुनना चाहता। अतीत में तुम चाहे कोई हो, इस समय मेरे लिये प्रेम की देवी हो।"

अमीलिया ने दृढ़ कंठ से कहा—"नहीं, तुम्हें सुनना होगा। प्रेम की मदिरा के उत्ताप में विवेक-शून्य होना उचित नहीं। इससे हमेशा दुष्परिणाम निकलते हैं। मैंने एक बार यही भूल की थी, जिसका परिणाम मुझे आज तक भोगना पड़ रहा है। पहले प्रेम अंधा होता है, किंतु जब उसकी आँखें, नशा ख़त्म होने पर, खुलती हैं, तब आदमी पश्चात्ताप करता है। मेरा अतीत भयानक है, संभव है, उसे जानकर आपका प्रेम घृणा में परिवर्तित हो जाय।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने दृढ़ता से कहा—"यह बिलकुल असंभव है। अमीलिया, अब भी तुम्हें मेरे प्रेम का विश्वास नहीं?"

उनका स्वर तिरस्कार-रंजित था।

अमीलिया ने सप्रेम कहा—"यदि यह न मालूम होता, तो क्या मैं आत्मसमर्पण करती ?"

डॉक्टर हुसैनभाई चुप हो गए।

अमीलिया कहने लगी—"मेरा अतीत बड़ा भयानक है। मैं किसी व्यक्ति से प्रेम करती थी। मेरी नई उम्र थी, यौवन का आगम था, किसी के प्रेम-जाल में फँस गई, और उसके छलना-भरे शब्दों को सत्य मान लिया। मैंने उस पर विश्वास किया, और अपने स्त्री-जीवन का अमूल्य रत्न भी उसके चरणों पर चढ़ा दिया। मेरे कौमार्य की पवित्रता नष्ट-भ्रष्ट हो गई। मैं गर्भवती हो गई, और उस दुष्ट ने उस कठिन समय में मुझे त्याग दिया। मैं अपनी शर्म छिपाने के लिये आकुल थी। उसे पत्र द्वारा सूचित किया कि वह उस बच्चे का पिता होकर उसके जीवन की रक्षा करे, किंतु उसने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अंत में अपनी लाज बचाने के लिये मुझे उसकी हत्या करनी पड़ी। मैं हत्यारिनी हूँ। क्या तुम हत्यारिनी को......"

अमीलिया की आँखों से अश्रु-प्रवाह होने लगा, जिसने उसका गला दबा दिया। कंठ का स्वर कंठ में रह गया।

डॉक्टर हुसैनभाई ने सांत्वना-पूर्ण स्वर में कहा—"प्रियतमे, अधीर न हो। तुम हत्यारिनी नहीं हो, वरन् अपराधी वह है, जिसने ऐसा अधम और गर्हित काम किया। मैंने तुमसे कह दिया कि मुझे तुम्हारे अतीत से संबंध नहीं। मैं उसकी बिलकुल परवा नहीं करता। वह दुष्ट और नराधम कौन था, जिसने तुम्हारे साथ ऐसा नीच व्यवहार किया। मैं उसे दंड दूँगा, और द्वंद्व-युद्ध के लिये आह्वान करूँगा।"

अमीलिया ने रुदन करते हुए कहा—"उसका नाम मैं तुम्हें नहीं

बता सकती। मैं अभी तक उसे प्यार करती हूँ, और कभी उसे भूल सकूँगी, यह नहीं कह सकती। उसने मेरा अनिष्ट किया है, किंतु मैं उसका एक बाल बाँका नहीं कर सकती। तुम्हें उसे क्षमा करना पड़ेगा।"

वह अधीरता के साथ डॉक्टर हुसैनभाई की ओर देखने लगी।

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"उसे क्षमा करना उचित नहीं। अमीलिया, मेरा प्राणोपम अमीलिया, तुम्हारा कितना महान् हृदय है। मैं सचमुच धन्य हो गया!"

अमीलिया उनका हाथ आवेग के साथ पकड़कर बोली—"कहो, मेरे सामने शपथ-पूर्वक कहो, अगर कभी उसका नाम तुम्हें मालूम हो गया, तो उसे क्षमा कर दोगे, और उसके साथ प्रतिशोध लेने का विचार स्वप्न में भी न करोगे।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने शपथ-पूर्वक प्रतिज्ञा की।

अमीलिया ने उनका हाथ अपने तप्त ओष्ठों से लगाकर, उस पर अपने प्रेम की छाप अंकित कर प्रेम के दस्तावेज़ को सही कर दिया। सुदूर आकाश में चंद्रदेव ने अपनी मंद मुस्कान-रूपी चंद्रिका से उस पर साक्षी होने के हस्ताक्षर कर दिए। वातायन से शीतल समीर आकर उनकी प्रेम-लीला देखकर मुस्किराने लगा।

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह ने मलिन हास्य से कहा—"आज मैं जाऊँगा।"

मालती ने उनकी ओर देखा, फिर पूछा—"कहाँ जाने का विचार है?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद एक चित्र की ओर देखने लगे। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

मालती ने उनके समीप आकर आदर-सहित पूछा—"यह तो कहिए, कहाँ जाने का इरादा है? यदि कहीं घूमने का विचार हो, तो मैं भी चलूँगी।"

कुँवर कामेश्वर ने उत्तर दिया—"कहाँ बताऊँ, कहाँ जाऊँगा। मेरा जीवन मेरे लिये भार हो रहा है। मैं किसी तरह इससे छुटकारा पाना चाहता हूँ।"

मालती ने उनके पास आकर, सप्रेम उनका हाथ पकड़कर उनके नेत्रों की ओर देखते हुए कहा—"आज यह वैराग्य कैसा? मुझसे क्या अपराध हुआ है?"

कुँवर कामेश्वर ने मलिन स्वर में उत्तर दिया—"तुम्हारा क्या अपराध है? अपराधी तो मैं हूँ, जिसने तुम्हें इस प्रकार कुढ़ने के लिये मजबूर किया है। जब मैं इस विषय को सोचने लगता हूँ, तब मेरा हृदय ग्लानि से भर जाता है, और बार-बार आत्महत्या करने की इच्छा होती है। इससे कम-से-कम तुम्हारी तो निष्कृति हो जायगी। आजकल के ज़माने में विधवा-विवाह......"

मालती ने सरोष कहा—"देखो, मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं। क्या मैंने कभी इसकी शिकायत तुमसे की है?"

कुँवर कामेश्वर ने कहा—"नहीं, जीवन-भर कैसे निर्वाह हो सकता है। मैंने विचारकर देखा है कि सारी आपत्तियों का मूल मैं हूँ। पिताजी मुझसे निष्कृति पाने के लिये न-मालूम कौन-कौन उपाय अवलंबन कर रहे हैं, और इधर मेरे ही कारण तुम्हें भी दुःख भोगना पड़ता है।"

मालती ने उनका हाथ सप्रेम पकड़ते हुए कहा—"ऐसा दुःख करने का क्या कारण है? आप क्यों दुखी होते हैं? यह सब समय के प्रभाव से होता है। समय ही प्रकट करता है, और समय ही उसका नाश करता है। यदि राजा साहब की इच्छा हम लोगों को अपने प्राप्य अधिकारों से वंचित करने की है, तो हम लोग क़ानून की शरण ले सकते हैं।"

कुँवर कामेश्वर ने कहा—"यही तो मैं नहीं चाहता। मैं एक तुच्छ राज्य के लिये पिता से युद्ध नहीं करना चाहता।"

मालती ने प्रसन्न वदन से कहा—"यदि आपकी यह इच्छा है, तो मुझे इसी में आनंद है। हमारे गुज़ारे लायक़ मेरे माता-पिता ने काफ़ी प्रबंध कर दिया है, और अगर वह भी न हो, तो हम अपने पैरों खड़े हो सकते हैं। पिताजी आपके लिये कोई अच्छी नौकरी दिलाने का विचार कर रहे हैं, और अम्मा भी ज़ोर दे रही हैं।"

कुँवर कामेश्वर ने मलिन मुख से उत्तर दिया—"जीविका का प्रश्न तो हल हुआ, किंतु......"

मालती ने लापरवाही से कहा—"किंतु क्या? हिंदू-स्त्रियाँ अपनी इच्छाओं का दमन करना भली भाँति जानती हैं। इसके विषय में उन्हें किसी से उपदेश या शिक्षा लेने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।"

इसी समय कांति ने आकर कहा—"जीजाजी, आपको बाहर बाबूजी बुला रहे हैं।"

कुँवर कामेश्वर ने बाहर जाते हुए कहा—"अच्छा, मैं तो अभी बाहर जाता हूँ, और उनसे भी विदा माँगे लेता हूँ। आज मैं अवश्य जाऊँगा।"

मालती ने उत्तर दिया—"यह मैं कहे देती हूँ कि आपका जाना किसी भाँति न होगा। आप इसके लिये बेकार कोशिश मत करें।"

उनके चले जाने के बाद मालती सोचने लगी—"वह जाना चाहते हैं, मुझसे दूर भागकर शांति की खोज में जाना चाहते हैं। यह उनकी भूल है। आज कई दिनों से मैं उन्हें मलिन-मुख और उत्साह-हीन देखती हूँ। यह क्या कारण है? वह अपने हृदय की वेदना मुझसे छिपाते हैं। मेरे ही कारण वह बहुत दुखी हैं। उनकी वेदना और ग्लानि मिटाने के लिये ही मैंने एसेंबली की मेंबरी से इस्तीफ़ा दे दिया। इससे बाबूजी को बहुत कष्ट हुआ, किंतु मैंने कुछ ख़याल नहीं किया। फिर भी वह संतुष्ट नहीं होते।

"अम्मा से भी सब भेद कहना पड़ेगा। वह सुनकर स्तंभित रह जायँगी, और उन्हें असह्य वेदना होगी। यह भेद कब तक छिपा-कर रखना पड़ेगा। उधर सब कुछ नष्ट होनेवाला है। मेरी सासजी अपने मायके चली गई हैं, और वहाँ अनूपकुमारी की तूती बोलती है। गद्दी छीनने की भी कोशिश हो रही है। इधर यह अपने पिता के विरुद्ध लड़ना नहीं चाहते, और बिना इसके काम नहीं चलता दिखाई देता। उधर मेरी ननदें भी अभी तक अविवाहित बैठी हैं। उनका भी तो कोई-न-कोई उपाय करना पड़ेगा।

"वह जाकर कहीं आत्महत्या न कर लें? मैं इस विचार-मात्र

से सिहर उठती हूँ। मेरा उस समय क्या होगा? नहीं, मैं उन्हें कहीं न जाने दूँगी। चाहे जैसे हो, उन्हें यहीं रोककर रखना होगा। जब मनुष्य चारो ओर से आपत्तियों से घिर जाता है, तब वह उनसे मुक्ति पाने का द्वार ढूँढ़ता है। उस समय सब आपत्तियों से निष्कृति का उपाय केवल एक होता है, और वह आत्मघात है। यह निराशा की चरम सीमा में पहुँचकर होता है। शायद ये ही भाव आजकल उनके हैं। मैं उन्हें सदैव चिंताओं से दुःखित देखती हूँ। उनका वह प्रेमावेग अब मुझे दृष्टिगोचर नहीं होता। उस आवेग के ऊपर पश्चात्ताप और चिंताओं की छाया देखने को मिलती है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने उसके कमरे में आकर पूछा—"क्या कुँवर साहब आज जाने के लिये कह रहे थे?"

मालती की विचार-धारा भंग हुई, और उसने उठकर कहा—"मुझे नहीं मालूम।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—"तुम मेरे पास बैठो, मैं कुछ बात करना चाहती हूँ।"

मालती उनके पास कुर्सी पर बैठ गई।

लेडी चंद्रप्रभा कहने लगीं—"मैंने रामसुख को गुप्त रूप से अनूपगढ़ का समाचार जानने के लिये भेजा था। आज वह आया है, और जो-जो हाल उसने बताए हैं, उनसे तो मुझे बड़ी आशंका होती है।"

मालती ने उत्कंठित हृदय से पूछा—"उसने क्या-क्या बातें बतलाई हैं?"

लेडी चंद्रप्रभा ने उत्तर दिया—"अनूपकुमारी नाम की क्या कोई स्त्री है, जिसे तुम्हारे ससुर ने घर में डाल लिया है?"

मालती ने सिर हिलाकर उत्तर दिया—"हाँ, वह तो बहुत दिनों से है। उसे आए हुए लगभग पंद्रह-बीस वर्ष हो गए।"

लेडी चंद्रप्रभा ने तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा—"तुमने अब तक यह भेद मुझे क्यों नहीं बतलाया ?"

मालती ने सिर झुकाकर कहा—"मैं समझती थी, शायद आपको मालूम है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"अगर मैं यह सब हाल जानती होती, तो तुम्हारा जीवन इस तरह नष्ट न करती। मैं क्या कहूँ, मुझे कहते शर्म मालूम होती है। कुँवर साहब के बारे में भी मैंने पूरा धोखा खाया। लोग सच कहते हैं, जितना अंधेर बड़े आदमियों के यहाँ होता है, उतना ग़रीबों के यहाँ नहीं। तुमने भी यह भेद अपनी मा से छिपा रक्खा।"

मालती उनका आशय समझ गई। उसका मुख लज्जा से लाल हो गया।

लेडी चंद्रप्रभा कहने लगीं—"मालती, तूने यह बड़ा अन्याय किया, और मुझे बड़ी विपद् में डाल दिया। क्या यह रोग कुँवर साहब को जन्म से है ?"

मालती ने रक्तिम मुख से कहा—"नहीं।"

लेडी चंद्रप्रभा उत्तर सुनकर कुछ संतुष्ट हुईं। उन्होंने धीरे-धीरे कहा—"इस विवाह के लिये तुम्हारे बाबूजी का ज़रा भी मन न था। वह तो किसी ग़रीब के लड़के से विवाह करना चाहते थे। मेरी ही अक़्ल पर पत्थर पड़ गए थे, जो अपनी ज़िद से यह संबंध स्थिर किया। इसका फल अगर मुझे भोगना पड़ता, तो कोई बात न थी, मगर उसका दंड तो तुझे सहन करना पड़ेगा। अब इसका क्या उपाय है ?"

मालती ने शांत स्वर में कहा—"धैर्य के साथ अपने कर्म का भोग भोगना।"

लेडी चंद्रप्रभा चुप रहीं। फिर थोड़ी देर बाद सोचकर कहा—"ख़ैर, इसका उपाय अभी हो सकता है। तुम्हारे बाबूजी से कह-कर उनका इलाज कराऊँगी। एक और बुरी ख़बर है।"

मालती ने जिज्ञासा-पूर्ण दृष्टि से देखते हुए पूछा—"वह क्या?"

लेडी चंद्रप्रभा ने उत्तर दिया—"तुम्हारे ससुर कुँवर साहब को गद्दी के अधिकार से वंचित करना चाहते हैं, और उस अनूपकुमारी के लड़के को, जो यहाँ कालविन स्कूल में पढ़ता है, अपना उत्तरा-धिकारी बनाना चाहते हैं।"

मालती ने सिर हिलाकर कहा—'हाँ, यह भी सत्य है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने रुष्ट होकर कहा—"ये सब बातें तो तुम्हें मालूम थीं, फिर आज तक कहा क्यों नहीं। तुम्हारा विवाह हुए तो लगभग एक साल हो गया। अगर सब बातें पहले से मालूम होतीं, तो अब तक कुछ-न-कुछ उपाय किया जाता। मालूम होता है, मा से प्रतिशोध लेने के लिये तूने अपना भेद नहीं बताया।" कहते-कहते उनके नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए।

आँसुओं को पोंछकर उन्होंने कहा—"इधर मैंने तुम दोनो में कोई वैसा उत्साह नहीं देखा, जैसा ऐसी अवस्था में देखने को मिलता है। मैं इसका कारण जानने के लिये चिंतित थी। इन्हीं दिनों मेरे पास एक गुमनाम पत्र आया, जिसमें इन सब बातों का ज़िक्र था, जो मैंने अभी तुमको बतलाई हैं। मैंने उन बातों की सत्यता जानने के लिये गुप्त रूप से रामसुख रसोईदार को भेजा है। वही एक विश्वासी और चतुर व्यक्ति है। वह अनूपगढ़ गया, और वहाँ से सब बातों का पता लगाकर आया

है। जब उस गुमनाम पत्र की सब बातें सत्य हो गईं, तो तुम्हारे पास आई हूँ। अभी तक मैंने तुम्हारे बाबूजी से कोई बात नहीं कही। तुम्हारा परामर्श लेकर मैं इस काम में हाथ डालना चाहती हूँ। समस्या बड़ी विकट है।"

मालती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

लेडी चंद्रप्रभा कहने लगीं—"मालती, जो कुछ मैंने तुम्हारे साथ किया है, उसका मुझे अफ़सोस है।"

मालती ने कहा—"आप वह पत्र तो दिखाइए, जो आपके पास आया था।"

लेडी चंद्रप्रभा ने एक लिफ़ाफ़ा मालती को दे दिया। वह उत्सुकता से उसे खोलकर पत्र पढ़ने लगी। पत्र इस प्रकार था—

"श्रीमतीजी,

आपने अपनी आयुष्मती पुत्री का विवाह-संबंध अनूपगढ़ के राजकुमार कामेश्वरप्रसादसिंह से किया है, किंतु अगर आप बुरा न मानें, तो मैं यह कहूँगा कि आपने उसका जीवन नष्ट कर दिया। प्रथम तो राजकुमार नपुंसक हैं, दूसरे वह शीघ्र ही गद्दी के अधिकार से वंचित कर दिए जायँगे, और उनके स्थान पर अनूपगढ़ के राजसिंहासन पर वर्तमान राजा सूरजबख़्शसिंह की रखैल (अनूपकुमारी) का पुत्र पृथ्वीसिंह आसीन होगा। अब आप ही कहिए, आपकी लड़की का जन्म नष्ट हुआ या नहीं?

"आप इन बातों की खोज करा लें। पहली बात की सत्यता तो आपको अपनी पुत्री से दरयाफ़्त करने पर प्रकट हो जायगी। दूसरी बात के निर्णय के लिये आप कोई चतुर व्यक्ति अनूपगढ़ भेज दें, वह आपको सत्य हाल बता देगा।

"जब आपको सब बातें सत्य प्रमाणित हो जायँ, और आपकी ५ हो कि अपनी पुत्री को सुखी करें, तो कृपया मुझे निम्न-

लिखित पते पर लिखें, मैं सेवा में उपस्थित होऊँगा। मैं इन दोनो त्रुटियों को दूर करने की शक्ति रखता हूँ। राजकुमार कामेश्वरप्रसाद-सिंह का रोग एक दिन में नष्ट कर सकता हूँ, और उन्हें गद्दी पर आसीन करा सकता हूँ। विचार तथा परामर्श करने के पश्चात् लिखें।

आपका एक तुच्छ सेवक

पत्र-व्यवहार का पता—

रामलाल, केयर ऑफ़् पोस्टमास्टर, लखनऊ"

मालती ने विचारते हुए कहा—"इस व्यक्ति को सब बातें मालूम हैं, यह अवश्य कोई क्षमताशाली व्यक्ति मालूम होता है। कहीं यह कोई जाल न हो। वह कह रहे थे कि उन्हें विष खिलाने का प्रयत्न हो रहा है, इसी भय से भागकर वह यहाँ आए थे। इस रामलाल-नामक व्यक्ति को तो बुलाना होगा। अम्मा, आप बाबूजी से सब हाल कहकर उनका भी परामर्श ले लें। आजकल ऐसे-ऐसे अनेक ठग भी मिलते हैं।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"मैं भी इसी हैस-बैस में पड़ी हूँ। अभी जाकर तुम्हारे बाबूजी से सब हाल सविस्तर कहती हूँ, और वह जैसा कहेंगे, करूँगी।"

यह कहकर वह शीघ्रता से मालती के कमरे से चली गईं।

मालती अनेकानेक विचारों में मग्न हो गई। उसके सामने एक नवीन आशा का प्रदीप प्रज्वलित हो उठा, जिसमें पुरानी मलिनता का अंधकार अपने आप धीरे-धीरे नष्ट होने लगा। उसने ठंडी निःश्वास के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के चित्र की ओर देखा। आज उसे उस चित्र में एक मनोमोहकता मालूम हुई। वह आश्चर्य से मुग्ध होकर उस चित्र की ओर देखने लगी। उसे नहीं मालूम हुआ

कि यह परिवर्तन चित्र का नहीं, बल्कि उसके हृदय का है, जो आशा की क्षीण रेखा से घटित हुआ है। आशाओं और निराशाओं के बवंडर में थपेड़े खाता हुआ, हाय रे कमज़ोर मनुष्य ! तेरी समग्र शक्तियों का विकास इसी निर्बलता में सन्निहित है।

मालती अपना भविष्य सोचने लगी।

उस दिन मालती बड़ी प्रसन्न थी। डूबते हुए को एक तिनका मिल जाने से कुछ सहारा हो ही जाता है, और उसे तो अपने दोनो महान् रोगों की ओषधि मिलने की आशा बँध गई थी। जब उसे अपनी मा लेडी चंद्रप्रभा से मालूम हुआ कि उसके पिता ने उसी समय रामलाल-नामक व्यक्ति को बुलाने के लिये पत्र लिख दिया है, वह प्रसन्नता से फूली न समाई। उसने वह हाल कुँवर कामेश्वरप्रसाद से भी न कहा, क्योंकि वह अकस्मात्, सब ठीक हो जाने पर, उसका भेद प्रकट करना चाहती थी। शाम को उसने अपनी दोनो बहनों से सिनेमा चलने को कहा। इन्होंने कुँवर कामेश्वरप्रसाद से चलने की बहुत ज़िद की, परंतु वह किसी प्रकार राज़ी नहीं हुए। उनके हृदय में कहीं जाने का उत्साह न था। मालती ने भी विशेष आग्रह नहीं किया, क्योंकि वह आज अपना आनंद भंग करना नहीं चाहती थी। इसके अतिरिक्त वह, उनसे कुछ देर के लिये दूर रहकर, अपनी सुखमय कल्पना की ऊँची उड़ान में विहार करने के लिये लालायित थी। वह मन-ही-मन उस दिन की सुखद कल्पना में विभोर थी, जब उसके पति पूर्ण रूप से स्वस्थ होकर अनूपगढ़ की गद्दी पर विराजेंगे। एक क्षीण आशा की ज्योति ने उसकी तथा उसके विचारों की कायापलट कर दी थी।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद अपने को एकांत में पाकर अपना कर्तव्य विचारने लगे। वह सोचने लगे—"संसार में जब मेरा जन्म हुआ था, तब मेरे शुभागमन में अनूपगढ़ में घर-घर मंगलाचार हुआ

था, और उस दिन अनूपगढ़ का भावी स्वामी जानकर मेरा स्वागत हुआ था। मेरे दोनो हाथों की मुट्ठियाँ बँधी हुई थीं। लोग अनुमान करते थे कि वे वैभव और ऐश्वर्य को दबाए हुए हैं। मेरे पिता इतना प्रसन्न हुए थे कि उन्होंने पहलेपहल ख़बर देनेवाले को अमूल्य मोतियों की माला पुरस्कार में दी थी। न-मालूम कितने समारोह से कई दिनों तक उत्सव हुआ था।

"इसके बाद मैं ज्यों-ज्यों बढ़ने लगा, त्यों-त्यों मेरे आदर और सम्मान में वृद्धि होती गई। मैं पिता की आँखों की ज्योति था, वह मुझे पल-भर के लिये अपने पास से जुदा न करते थे। वह दिन मुझे अच्छी तरह याद है, जब मैं पढ़ने के लिये पहलेपहल स्कूल भेजा गया था। वह कई दिनों तक ख़ुद मोटर में मुझे बैठाकर स्कूल ले गए थे, और फिर अपने साथ ले आए थे। उन्हें किसी पर विश्वास न था। मेरे खाने-पीने का प्रबंध सदा अपने सामने कराते थे, और रात्रि में अपने साथ लेकर सोते थे। हाय! वे कैसे सुख और आनंद के दिन थे।

"न-मालूम कहाँ से पुच्छल तारा की भाँति अनूपकुमारी का उदय हुआ। मेरे सुखों का अंत हो गया, मेरे आदर की इतिश्री हो गई। जब उन्होंने मुझे कालविन स्कूल में भेजा था, तब उनके हृदय में उतना प्रेम नहीं था, जितना मैंने पहलेपहल उस दिन देखा था, जब मैं अपने शहर के स्कूल में भेजा गया था। इस बार तो केवल कर्तव्य-पालन था, और वह भी दूर रहने से उत्तरोत्तर घटता ही गया। किंतु मा के प्रेम और सत्कार ने वह कमी किसी तरह पूरी कर दी थी। अम्मा ख़ुद उसी दुख से दुखी थीं, जिससे मैं था। पिताजी ने पुराने महल में आना बिलकुल बंद कर दिया था। मैं छुट्टियों में घर जाता, किंतु उनके दर्शन न होते थे। अम्मा मुझे किसी भय से अनूपकुमारी के महल में जाने नहीं देती थीं। यदि

किसी दिन भाग्य-वश उनके दर्शन हो गए, तो केवल दो-एक प्रश्न पूछकर फिर चुप हो जाते थे, जैसे मैं कोई बेगाना होऊँ। मैं वह पीड़ा मन-ही-मन बरदाश्त करता।

"मैं इस निरादर सहने का अभ्यस्त हो गया था। अम्मा भी अनेक प्रकार से मेरे उद्विग्न मन को शांत करतीं, और सदैव पितृ-भक्त रहने का उपदेश देतीं। पृथ्वीसिंह के जन्म के पश्चात् वह मेरा अनादर तक करने लगे। अब असह्य हो उठा, किंतु चुप होकर सब सहना पड़ा। मेरे ख़र्च वग़ैरह में भी कमी होनें लगी। मेरे साथी सभी ताल्लुक़ेदारों के लड़के थे, जिन्हें घर से ख़र्च करने के लिये अच्छी रक़में मिलती थीं। मैं उनमें सबसे बड़े ताल्लुक़ेदार का एकमात्र पुत्र था, किंतु उनके बराबर ख़र्च करने के लिये मेरे पास पैसा न था। इस विषय को लेकर वे मेरा मज़ाक़ उड़ाते, और मुझे सब सहन करना पड़ता था।

"जैसे-तैसे कालविन स्कूल से छुटकारा मिला। कॉलेज में प्रवेश किया। यहाँ की दुनिया निराली थी, किंतु यहाँ कुछ दम लेने का मौक़ा मिला। किसी तरह लस्टम-पस्टम मेरे दिन व्यतीत होने लगे। पिताजी का व्यवहार दिन-पर-दिन रूक्ष होता गया। अम्मा कभी-कभी मुझे सांत्वना देने के लिये कहतीं—'तू क्यों घबराता है, अनूपगढ़ की गद्दी पर तू ही एक दिन बैठेगा, और मैं राजमाता कहलाऊँगी। उस अधिकार से न कोई तुझे और न मुझे वंचित कर सकता है।' एकमात्र इसी आशा की क्षीण रेखा उनके धैर्य का बाँध रोके रहती थी।

"इसी आशा को हृदय लगाए हमारे दिन व्यतीत होने लगे। यौवन का आगम होने लगा, और हृदय में अनेक स्वर्ण-आशाएँ उदय होकर मेरे मन की कादरता हरने लगीं। मैं उमंगों के बोझ से दबा हुआ अपने दूसरे कष्टों को भूल गया। मेरे अवयवों में नए

जीवन का संचार होने लगा, और अंग-प्रत्यंग प्रदीप्त होकर, आकांक्षाओं के साथ हास-परिहास में लिप्त होकर विनोद करने लगे। मेरे विवाह के संबंध भी चारो ओर से आने लगे। मैं उनके समाचार सुनकर प्रसन्नता के साथ आशाओं के क़िले बनाने लगा। इसी समय मालती के साथ विवाह-संबंध स्थिर हुआ। मैं इन्हें पहले ही से जानता था। मेरा प्रत्येक अवयव स्फूर्ति से उमँग उठा। मैं इससे प्रेम करने लगा, और तिलक आदि हो जाने पर तो मैं उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा, जब मालती को अपना कहकर पुकार सकूँगा।

"यही समय था, जब अचानक यह वज्रपात मेरे ऊपर हुआ। एक दिन मुझे सहसा मालूम हुआ कि मैं पुरुषत्व-हीन हूँ। जिस शक्ति से मैं अभी तक ओत-प्रोत था, उसका सहसा अभाव कैसे हो गया। मैं ज्ञान-शून्य होकर इसका कारण विचारने लगा। यह भयानक शर्म की बात थी। किससे कहूँ? इधर कर्तव्य की पुकार, और उधर मालती का आकर्षण, उसके प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा! मैं कुछ स्थिर न कर सका। जीवन का वह काल कितना भयानक था!

"परंतु कर्तव्य की विजय हुई। मैंने पत्र द्वारा पिताजी को सब समाचार स्पष्ट लिख दिया, और मालती का जीवन नष्ट न करने का संकल्प किया। किंतु उनकी समझ में यह बात न आई, और मुझे नपुंसक कहने में अपनी मान-हानि समझने लगे। उन्होंने तो वही कहा और किया, जो अनूपकुमारी और बाबू मातादीन ने आदेश दिया। इस समय वह पूर्णतया उनके हाथ के खिलौने थे। मालती का जीवन बलिप्रदान करने के लिये वह सन्नद्ध हो गए। मुझमें इतना नैतिक साहस न था कि मैं उनका विरोध करूँ। इसके ...ि... मालती के प्राप्त करने का लोभ इतना प्रबल था कि उसे

संवरण करना मेरे लिये असंभव हो गया था। उस प्रतिरोध में मेरा मन मुझे वारंवार डावाँडोल कर रहा था, यद्यपि मुझे यह विश्वास था कि मेरा रोग अधिक दिनों तक न रहेगा। मैं मालती को हाथ से खोने के लिये तैयार न था। अंत में मालती के साथ मेरा पाणि-ग्रहण हो गया।

"पिताजी ने अपनी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनाए रखने के लिये उसे भय-प्रदर्शन किया, और मेरा भेद प्रकट न करने की प्रतिज्ञा करवाई। इसमें अनूपकुमारी तथा बाबू मातादीन का स्वार्थ-साधन था, क्योंकि मेरा भेद मेरे ससुर पर प्रकट हो जाने से वह मेरा कुछ उपचार या कोई दूसरा उपाय करते। उनको उलटा-सीधा समझाकर वह मार्ग भी बंद कर दिया। यह कहावत कितनी सत्य है कि 'आपदाएँ कभी अकेले नहीं आतीं।'

"मालती ने मुझे अपराधी ठहराया, और मुझे उसका मौन तिरस्कार, मूक घृणा, तीव्र उपेक्षा सब सहन करना पड़ा। मैंने वह काम किया है, जिससे उसे जन्म-भर पछताना पड़ेगा। मैंने उसका स्त्रीत्व नष्ट कर दिया, उसके जीवन की आशाओं और उमंगों को पद-दलित कर दिया। उसका जीवन ही निरर्थक हो गया है। यह सब मेरे अपराध से घटित हुआ है। मैं ही इसका उत्तरदायी हूँ।

"मालती के सामने जब मैं आता हूँ, तो मेरा मस्तक शर्म से नीचा हो जाता है। मैं उससे प्रेम-प्रतिदान की आशा करता हूँ, और उसके लिये लालायित भी हूँ, मैं क्या इसके योग्य हूँ? उत्तर मिलेगा नहीं। पुरुषत्व से हीन होकर मुझे क्या अधिकार था कि उसका मैं जीवन नष्ट करूँ। उसके संसार के समस्त सुखों पर मैंने पानी डाल दिया है, और फिर भी बेहयाई के साथ कहता हूँ कि मुझे प्यार करो। मैं कितना नीच हूँ, कितना स्वार्थी हूँ, कितना लोलुप हूँ, कितना बड़ा पिशाच हूँ।

"फिर भी उसके हृदय की महत्ता देखो। वह कितनी उच्च और कितनी सहृदय है। उसने बिना उफ़् के मेरे सब अत्याचारों को मौन होकर सहन किया है, और प्रतिदान में क्या दिया, अपना प्रेम, अपना आदर! जितनी उसके हृदय में उच्चता है, उतनी ही मेरे हृदय में पशुता। देवी और पिशाच का मिलन क्या इस जगत् में संभव है? मैं उसकी सहृदयता का अनुचित लाभ उठा रहा हूँ, जो मेरे मनुष्यत्व से बाहर है।

"अच्छा, यदि पश्चिम में ऐसी घटना घटित होती, तो क्या होता? इस भेद का पता चलने के दूसरे दिन ही अदालत में तलाक़ मिलने का दावा दायर हो जाता। वहाँ पति मेरी तरह यह प्रत्याशा कदापि न करता कि उसकी स्त्री उससे प्रेम करे। यह धींगाधींगी इसी हिंदू-समाज में देखने को मिलती है, जहाँ स्त्रियाँ ग़ुलाम हैं। मालती की निष्कृति का क्या उपाय है? आजन्म उसे अपनी दासता में बाँध रखना सर्वथा अन्याय है। इतने दिनों तक उसे कुढ़ाया, यही बहुत है। जैसे उसने मेरे प्रति अपना कर्तव्य पालन किया और करती है, उसी प्रकार मेरा भी उसके प्रति कुछ कर्तव्य है।

"मैं जब उसे देखता हूँ, तब मेरे हृदय में एक हूक उठती है। उसके हास्य के पीछे एक करुण विषाद की छाया दिखाई पड़ती है, जो उसकी मूक वेदना का दूत बनकर मुझे परिताप की भीषण ज्वाला में निरंतर दग्ध करती रहती है।

"अपने वैवाहिक बंधन से उसे मुक्त करने का क्या उपाय है? तलाक़ के संबंध में कुछ विचार करना असंभव है। वह हमारे हिंदू-क़ानून में विहित नहीं माना गया है। तब केवल एक उपाय है, वह है आत्महत्या। अपने जीवन का अंत कर उसके जीवन का प्रारंभ करूँ। आजकल इस हिंदू-समाज में विधवा-विवाह धर्म-विहित हो

गया है; और यत्र-तत्र होने भी लगे हैं। मालती का दूसरा विवाह इसी दशा में हो सकता है, और इसी उपाय द्वारा वह सुखी भी हो सकती है। मैंने जब कभी इस समस्या पर विचार किया है, तो सदैव इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। आत्मघात के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय उसके छुटकारे का नहीं। तब मैं क्यों न आत्महत्या कर लूँ !

"इस संसार में मेरे लिये अब कौन-सा आकर्षण अवशेष है। पिता का सुख नहीं, राज्य की आशा नहीं, केवल एक माता का आकर्षण है। उस अभागिनी का मेरे मरने से सर्वस्व नष्ट हो जायगा। परंतु क्या करूँ, मेरे साथ उन्हें भी यह दुख भोगना पड़ेगा। मेरे-जैसे पापी को अपने गर्भ में रखने का प्रायश्चित्त करना ही पड़ेगा।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद की आँखों से अविरल अश्रु-धारा बहने लगी।

थोड़ी देर बाद वह फिर कहने लगे—"क्या मालती मेरे मरण से सुखी होगी? हृदय को विश्वास तो नहीं होता। मैंने जब आज जाने को कहा, तो उसके नेत्रों में आँसू भर आए थे। वह मुझे अवश्य प्राणों से अधिक प्यार करती है। क्या वह मेरा वियोग सहन कर सकेगी? समय सब घावों को भरनेवाला है। कालांतर में यह घाव भी भर जायगा। यों तो कोई मनुष्य यदि शुक पालता है, और जब वह मरता है, तो उसे दुख होता है। इतने दिनों तक साथ रहने का कुछ प्रभाव तो पड़ेगा ही। किंतु इससे उसकी निष्कृति तो हो जायगी। उसे दुबारा विवाह करने का अवसर तो प्राप्त होगा, उसका नारी-जीवन तो सफल होगा। बस, अब इसी अंतिम उपाय का आज अवलंब करूँगा। अब यह दुख मुझसे सहन नहीं होता।

"मनुष्य एक क्षणिक आवेश में आत्मघात करता है। आवेश समाप्त हो जाने पर उस घातक इच्छा का भी अंत स्वतः हो जाता है। मैं इस समय उसी आवेश में हूँ। यदि विचार करूँगा, तो मन में कायरता उत्पन्न होगी, और ये विचार तिरोहित हो जायँगे, साहस जवाब दे देगा। नहीं--नहीं, मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। मैं अवश्य ही आज वह अपकर्म साधन करूँगा। मेरी मृत्यु से मेरे पिता को हर्ष होगा, उनकी एक बड़ी भारी आपदा टल जायगी, और मेरी प्राणोपम मालती भी सर्वथा सुखी होगी। मेरे पास इस समय उग्र विष है, जो अम्माजी अनूपकुमारी की ख़ास अलमारी से लाई थीं, और शायद जो मुझे ही देने के लिये तैयार हुआ था। इस समय भी वह मेरे पास मौजूद है। अंतिम अवलंब निश्चित करके इसे अपने पास छिपा रक्खा है। भगवान् की यही इच्छा है, उनकी इच्छा पूर्ण हो। अंतिम समय मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि वह मालती को सुखी करें।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने अपना सूट-केस खोलकर वह शीशी निकाली, जिसे रानी श्यामकुँवरि अनूपकुमारी की अलमारी से निकाल लाई थीं। उन्होंने शीशे के गिलास में उसकी पाँच बूँदें डालकर पानी मिलाया, जिससे गिलास का सारा जल लाल हो गया। वह उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगे। कुछ विचार-कर उन्होंने शीघ्रता से एक काग़ज़ पर लिखा कि वह जान-बूझकर अपने होश-हवाश में आत्मघात कर रहे हैं, जिसके लिये वही उत्तरदायी हैं, दूसरा नहीं। इस आशय की एक विज्ञप्ति लिखकर उसके नीचे अपना हस्ताक्षर कर दिया, और दूसरे क्षण वह गिलास उठाकर पी गए।

पीते ही उनकी नाड़ियों में तीव्र गति से रक्त-संचालन होने लगा। मस्तिष्क घूमने लगा। शरीर के तंतु खिंचने लगे। वह

अपनी मृत्यु समीप जानकर पलँग पर लेट गए। उनकी आँखें बंद होने लगीं, और सिर बड़े वेग से चक्कर खाने लगा। वह ईश्वर का स्मरण करने लगे। दैव का विधान मुस्किराने लगा। वह अपने प्राण निकलने की प्रतीक्षा करने लगे।

---

(११)

मालती बड़े उत्साह से सिनेमा देखने गई थी, और वहाँ दूसरी सखियों से मिलाप हो जाने से वह शाम बड़े ही आनंद से व्यतीत हुई थी। उसी से संलग्न 'स्टोराँ' में एक छोटे भोज का प्रबंध हो गया था। हास्य तथा आमोद-प्रमोद से उत्फुल्ल वह लगभग दस बजे घर वापस आई।

उसकी बहनों ने आकर, लेडी चंद्रप्रभा को घेरकर सिनेमा का सब हाल विस्तार-पूर्वक कहना शुरू किया। मालती प्रसन्नता से उमँगती हुई अपने कमरे की ओर चली, और यह कहती गई कि वह भोजन नहीं करेगी।

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"कुँवर साहब ने आज शाम को ही, कहला दिया था कि वह भोजन नहीं करेंगे। अब फिर पूछ लेना शायद अब तबियत अच्छी हो गई हो।"

कामिनी ने पूछा—"देख आऊँ, अब जीजा साहब की कैसी तबियत है?"

लेडी चंद्रप्रभा ने भृकुटियाँ चढ़ाते हुए कहा—"नहीं, तुम्हारे जाने की ज़रूरत नहीं। मालती आप पूछ लेगी। तुम लोग अब जाकर सो जाओ।"

मालती ने कमरे का द्वार बंद पाया। वह ज़रा ठहरकर सुनने लगी कि भीतर क्या हो रहा है। उसे कुछ सुनाई न दिया, केवल घोर निस्तब्धता छाई हुई थी।

मालती द्वार खोलकर अंदर प्रविष्ट हुई। सामने शय्या पर

कुँवर कामेश्वरप्रसाद सिर से पैर तक ओढ़े हुए लेटे थे। उसने भीतर से द्वार बंद कर लिया।

उन्हें असमय सोते देखकर उसका हास्य स्रोत स्तंभित हो गया। वह धीमे पदों से आगे बढ़कर, उनके सिरहाने खड़ी होकर उनकी निःश्वासों का शब्द सुनने लगी।

उसने मधुर कंठ से पुकारा—"क्या सो गए?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कोई उत्तर नहीं दिया।

मालती ने उनके सिर से शाल हटाते हुए कहा—'आज अभी, कैसे सो गए। कैसी तबियत है?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद की आँखें अंगारों की भाँति लाल थीं, और चेहरा भी रक्त-वर्ण था। मालती को देखते ही वह उन्मत्त की भाँति उठकर बैठ गए, और मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे।

मालती उनके गले से लिपट गई, और पूछा—"क्यों, कैसी तबियत है?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने उस आवेश के साथ, जो कामुक पुरुष में होता है, जब वह अतृप्त वासना और लालसा से सराबोर होता है, मालती को अपने हृदय से लगा लिया। इसके पहले मालती ने वैसा आवेश कभी नहीं अनुभव किया था। वह बड़ी अधीरता से उसे हृदय से लगाकर उसके कपोलों पर तप्त प्रेम-चिह्न अंकित करने लगे। मालती उनमें यह परिवर्तन देखकर चकित रह गई।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने अधीरता से कहा—"प्रियतमे, आज मेरा नवजन्म हुआ है। मैं आज सहसा अपनी खोई हुई शक्ति पा गया। आज तुम मुझे कितनी सुंदरी, कितनी आकर्षक देख पड़ती हो। मेरे मन में भावों का सिंधु उमड़ रहा है। मैं उसी में बहा जा रहा हूँ। प्राणेश्वरी, मालती, मेरे हृदय की पूज्य देवी!"

यह कहकर उन्होंने उत्कट काम-वासना से पीड़ित होकर उसे

अपने हृदय से लगा लिया। वह भी सिमिटकर उनके हृदय से लग गई। स्त्री को पुरुष की वासनाओं की असलियत समझने में देर नहीं लगती। वह आनंद से उमँगकर उनके प्रेम-चिह्नों का प्रत्युत्तर देने लगी। वास्तव में यही उसकी सुहाग-रात थी।

उसे यह ध्यान न रहा कि वह इस परिवर्तन का कारण पूछे। वह तो स्वयं अधीर होकर, उनके प्रवाह में अपनी सुध-बुध खोकर बहने लगी। उसकी आँखों से अतृप्त वासना की मलिनता निकलने लगी।

❀ ❀ ❀

मालती और कुँवर कामेश्वरप्रसाद को जब होश आया, तो उस समय रात्रि ज़्यादा बीत गई थी। कमरे की दीवार-घड़ी मधुर गति के साथ दो बजा रही थी। मालती की आँखें, जो आज के पहले कुँवर कामेश्वरप्रसाद के सामने संकुचित न होती थीं, आज अपने आप उनकी ज्योति से छिपने का प्रयत्न करती दिखलाई देती थीं। उन्होंने उसे पुनः आलिंगन-पाश में बद्ध करते हुए कहा—"प्रियतमे, आज ईश्वर मुझ पर सदय हुआ है। भगवान् जब प्रसन्न होता है, तब विष भी अमृत हो जाता है।"

मालती ने लज्जा से उनके वक्षःस्थल में मुख छिपाते हुए कहा—"यह कैसे? मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"मैं क्या बताऊँ, मैं स्वयं हैरान हूँ। दरअसल बात यह है कि तुम्हारे प्रेम ने मुझे मरने नहीं दिया।"

मालती ने चकित होते हुए पूछा—"आत्महत्या! यह क्या कह रहे हो?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने हँसकर कहा—"हाँ, मैंने आज शाम को विष-पान किया था।"

मालती उसी अस्त-व्यस्त अवस्था में उठकर बैठ गई, और विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देखने लगी।

उन्होंने हँसते हुए कहा—"हाँ, प्रिये, यह सत्य है।"

मालती ने क्रुद्ध होकर पूछा—"यह क्यों ?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने उत्तर दिया—"हिंदू-समाज में तलाक़ की प्रथा न होने से तुम्हारी निष्कृति का द्वार न था। उसका केवल एक उपाय था कि मैं आत्मघात करके तुम्हें मुक्त कर दूँ।"

मालती ने आवेग के साथ उनका मुख पकड़ते हुए कहा—"तुम्हें मेरी क़सम है, ऐसी बातें मत कहो।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"मैं तो पिछली घटना वर्णन करता हूँ। आज एकांत पाकर कई प्रकार के विचार उठने लगे, और अंत में ऊबकर मैंने आत्मघात करना ही निश्चित किया। मैं तुम्हें बतला चुका हूँ कि अम्माजी एक दिन अनूपकुमारी के महल में गई थीं, तो उन्हें कुछ पुराने पत्र और एक छोटी शीशी मिली थी, जिसमें लाल रंग की कोई दवा थी। हमने उस दवा की परीक्षा की थी, आधा बूँद एक दिन एक कुत्ते को खिलाया था। कुत्ता बड़ी देर तक छटपटाया, और फिर पागल हो गया, किंतु मरा नहीं। पागल होने पर उसे मरवा डाला गया था। वही दवा मेरे पास थी। मैंने उसकी पाँच बूँदें पानी के साथ पी लीं, और उस मेज़ पर इसी मज़मून का एक पत्र भी लिखकर रख दिया, जिसमें कोई दूसरा विपद् में न पड़े। वह दवा खाकर मैं लेट गया। मेरी नाड़ियों में अपूर्व शक्ति दौड़ने लगी—स्फूर्ति से मैं व्याकुल होने लगा। अवश होकर लेट गया, और तुम्हारी प्रतीक्षा करने लगा।"

मालती ने मधुर मुस्कान-सहित उनके हृदय में अपना मुख छिपाते हुए कहा—"यह भगवान् की कृपा है। वास्तव में आज का

दिन मेरे परम सौभाग्य का था। आज सुबह अम्माजी को तुम्हारा सब भेद अनायास प्रकट हो गया था।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने भय-विह्वल स्वर में पूछा—"उन्हें कैसे मालूम हुआ ?"

मालती ने उनके पास खिसकते हुए कहा—"उनके पास एक गुमनाम पत्र आया था, जिसमें अनूपगढ़ के सब रहस्यों का विस्तार-पूर्वक वर्णन था, और यह भी लिखा था कि रामलाल-नामक व्यक्ति तुम्हारा रोग नष्ट कर सकता और अनूपगढ़ का राज्य भी दिला सकता है। आज बाबूजी ने उसे बुलाने के लिये पत्र लिख दिया है। शायद कल वह किसी समय आ जाय।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"तो क्या बाबूजी को भी सब हाल मालूम हो गया ?"

मालती ने ससंकोच कहा—"हाँ, किंतु अब कोई हर्ज नहीं। इसी भय से मैंने तुमसे इसका कोई ज़िक्र नहीं किया था। उस पत्र से मुझे यह आशा हो गई थी कि तुम शीघ्र अच्छे हो जाओगे, क्योंकि उससे लिखनेवाले की क्षमता का पता चलता था। मैं आनंद में विभोर सिनेमा देखने गई, और जब वापस आई, तो······"

इसके आगे वह न कह सकी। उसने उनके वक्षःस्थल में अपना मुख छिपा लिया।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने हँसकर पूछा—"कहो, रुकती क्यों हो ?"

मालती की तप्त निःश्वासें उनके हृदय में पहुँचकर उनकी वासना को प्रदीप्त कर रही थीं। प्रेम का सहचर मीनकेतन अपने पुष्प-धन्वा में फूलों का बाण चढ़ाने लगा। उन्होंने व्याकुल होकर, उसे पूर्ण शक्ति से दबाकर हृदय से लगा लिया। कामदेव अपने

दो शिकारों को असहाय देखकर विजय से मुस्किराने लगा। उसके हृदय में दया का संचार नहीं हुआ, वह लक्ष्य साधन करके पुनः उनकी ओर देखने लगा।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने अस्फुट स्वर में कहा—"अच्छा, यह तो कहो कि तुम मुझे कितना प्यार करती हो?"

मालती ने अर्ध प्रस्फुटित नेत्रों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"अपने हृदय से पूछो, वही इसका उत्तर देगा।"

उन्होंने हँसकर पुनः उसे हृदय से लगा लिया, और उसके सिर को सप्रेम सूँघने लगे।

कामदेव पुनः मुस्किराने लगा।

मालती ने प्रत्युत्तर में प्रेम-चिह्न अंकित करते हुए कहा—"अच्छा, तुम बतलाओ कि तुम मुझे कितना प्यार करते हो?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने जड़ित कंठ से कहा—"अपनी आत्मा से पूछो।"

दोनो हँसकर पुनः एक दूसरे से आबद्ध हो गए।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने पूछा—"जैसे मैंने विष-पान तो कर ही लिया था, अगर कदाचित् मर जाता, तो तुम क्या करतीं?"

मालती ने अभिमान से दूर हटते हुए कहा—"जाओ, फिर तुम वैसी हृदय-विदारक बातें करते हो।"

उन्होंने उसे अपनी ओर घसीटते हुए कहा—"नहीं, तुम्हें बतलाना होगा।"

मालती ने रुद्ध स्वर में कहा—"मैं भी आत्मघात कर लेती। क्या तुम समझते हो कि मैं दूसरा विवाह करती। असंभव; नितांत असंभव। हिंदू-रमणियाँ कभी दुबारा पाणिग्रहण नहीं करतीं। इनका विवाह जन्म में केवल एक बार होता है। हिंदू-धर्म की

पवित्रता कभी नष्ट नहीं होगी। जब तक संसार में एक भी हिंदू-स्त्री जीवित है, तब तक उसकी उच्चता नष्ट नहीं होगी।"

उसके मुख पर दैवी ज्योति की छाया पड़कर उसे भुवनमोहन सौंदर्य प्रदान करने लगी। कुँवर कामेश्वरप्रसाद उसकी ओर मुग्ध दृष्टि से देखने लगे।

---

(१२)

सर रामकृष्ण ने तीक्ष्ण दृष्टि से आगंतुक की ओर देखते हुए कहा—"मुझे याद आता है, मैंने आपको कहीं देखा है।"

नवागंतुक व्यक्ति ने उत्तर दिया—"जी हाँ, कमतरीन पहले अनूपगढ़ का दीवान था।"

सर रामकृष्ण अपनी कुर्सी से उछल पड़े—"क्या आपका नाम बाबू मातादीनसहाय है?"

बाबू मातादीनसहाय ने उत्तर दिया—"जी हाँ, कमतरीन को इसी नाम से पुकारते हैं।"

सर रामकृष्ण ने कुछ कर्कश कंठ से कहा—"आपके आने का क्या कारण है?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"आपने मुझे स्मरण किया था, इसलिये हाज़िर हुआ हूँ। इसके अतिरिक्त मैं हुज़ूर के घराने का नमकहलाल नौकर हूँ।"

सर रामकृष्ण ने अपने मन का भाव दबाते हुए कहा—"यह तो आपको मालूम होगा, मैं ख़ुशामद-पसंद नहीं हूँ। मुझे स्मरण नहीं आता कि मैंने कब आपको बुलाया है।"

बाबू मातादीन ने उनका पत्र, जो उन्होंने रामलाल-नामक व्यक्ति को लिखा था, उनके सामने रखते हुए कहा—"यह देखिए, आज अभी दो घंटे पहले मुझे मिला है। यह आपके हस्ताक्षर हैं। हाँ, यदि मेरी आवश्यकता हुज़ूर को न हो, तो मैं माफ़ी चाहता और वापस जाता हूँ।"

यह कहकर वह चलने के लिये उद्यत हुए।

सर रामकृष्ण ने उन्हें रोकते हुए कहा—"ठहरिए। यह क्या मामला है। मैंने रामलाल-नामक व्यक्ति को बुलाया था, न कि आपको। उसके नाम का पत्र आपको कैसे मिल गया?"

बाबू मातादीन ने आत्मसंतुष्टि से हँसते हुए कहा—'यदि कमतरीन का नाम ही रामलाल हो, तब तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। मनुष्य कभी-कभी अपने उपनाम रख लिया करते हैं।"

यह कहकर उन्होंने हँसती हुई आँखों से उनकी ओर देखा।

सर रामकृष्ण की भृकुटियाँ चढ़ गईं। वह किसी मनुष्य को अपने ऊपर हावी होते नहीं देख सकते थे। उनकी आत्मा इसके विरुद्ध आंदोलन करने लगती। बाबू मातादीन के अलाप का तरीक़ा किसी क़दर बे-अदब और बे-तकल्लुफ़ाना था, जिसे वह बरदाश्त न कर सके।

उन्होंने भ्रू कुंचित करके कहा—"तो इसके यह अर्थ हैं कि आप ही ने वह पत्र लिखा था, जो लेडी साहब के पते से भेजा था?"

बाबू मातादीन ने अपना सिर नत करके उत्तर दिया—"जी हाँ, यह गुस्ताख़ी तो इसी कमतरीन ने की है, और महज़ पुराने नमक का ख़याल करके।"

सर रामकृष्ण ने प्रश्न-भरी दृष्टि से पूछा—"आप बार-बार किस नमक का ज़िक्र करते हैं। जहाँ तक मुझे याद है, आप कभी मेरे पास नौकर नहीं रहे।"

बाबू मातादीन ने कहा—'हुज़ूर का फ़रमाना दुरुस्त है; यह सौभाग्य तो कभी इस हक़ीर को नहीं मिला, लेकिन हुज़ूर की साहबज़ादी का तो पुश्तैनी नौकर हूँ। जब उनकी शादी अनूपगढ़ के राजघराने में हुई है, तो मैं उनका नौकर हो चुका।"

सर रामकृष्ण ने कुछ सोचते हुए कहा—"हूँ।"

उन्हें न बोलते देखकर बाबू मातादीन ने कहा—"इधर कई ऐसी घटनाएँ हुई हैं, जिनसे हुज़ूर को मेरे ऊपर सहसा विश्वास नहीं हो सकता,' क्योंकि उसका संबंध मुझसे जोड़ा जाता है। कई लोगों का और विशेषकर कुँवर साहब का यह यक़ीन है कि मेरी साज़िश से चंद घटनाएँ अनूपगढ़ में घटी हैं, मसलन् अनूपकुमारी-नामक एक रखैल स्त्री के पुत्र पृथ्वीसिंह को गद्दी पर बैठाने का यत्न करना और रानी साहबा को वहाँ से हटा देना तथा उनकी साहबज़ादियों का विवाह न कराना; परंतु मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि मेरा उनसे अणु-मात्र संबंध न था। वह सब अनूप-कुमारी की करामात है। मैं अपनी क्षीण आवाज़ से बराबर इसका प्रतिरोध करता था, मगर मेरी कभी सुनी नहीं गई। यह तो आप जानते ही हैं कि नक़्क़ारख़ाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है। मैंने जब इसका बहुत विरोध किया, और राजा साहब ने मेरी बात पर कुछ ध्यान न दिया, तो मेरे पास केवल एक उपाय था, वह था इस्तीफ़ा पेश करना। मैंने अपना इस्तीफ़ा पेश कर दिया, और लखनऊ आकर रहने लगा। लेकिन पुराने नमक ने जोश मारा, और पुश्तैनी नौकर होने से अपने मालिक का अमंगल न देख सका, इसलिये हुज़ूर की ख़िदमत में हाज़िर हुआ कि मेरे योग्य यदि कोई सेवा हो, तो मैं उसे अंजाम दूँ।"

सर रामकृष्ण उनका निःस्वार्थ भाव देखकर विचार में पड़ गए।

बाबू मातादीन उन्हें मौन देखकर, कुछ विह्वल होकर उनकी ओर देखने लगे। उनकी बातों का क्या असर हुआ, यह उनका चेहरा देखकर वह न जान सके। उनका मुख भाव-विहीन और शांत था।

थोड़ी देर बाद बाबू मातादीन ने कहा—"हुज़ूर, इतमीनान रक्खें कि कमतरीन कभी धोखा न देगा। मैं केवल अपने मालिकों की

ख़िदमत करने के लिये हाज़िर हुआ हूँ। मेरा इस समय अनूपगढ़ से कोई संबंध नहीं। मुझे इस्तीफ़ा दिए हुए लगभग एक महीना हो गया। अगर यक़ीन न हो, तो आप दरियाफ़्त करा लें। यदि हुज़ूर को मेरी सहायता लेने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, तो मैं जाने की इजाज़त चाहता हूँ। नाहक़ आपको परेशान किया, इसके लिये माफ़ी चाहता हूँ। जब ज़रूरत हो, याद फ़रमावें। मैं हमेशा सेवा के लिये तैयार हूँ।"

यह कह, बाबू मातादीन उठकर जाने के लिये उद्यत हुए।

सर रामकृष्ण ने उन्हें रोकते हुए कहा—"जो शख़्स नमक-अदायगी के भाव से कोई सेवा करने आता है, वह कभी इतनी शीघ्रता से बिदा होने के लिये उत्सुक नहीं होता।"

उनके तीव्र कटाक्ष ने बाबू मातादीन को बैठने के लिये बाध्य कर दिया। वह चुपचाप उनकी ओर देखने लगे।

सर रामकृष्ण ने कहा—"आपसे मिलकर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई। आप-जैसे नमकहलाल नौकरों के भरोसे ही हम लोगों का काम चलता है, और ऐसे व्यक्ति कितने होंगे?"

बाबू मातादीन विचार में पड़ गए कि उनके कथन में व्यंग्य कितने परिमाण में मिश्रित है।

सर रामकृष्ण ने पूछा—"आपने कब इस्तीफ़ा दिया था?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"पहले ही अर्ज़ कर चुका हूँ कि लगभग एक महीना हुआ।"

सर रामकृष्ण ने कहा—"हाँ, याद आया। आपका पत्र मिलने पर लेडी साहबा ने अपना कोई ख़ास ख़िदमतगार भेजकर कुछ बातों का पता लगाया था। हाँ, उसमें यह ज़िक्र आया था कि आपको अनूपकुमारी ने हटा दिया है।"

उन्होंने इतने सहज भाव से कहा था कि बाबू मातादीन गिरफ़्त

में आ गए। वह चौंक पड़े, और कुछ शंकित दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे। फिर कहा—"जी नहीं, यह सत्य नहीं, वह मुझे क्या निकालेगी, मैंने खुद छोड़ दिया था। मैं अपने मालिकों पर अत्याचार होते कभी न देख सकता था, इसलिये इस्तीफ़ा पेश किया था। दूसरे, असली बात तो यह है कि मैं पगड़ी की नौकरी कर सकता हूँ, लहँगे की नहीं।"

सर रामकृष्ण ने प्रशंसा-पूर्ण नेत्रों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आप दरअसल जवाँमर्द हैं।"

बाबू मातादीन पुनः सोचने लगे कि यह कहीं व्यंग्य: तो नहीं।

सर रामकृष्ण ने पूछा—"आजकल रानी साहबा कहाँ हैं ?"

बाबू मातादीन नें कहा—"वह अपने मायके गई हैं। राजा किशोरसिंह, कुँवर साहब के मामा साहब, उनकी ओर से साहबज़ादियों की शादी के लिये पैरवी कर रहे हैं, यह तो आपको मालूम ही होगा।?"

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"हाँ, उसकी निस्बत काग़ज़ात चल रहे हैं। क्या आप इन दिनों उनसे मिलने गए थे ?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"जी नहीं, मैं नहीं गया। उनके विचार मेरी तरफ़ से अच्छे नहीं।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"क्यों ? आप तो उनके ख़ैरख़्वाह हैं।"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"मैंने प्रथम ही अर्ज़ कर दिया है कि लोगों ने, ख़ासकर मेरे दुश्मनों ने, मेरे संबंध में अनूपकुमारी से कहकर उनकी तरफ़ से बदगुमानी पैदा करा दी है, जिसे अभी हाल में दूर करने का मेरे पास कोई साधन न था।"

सर रामकृष्ण ने तीक्ष्ण दृष्टि से पूछा—"वही बदगुमानी तो

कुँवर साहब के दिल में भी हो सकती है, और शायद आपने उसका ज़िक्र भी किया था ?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"बेशक, मगर मेरे पास अपनी नेकनीयती का सुबूत देने का मसाला है। मैं आपको यक़ीन दिला सकता हूँ कि मेरी नीयत साफ़ है, और मैं वास्तव में उनका नमक-हलाल नौकर हूँ।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"आख़िर वह किस तरह ?"

बाबू मातादीन ने मुस्किराते हुए कहा—"कुँवर साहब की बीमारी दूर करके।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"आपको उनकी बीमारी के बारे में वाक़फ़ियत है ?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"जी हाँ, अच्छी तरह। मैं उस वक़्त तो अनूपगढ़ का दीवान ही था।"

सर रामकृष्ण ने उनकी बात पूरी करते हुए कहा—"जब वह बीमार पड़े थे। क्यों ?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"जी हाँ।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"तब तो इसके यह अर्थ हैं कि वह पैदायशी बीमार नहीं।"

बाबू मातादीन ने सरलता-पूर्वक कहा—"जी नहीं, वह पैदायशी बीमार नहीं। वह तो अचानक ऐसे हो गए थे।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"इसकी आपको अच्छी तरह वाक़-फ़ियत है ?"

बाबू मातादीन ने ज़ोर देकर कहा—"जी हाँ, अच्छी तरह।"

उन्होंने तीव्र दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए पूछा—"तब तो यह अनुमान किया जा सकता है कि किसी के कुचक्र ने उन्हें ऐसा बना दिया है। मुमकिन है, अनूपकुमारी का इसमें हाथ हो ?"

वह बाबू मातादीन के हृदय का हाल जानने के लिये प्रयत्न करने लगे।

क्षण-मात्र के लिये उनके मुख पर कुछ परिवर्तन के चिह्न प्रस्फुटित हुए, जो पुनः उनकी खसखसी दाढ़ी की ओट में छिप गए।

बाबू मातादीन ने हिचकिचाते हुए उत्तर दिया—"यह मैं ठीक से नहीं कह सकता। अनूपकुमारी का इसमें शायद ही हाथ हो।" फिर थोड़ी देर बाद कहा—"हो भी सकता है। कौन जाने।"

सर रामकृष्ण ने सरलता से कहा—"नहीं, ज़रूर उसका हाथ है, आपको मालूम न होगा।"

बाबू मातादीन प्रतिवाद न कर सके। उन्होंने सिर हिलाते हुए कहा—"होगा। 'जानि न जाय निसाचर-माया।'"

कहते-कहते उनकी आँखें कुछ नत हो गईं।

सर रामकृष्ण ने कहा—"अच्छा, आपके पास कुँवर साहब को अच्छा करने के लिये कौन इलाज है। क्या मैं उसे जान सकता हूँ?"

बाबू मातादीन ने प्रसन्न होकर कहा—"बेशक, मैं वह दवा बना-कर पहले खुद खाकर आपको दिखा दूँगा, बाद में कुँवर साहब को खिलाऊँगा। यदि आप कहेंगे, तो किसी दूसरे जानवर को खिलाकर उसका असर दिखा दूँगा। वह दवा इस क़दर तेज़ है कि अगर उसको किसी छोटे जानवर, मसलन् कुत्ता वग़ैरह, को खिलाई जाय, तो वह पागल हो जायगा, और यदि बड़े जानवर, बैल-गाय वग़ैरह, को खिलाई जाय, तो उस पर पूरा असर होगा।"

सर रामकृष्ण ने विस्मित स्वर में पूछा—"वह दवा इस क़दर तेज़ है?"

बाबू मातादीन ने सगर्व कहा—"जी हाँ, उसकी सिर्फ़ एक ख़ूराक उन्हें हमेशा के लिये अच्छा करने को काफ़ी होगी।"

सर रामकृष्ण ने और चकित होते हुए कहा—"सिर्फ़ एक ख़ूराक़!"

बाबू मातादीन ने उत्साह-पूर्वक हँसते हुए कहा—"जी हाँ, केवल एक ख़ूराक उनका रोग जड़ से नाश कर देने में समर्थ है। यदि ऐसा न होता, तो मैं हरगिज़ हुज़ूर की क़दमबोसी के लिये हाज़िर न होता।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"आपने पहले भी यह दवा बनाकर किसी को खाने के लिये दी है, या इसकी आज़माइश की है?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"जी नहीं, यह तो अभी-अभी मैंने तैयार की है। इसका नुसख़ा अभी हाल में मुझे मिला है। मेरे पास बुज़ुर्गों की हस्त-लिखित किताबें हैं, जिन्हें पढ़ते-पढ़ते अचानक मिल गया।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"जब आपने आज़माया नहीं, तब इसकी तारीफ़ कैसे करते हैं?"

बाबू मातादीन ने कुछ सोचते हुए कहा—"उसी किताब में इसके गुण लिखे हुए हैं। अभी जो दवा बनाई है, उसे एक कुत्ते और बैल को खिलाकर उसका प्रभाव देखा था। वह उस किताब के अनुसार मिल गया है।"

सर रामकृष्ण ने मंद मुस्कान-सहित पूछा—"क्या मैं भी उसे खा सकता हूँ?"

बाबू मातादीन ने प्रसन्न मुख से कहा—"जी हाँ, आप भी खा सकते हैं। यदि कोई वृद्ध पुरुष या स्त्री खाय, तो वे इतने कामोन्मत्त हो जायँगे कि उन्हें अपना यौवन याद आ जायगा। यह वह चीज़ है, जिसे दिल्ली के बादशाह और लखनऊ के नवाब खाया करते थे। यह नुसख़ा मेरे बुज़ुर्गों को शाही हकीमों से मिला है। वह कायापलट करनेवाली चीज़ है।"

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"यदि ऐसी है, तो ज़रूर नायाब है। क्या उसे अपने साथ लाए हैं?"

बाबू मातादीन ने अपनी जेब से दवा की शीशी निकालते हुए कहा—"जी हाँ, लाया हूँ। आप पहले इसकी किसी पर आज़माइश कर लें, तब कुँवर साहब को खिलाएँ, ताकि किसी तरह का अंदेशा आपके मन में न रहे। क्या बताऊँ, अगर उस वक्त यह नुसख़ा हाथ लग गया होता, जब कुँवर साहब अनूपगढ़ में थे, तो यह नौबत ही क्यों आती।"

सर रामकृष्ण ने शीशी अपनी मेज़ की दराज़ में रखते हुए कहा—आज़माइश करने की क्या ज़रूरत है, जब आप कहते हैं, तब ठीक ही होगा। आप अनूपगढ़ के नमकहलाल नौकर हैं, कुछ छल न करेंगे। और, अगर छल-कपट भी करेंगे, तो मेरे पास वह शक्ति है, जो आपको इस पृथ्वी पर कहीं छिपने न देगी।"

बाबू मातादीन ने हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता के साथ कहा—"हुज़ूर का इक़बाल ऐसा ही है। मैं बचकर कहाँ जाऊँगा। हुज़ूर के हाथ लंबे हैं। यह सब जान-बूझकर ही मैं दवा दे रहा हूँ। शक और शुबहा की गुंजाइश क्यों रक्खें, पहले किसी पर आज़माकर देख लें। इसे हर कोई खा सकता है।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"अच्छा, आप इसका पुरस्कार क्या चाहते हैं?"

बाबू मातादीन ने संतोष के साथ मुस्किराकर कहा—"इसका क्या पुरस्कार है। यह तो मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने स्वामी की यथाशक्ति सेवा करूँ। हाँ, जब वह अनूपगढ़ की गद्दी पर विराजें, उस समय जो हुक्म फ़रमाएँगे, उसकी तामील बसरोचश्म करूँगा।"

सर रामकृष्ण ने कहा—"अरे हाँ, मैं तो वह बात बिलकुल भूल गया था। आप अनूपगढ़ की गद्दी बहाल रखने में क्या सहायता दे

सकते हैं ? क़ानूनन् तो अभी तक कुँवर साहब ही गद्दी के मालिक हैं, और उस वक़्त तक रहेंगे, जब तक ऐसा कोई क़ानून न बन जाय कि रखैल के लड़के भी गद्दी के हक़दार हो सकते हैं, और उन्हें किसी कुचक्र में फँसाकर मरवा न डाला जाय। आज तक गद्दी का हक़दार बड़ा पुत्र होता आया है, और होगा। न राजा साहब में यह ताक़त देखता हूँ कि वह अपने प्रभाव से ऐसा क़ानून बनवा सकें। हाँ, ज़नानख़ाने में वह डींग ज़रूर मार सकते हैं। मुझे उसकी तनिक चिंता नहीं। मेरे एक इशारे से उनका बना-बनाया खेल चौपट हो जायगा। मैं अभी इंतज़ार कर रहा हूँ ; जब पर बहुत फैलने लगेंगे, तो काटना पड़ेगा। जब तक फुदकते हैं, तब तक मेरी कोई हानि नहीं। उन्हें ख़ुश हो लेने दो, और स्त्रियों को ख़ुश कर लेने दो।"

बाबू मातादीन ने ख़ुशामद से हँसते हुए कहा—"हुज़ूर का फ़रमाना बहुत दुरुस्त है। ये तो हवाई क़िले हैं। मैं भी सब जानता हूँ। इसी तरह मैंने भी एक दिन कहा था, तो वह बहुत नाराज़ हुए थे। ख़ैर, मैं अनूपकुमारी को पामाल करने में सहायता दे सकता हूँ। मुझे कुछ ऐसी बातें मालूम हैं, जिनसे अनूपकुमारी का गर्व खंडन हो सकता है।"

सर रामकृष्ण ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"मेरे सुनने में तो ऐसा आया है कि अनूपकुमारी आपकी बहन है। माफ़ कीजिएगा।"

बाबू मातादीन ने हँसकर कहा—"दुनिया यही कहती है, किंतु दरअसल यह बात नहीं। आपने भी विश्वास कर लिया ? मैं क्या इतना बेइज़्ज़त-आबरू का हूँ, जो अपनी बहन को उनकी नज़र करूँगा। वह तो एक बदमाश औरत है, जिसने अपने पति का ख़ून किया है। सौभाग्य से उसके पति की जीवन-रक्षा करने में मैं समर्थ

हो गया हूँ। उसका पति अभी तक जीवित है। इधर कई साल से उसे देखा नहीं, किंतु मुझे विश्वास है, वह अभी तक जीवित है, और मैं उसे खोज निकालूँगा। इसमें आपकी सहायता की आवश्यकता है। आप पुलिस द्वारा उसकी तलाश करावें, और पता लग जाने पर अनूपकुमारी के ख़िलाफ़, हत्या के प्रयत्न में गिरफ़्तार कराकर, मुक़दमा चलावें। उसके ख़िलाफ़ मैं अकाट्य प्रमाण दूँगा।"

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"आप जो कुछ सहायता चाहेंगे, दूँगा। आप उसके पति का हुलिया वग़ैरह लिखा दें। मैं ख़ास तौर पर उसकी तलाश कराने का प्रबंध करा दूँगा। समय पर पुलिस द्वारा अनूपकुमारी की गिरफ़्तारी का वारंट भी निकल जायगा, और मुक़दमा भी दायर हो जायगा।"

बाबू मातादीन ने अपनी प्रसन्नता छिपाने का बहुत प्रयत्न किया, किंतु उनकी आँखों की ज्योति ने उसे प्रकट कर ही दिया।

दूसरे दिन हाज़िर होने के लिये कहकर वह बिदा हो गए।

उनके जाने के बाद सर रामकृष्ण ने उस शीशी को मेज़ की दराज़ से निकालते हुए कहा—"आदमी बहुत चालाक मालूम होता है। इसे अभी हाथ में रखना ठीक होगा। 'कण्टकेनैव कण्टकम्' वाली नीति चरितार्थ करना होगा।"

वह पुनः विचार में निमग्न हो गए।

पंडित मनमोहननाथ का जलयान प्रशांत महासागर के दक्षिणी भाग को बड़ी शीघ्रता से पार करने का प्रयत्न कर रहा था। कैप्टेन अल्फ्रेड जैकब्स शीघ्रातिशीघ्र वालपेराइज़ो पहुँचने की चेष्टा में निरत थे। फ़िजी-द्वीप-समूह के सुवा-नामक बंदर पर वह केवल उतनी देर ठहरे, जितनी देर में राधा अपनी मा को लेकर उस जहाज़ पर सवार हुई।

आभा और गंगा को समवयस्क मित्र मिल जाने से अति प्रसन्नता हुई, और दोनो का सूनापन मिट गया। डॉक्टर नीलकंठ को बार-बार वे दिन याद आ रहे थे, जब उन्होंने आभा की मा के जीवित काल में इँगलैंड की यात्रा की थी। वह रह-रहकर उन दिनों की तुलना आजकल के समय से करते थे। यद्यपि उन दिनों वियोग का असह्य दुख भोगना पड़ा था, किंतु उनमें मिलन की आशा थी, उसका उत्साह था, और तृप्ति थी, किंतु इस समय परिस्थिति बिलकुल प्रतिकूल थी। अब जन्म-भर के लिये वियोग था, जिसमें केवल नैराश्य की कातरता के अतिरिक्त हृदय को मुग्ध रखनेवाला कोई दूसरा सूत्र न था। आजकल आभा की मा की स्मृति इतनी सजग हो गई थी कि वह ज्यों-ज्यों उसके भूलने का यत्न करते, त्यों-त्यों वह परिष्कृत होकर उनके विचारों को अपने भावों से ओत-प्रोत करती। वह अक्सर एकांत में ही अपने दिन व्यतीत करते थे।

भारतेंदु की दिनचर्या भी एक प्रकार से एकांत में ही संपन्न होती थी। आभा और अमीलिया को लेकर वह सदैव अपने विचारों से तर्क-वितर्क करते रहते। कर्तव्य और मोह उनके हृदय-प्रांगण में

नंगी तलवारें लेकर एक दूसरे का गला काटने के लिये अविराम गति से युद्ध कर रहे थे। वह अपने कमरे से बहुत कम निकलते। और, अगर कभी बाहर आते, तो कैप्टेन जैकब्स के पास जाकर अमीलिया के विषय में बातें करते, या डॉक्टर नीलकंठ के समीप बैठकर समुद्री ज्ञान के विषय में आलोचना करते। किंतु न तो डॉक्टर नीलकंठ को कुछ उत्साह था, और न भारतेंदु को। दो-एक बात होने के बाद वह विषय स्वतः बंद हो जाया करता था।

आभा और गंगा कुछ दिनों तक तो समुद्री बीमारी से रुग्ण रहीं। पीछे अच्छी होने पर उनके विचार-विनियम का कोई रुचिकर विषय न मिलता था। गंगा के लिये समुद्र-यात्रा बिलकुल नई थी, फिर भी उसका मन निरंतर जल-ही-जल देखते-देखते ऊब गया था। जब कभी जहाज़ किसी बंदर पर अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिये ठहरता, तो उसका मन पृथ्वी और हरे वृक्ष देखकर उत्फुल्ल हो जाता। वहाँ वह कुछ दिन ठहरकर उस हरियाली को देखना चाहती, किंतु कैप्टेन जैकब्स, आवश्यकता पूरी हो जाने पर, एक क्षण अधिक न ठहरते थे। पंडित मनमोहननाथ का आदेश था कि उन लोगों को बहुत शीघ्र वालपेराइज़ो पहुँचावे। गंगा मन-ही-मन उनकी जल्दबाज़ी पर कुढ़कर रह जाती, और उन लोगों के साथ-साथ इस बुढ़ापे में जल-यात्रा का शौक़ उठने के लिये अपने को बारंबार धिक्कारती।

आभा के सोचने के लिये कुछ न था। वह अनेक सुखमय कल्पनाओं में ऊँची उड़ रही थी। कभी-कभी मालती के लिये वह व्याकुल हो उठती। उसे उसने कई स्थान से पत्र डाले थे, और उनमें यह संकेत बराबर रहता था कि उसका क्या कर्तव्य है। भारतेंदु से मिलने तथा बातचीत करने में उसे कुछ लज्जा लगती थी। हिंदू-घरों का संस्कार उसकी प्रत्येक तंतुओं में समाविष्ट था, जो

नंगी तलवारें लेकर एक दूसरे का गला काटने के लिये अविराम गति से युद्ध कर रहे थे। वह अपने कमरे से बहुत कम निकलते। और, अगर कभी बाहर आते, तो कैप्टेन जैकब्स के पास जाकर अमीलिया के विषय में बातें करते, या डॉक्टर नीलकंठ के समीप बैठकर समुद्री ज्ञान के विषय में आलोचना करते। किंतु न तो डॉक्टर नीलकंठ को कुछ उत्साह था, और न भारतेंदु को। दो-एक बात होने के बाद वह विषय स्वतः बंद हो जाया करता था।

आभा और गंगा कुछ दिनों तक तो समुद्री बीमारी से रुग्ण रहीं। पीछे अच्छी होने पर उनके विचार-विनिमय का कोई रुचिकर विषय न मिलता था। गंगा के लिये समुद्र-यात्रा बिलकुल नई थी, फिर भी उसका मन निरंतर जल-ही-जल देखते-देखते ऊब गया था। जब कभी जहाज़ किसी बंदर पर अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिये ठहरता, तो उसका मन पृथ्वी और हरे वृक्ष देखकर उत्फुल्ल हो जाता। वहाँ वह कुछ दिन ठहरकर उस हरियाली को देखना चाहती, किंतु कैप्टेन जैकब्स, आवश्यकता पूरी हो जाने पर, एक क्षण अधिक न ठहरते थे। पंडित मनमोहननाथ का आदेश था कि उन लोगों को बहुत शीघ्र वालपेराइज़ो पहुँचावे। गंगा मन-ही-मन उनकी जल्दबाज़ी पर कुढ़कर रह जाती, और उन लोगों के साथ-साथ इस बुढ़ापे में जल-यात्रा का शौक़ उठने के लिये अपने को बारंबार धिक्कारती।

आभा के सोचने के लिये कुछ न था। वह अनेक सुखमय कल्पनाओं में ऊँची उड़ रही थी। कभी-कभी मालती के लिये वह व्याकुल हो उठती। उसे उसने कई स्थान से पत्र डाले थे, और उनमें यह संकेत बराबर रहता था कि उसका क्या कर्तव्य है। भारतेंदु से मिलने तथा बातचीत करने में उसे कुछ लज्जा लगती थी। हिंदू-घरों का संस्कार उसकी प्रत्येक तंतुओं में समाविष्ट था, जो

दोपहर का समय था। मकर का सूर्य पृथ्वी के उस विभाग को बड़ी प्रखरता से प्रकाशित कर रहा था, जैसे उत्तरीय भाग में वृष या मिथुन-राशि पर स्थित होकर पृथ्वी को दग्ध करता है। यद्यपि प्रशांत सागर कभी उष्ण नहीं रहता, किंतु उस दिन कुछ विशेष रूप से गरम था। समुद्र का जल उबल रहा था, और जहाज़ उत्तुंग लहरों के ऊपर ऐसी शीघ्रता से जा रहा था, जैसे कोई अग्नि की ज्वाला से बचने के लिये आतुर होकर भाग रहा हो। आभा अपने कैबिन में बैठी हुई मालती को पत्र लिख रही थी, किंतु उष्णता से उसके विचार उसके हृदय में भ्रमित होकर रह जाते थे। उसने ऊबकर क़लम रख दी, और कुछ लिखने के लिये सोचने लगी।

राधा ने आकर झाँका। आभा ने उसकी छाया देखकर कहा—"कौन, राधा! अंदर क्यों नहीं आती?"

राधा ने कमरे के अंदर आकर कहा—"आप कुछ काम कर रही थीं, इसलिये उसमें दख़ल देना अच्छा नहीं मालूम हुआ। मैं अभी जाकर अम्मा और चाचीजी के पास बैठती हूँ, आप पत्र लिख लें। लिखने के बाद आवाज़ दे लीजिएगा।"

हिंदू रीति के अनुसार राधा भी गंगा को चाची कहती थी।

आभा ने मुस्किराकर कहा—"मैं लिख चुकी। अब लिखने में मन नहीं लगता। कल लिख दूँगी। अभी तक तो मैं मालती को कई पत्र लिख चुकी हूँ, लेकिन उत्तर एक का भी नहीं मिला।"

राधा ने हँसकर कहा—"वह आपको उत्तर किस पते से भेजें? वालपेराइज़ो में आपको उनके पत्र मिलेंगे। आपने उन्हें कहाँ का पता दिया है?"

आभा ने कहा—"सिंगापुर में मैंने कैप्टेन से पूछकर वालपेराइज़ो का पता दिया है। तुमने कभी इधर के समुद्र में यात्रा की है?"

राधा ने उत्तर दिया—"इधर दक्षिणी अमेरिका में मैं कभी नहीं

राधा फिर कहने लगी—"इधर उनका नाम बहुत विख्यात है। वह पहले इस देश में मज़दूर होकर आए थे, और भाग्य से उन्होंने इतनी अगाध संपत्ति उपार्जन की कि इधर के प्रदेशों में धन-कुबेर कहे जाते हैं। आपने फ़िज़ी में उनका मकान नहीं देखा। ऐसा विशाल भवन तो राजा-महाराजाओं का भी नहीं होता। उन्होंने इधर भारतीय मज़दूरों की दशा में अनेक सुधार कराए हैं, और अधिकार भी दिलाए हैं। इतना सब होने पर वह बड़े दयालु भी हैं। मेरी कहानी सुनकर इतने दुखी हुए थे, जैसे कोई पिता होता है, और माधवी को तो उन्होंने अपनी संतान ही समझ रक्खा है।"

आभा ने पूछा—"माधवी की कितनी आयु होगी?"

राधा ने उत्तर दिया—"यही कोई सोलह-सत्रह वर्ष की। उस बेचारी को बड़ी-बड़ी मुसीबतें सहनी पड़ी हैं, किंतु है वह भाग्य-शालिनी। एकमात्र उसी के भाग्य से मेरी रक्षा हुई है। उस दिन तूफ़ान में टीपोवाले जहाज़ के सारे आरोही डूब गए, जहाज़ भी टुकड़े-टुकड़े होकर समुद्र-तल में डूब गया। आख़ीर में हम पाँच आदमी किसी प्रकार निकल भागे किंतु उसमें से तीन फिर भी डूब गए, और बच गईं केवल हम दो। दूसरे दिन पंडितजी ने हमारी रक्षा की। वह भारत से फ़िज़ी जा रहे थे, रास्ते में माधवी के भाग्य से मिल गए। मैं तो अपनी रक्षा का कारण उसी को समझती हूँ। उसे देखकर जिनकी-जिनकी नीयत ख़राब हुई, वे सब डूब गए। केवल मैंने उसकी कुछ थोड़ी-सी सहायता की थी, इसलिये मैं बच गई। किंतु विधाता ने उसे भी पागल कर रक्खा है। दैव का विधान कुछ समझ में नहीं आता।"

आभा ने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्या माधवी पागल हो गई?"

राधा ने उत्तर दिया—"जी हाँ, डॉक्टर तो उसे पागल ही कहते हैं।"

आभा ने उत्सुकता से पूछा—"यह कैसे ?"

राधा कहने लगी—"माधवी अद्भुत सुंदरी है। उसे डीपो-वाले न-मालूम कैसे बहकाकर ले आए। उनकी ज़बानी सुना था कि वे उसे कानपुर के पास किसी स्टेशन से लाए थे। मैं उन दिनों कानपुर के डीपो में काम करती थी। उसकी संसार से अनभिज्ञता देखकर मेरे मन में बड़ी दया उत्पन्न हुई, और उन डीपोवालों के हाथ से उसकी रक्षा की। जहाज़ में आकर कप्तान और हमारे दल के मुखिया (गुडमंड हिक्स) ने उसे भ्रष्ट करने का विचार किया। उसका नतीजा यह हुआ कि जहाज़ डूब गया, वह डूब गया और उसका दल डूब गया। डीपोवाले जहाज़ में माधवी के न-मालूम किस तरह चोट लगी कि वह तीन-चार दिन तक बेहोश रही। सिंगापुर का एक मुसलमान डॉक्टर उसे होश में तो लाया, लेकिन उसका कहना है कि वह पागल हो गई है। मुझे भी कुछ ऐसा ही मालूम होता है। वह मुझे भी नहीं पहचानती, और पिछली बातें सब भूल गई है।"

आभा अति विस्मय के साथ उसकी कहानी सुन रही थी। उसने पूछा—"क्या माधवी भी दक्षिणी अमेरिका चली गई है, या फ़िजी में है ?"

राधा ने जवाब दिया—"अमीलिया ने तो मुझे यही लिखा था कि माधवी भी उनके साथ जा रही थी। पंडितजी ज़रूर उसे अपने साथ ले गए होंगे। उसे वह बहुत स्नेह की दृष्टि से देखते हैं। यह विश्वास नहीं होता कि वह उसे अकेले छोड़ गए होंगे। मैं तो अपने घर चली गई थी, क्योंकि अम्मा बहुत बीमार थीं, इसलिये उनके साथ नहीं गई। जहाँ तक ख़याल है, वह ज़रूर गई होंगी।"

आभा ने पूछा—"यह अमीलिया कौन है ?"

राधा ने प्रश्न-भरी दृष्टि से कहा—"क्या आप अमीलिया को नहीं जानतीं ?"

आभा ने उत्तर दिया—"नहीं, मैंने आज के पहले उसका कभी नाम नहीं सुना।"

राधा ने जवाब दिया—"अमीलिया इसी जहाज़ के कप्तान की कन्या है।"

आभा ने पूछा—"क्या मिस्टर अल्फ्रेड जैकब्स की लड़की है ? वह कितनी बड़ी है ?"

राधा ने उत्तर दिया—"हाँ, मिस्टर जैकब्स की लड़की है। वह होगी लगभग बाईस वर्ष की। बड़ी सुंदर और दयालु चित्त की है। उसके मन में बड़ाई-छुटाई का कोई भाव नहीं। यहाँ के द्वीप-समूह में जितने अँगरेज़ हैं, वे सब अपने को लाट साहब समझते हैं, कालों की कोई क़दर नहीं करते, किंतु उसका दिल दूध की तरह निर्मल है। वह कालों को गोरों से ज़्यादा चाहती है। वह विशुद्ध हिंदी बोलती है। पहले बहुत दिनों तक वह पंडितजी के यहाँ रही। वह सेवा-शुश्रूषा करने में बड़ी चतुर है। पहले एक बार तुम्हारे भावी पति को अपने सेवा-बल से मौत के मुँह से बचा चुकी है। तब से पंडितजी उसकी बड़ी इज़्ज़त करते हैं, और उसे साम्य-वादी-आश्रम का प्रबंधक बनाया है। वह इतनी सरल स्वभाव की है कि जब आप उससे मिलेंगी, तो आपको मालूम होगा, और आप उसे अपनी बहन की तरह प्यार करेंगी।"

आभा ने पूछा—"उसकी माता क्या जीवित नहीं ?"

राधा ने कहा—"एक बार मैंने उससे पूछा था, तो उसने यही कहा था कि उसकी माता का देहांत लड़कपन में हो गया था। भाई वग़ैरह कोई भी नहीं। वह अपने पिता की अकेली संतान है।

(१४)

सांध्य दिवाकर की लाल रश्मियाँ पश्चिम के आकाश में शेष रह गई थीं, जिनकी लालिमा नील रत्नाकर के हरित जल की आभा से मिश्रित होकर भारतेंदु को मोहित करने का प्रयत्न करने लगी, किंतु उनके हृदय की मलिनता तथा उद्वेग किसी तरह कम न हुआ। वह डेक पर खड़े होकर सूर्यास्त देख रहे थे, किंतु जब उन्हें शांति न मिली, तो वह वहीं एक कुर्सी पर बैठ गए। पूर्व दिशा की कालिमा की तरह उनकी चिंताएँ भी घनीभूत होकर उनके मन में उथल-पुथल मचाने लगीं।

वह सोचने लगे—"मेरा कर्तव्य मुझे पुकारकर वारंवार कह रहा है कि अपने किए हुए पाप का प्रायश्चित्त करो। मैं इस समय तक एक पुत्र का पिता होता, और वह भी आज पाँच या छ वर्ष का होता, परंतु उसे मैंने ही मरवा डाला। उसकी हत्या का उत्तरदायी तो मैं ही हूँ, अमीलिया नहीं। अमीलिया को जो कष्ट हुआ, उसका ज़िम्मेवार भी मैं हूँ। मैंने जो यह महान् पाप किया है, उसके भार से बराबर दबा जा रहा हूँ। मेरी आत्मा को बड़ी वेदना मिल रही है, और ज्यों-ज्यों उसे दबाने का प्रयत्न करता हूँ, वह बढ़ती जाती है। आज कई महीनों से अपनी अंतरात्मा से युद्ध कर रहा हूँ, मगर अभी तक किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाता।

"एक तरफ़ तो आभा है, और एक ओर अमीलिया। आभा कितनी सरल-हृदय है, और उसका प्रेम मनुष्य के लिये आशीर्वाद है। उसे छोड़ने की कल्पना-मात्र से मेरा मन व्याकुल होकर रुदन करने लगता है, और इधर कर्तव्य की पुकार हृदय में वृश्चिक-दंश

हस्तक्षेप करके दुखी नहीं करना चाहते। यदि अमीलिया कहेगी कि वह हिंदू होना चाहती है, तो वह कहेंगे—'तेरी मर्ज़ी, हो जा।' वह कोई रुकावट नहीं डालेंगे। तब मुझे वही करना उचित है। अमीलिया के साथ विवाह करके उसे सुखी करने में ही मेरे पाप का प्रायश्चित्त होगा, और उसी समय यह वृश्चिक-दंशन की अविराम पीड़ा नष्ट होगी। इस सुख-स्वप्न के मोह का अंत करना पड़ेगा, नहीं तो यह मेरा अंत कर देगा।

"आभा को सुनकर बड़ी पीड़ा होगी। वह कल्पनाओं के प्रासाद बना रही है, मेरे इनकार करने से वे सब भूमिसात् हो जायँगे। उसका जीवन ही शायद विपद् में पड़ जाय, क्योंकि उसका कोमल हृदय इतना विकट धक्का बरदाश्त न कर सकेगा। अमीलिया द्वारा सुनने से तो यही अच्छा है कि मैं स्वयं सब हाल कहकर उसका सुख-स्वप्न भंग कर दूँ। मैंने डॉक्टर साहब से कहा था कि पिताजी सब संपत्ति साम्यवादी आश्रम को दे देंगे, तो उनका भाव देखकर कुछ आशा हुई थी कि शायद वह आभा की रुचि दूसरी ओर मोड़ने का प्रयत्न करेंगे। परंतु आभा का प्रेम मेरे प्रति घटने की अपेक्षा उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है, और मैं भी उसकी ओर आकर्षित होता जाता हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि कैसे यह समस्या सुलझाऊँ?

"वालपेराइज़ो दिन-पर-दिन समीप आता जा रहा है। कल रात को या परसों सुबह हम लोग पहुँच जायँगे। पिताजी ने हमारे ब्यूनेसबोका तक पहुँचने का प्रबंध कर रक्खा होगा, और शायद वह वालपेराइज़ो में स्वयं आएँ। उनके साथ अमीलिया भी निश्चय आएगी। अमीलिया और आभा से परिचय होगा ही। उस समय अगर उसने सब हाल कहकर वैसी चेतावनी दी, जैसे मुझे पत्र में लिखकर दी थी, तो तुरंत ही सर्वनाश हो जायगा। मैं क्या उसके सामने अपने अपराध से इनकार कर सकता हूँ?

भारतेंदु चुप होकर आकाश में उदय होते हुए तारों की ओर देखने लगे।

भारतेंदु ने थोड़ी देर बाद पूछा "मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ।"

आभा ने सरलता-पूर्वक कहा—"पूछिए, मैं उसका उत्तर दूँगी। विश्वास रखिए, मैं आपको सत्य उत्तर दूँगी।"

भारतेंदु को पूछने का साहस न हुआ। वह कुछ सोचने लगे।

आभा ने मुस्किराकर कहा—"मैं भी आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ।"

भारतेंदु ने धड़कते हुए हृदय से कहा—"पूछिए।"

आभा ने कहा—"पहले आप पूछिए, फिर मैं प्रश्न करूँगी। जब आपने पहले मुझसे प्रश्न किया है, तो वस्तुतः मैं पहले उसका जवाब दूँगी। आपके प्रश्न का उत्तर देने के बाद मैं प्रश्न करूँगी।"

भारतेंदु ने कहा—"अच्छा, मैं कोई प्रश्न नहीं करना चाहता।"

आभा ने कहा—"यह तो ठीक नहीं। छलने का प्रयत्न अच्छा नहीं।"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"आपको ही प्रथम प्रश्न करना होगा।"

आभा ने कहा—"अच्छा, यदि आपकी यही इच्छा है, तो बतलाइए, अमीलिया कौन है?"

भारतेंदु सत्य ही सिहर उठे। उनके मुख का वर्ण श्वेत, चूने की भाँति, हो गया, किंतु निशा की कालिमा ने उसे छिपा लिया। वह भय-विह्वल दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

आभा ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"आपने शायद मेरा

प्रश्न समझा नहीं। मैंने पूछा है, अमीलिया कौन है ? आज बातचीत में राधा ने बताया कि वह माधवी की सेवा करती है, और महत् हृदय की अनुपम सुंदरी है। क्या आप उसे जानते हैं ?"

भारतेंदु ने बहुत ही धीमे स्वर में कहा—"हाँ, मैं उसे जानता हूँ, और अच्छी तरह जानता हूँ। राधा का कहना वास्तव में सत्य है। वह सत्य ही एक देवी है, जो इस पृथ्वी पर कर्म-वश अवतीर्ण हुई है। वह कैप्टेन जैकब्स की पुत्री है, और एक विदुषी रमणी-रत्न है।"

आभा ने उत्सुकता-पूर्वक कहा—"आपने कभी उसका ज़िक्र नहीं किया।"

भारतेंदु ने साहस एकत्र करते हुए कहा—"समय आने पर उसका ज़िक्र करता।"

आभा को उनके स्वर में कुछ विषाद की झंकार दिखाई दी। उसने भयभीत होकर पूछा—"क्या आपकी तबियत कुछ ख़राब है ?"

भारतेंदु ने कहा—"नहीं। अब मैं एक बात कहना चाहता हूँ।"

आभा ने कहा—"अच्छा, कहिए।"

भारतेंदु ने अत्यंत उत्सुकता से कहा—"यह तो आपको मालूम है कि हम दोनो विवाह-सूत्र में शीघ्र ही बँधनेवाले हैं, किंतु इसके पूर्व यह आवश्यक है कि एक दूसरे की कमज़ोरियाँ जान लें, जिसमें जीवन में आगे चलकर लज्जित न होना पड़े।"

आभा ने शंकित हृदय से कहा—"मैं नहीं जानती कि हमारे जीवन में ऐसी कौन बात है, जिसे हम लोग नहीं जानते।"

भारतेंदु ने कहा—"यह ठीक है, किंतु फिर भी मुझे बहुत कुछ कहना है।"

आभा ने विह्वलता के साथ कहा—"कहिए। मैं सब सुनने को तैयार हूँ।"

भारतेंदु ने पूछा—"पहले बतलाइए, आप मुझसे कितना प्रेम करती हैं ?"

आभा ने रुक्ष स्वर में कहा—"हिंदू-स्त्रियाँ विवाह के पहले प्रेम करना नहीं जानतीं। उनका प्रेम तो विवाह होने के बाद आरंभ होता है।"

भारतेंदु के हृदय में उसकी रुक्षता ने शीघ्र वेदना पैदा कर दी। आशा के विपरीत उत्तर मिलना अवश्य दुःखदायी होता है।

भारतेंदु ने उस पीड़ा को दबाते हुए कहा—"यह ठीक है। मैं आपसे स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूँ कि मैं आपके योग्य नहीं। आप-जैसे उच्च-हृदय रमणी को मैं अपने साथ पाप-पंक में घसीटकर आपका जीवन नष्ट करना नहीं चाहता। हमारे वाल्दैन ने यह बड़ी भारी भूल की है, जो हम दोनो को विवाह-सूत्र में बाँधना चाहते हैं। मैं आपसे विवाह नहीं कर सकता। इससे ज़्यादा मैं कुछ कह भी नहीं सकता।"

वह वहाँ अधिक न ठहर सके। वेग से अपने केबिन की ओर चलकर अदृश्य हो गए। आभा स्तंभित होकर उनकी ओर देखती रह गई।

रजनी की कालिमा फैलकर अवनि और अंबर को ढकती हुई नील रत्नाकर के उस पार जा रही थी, जहाँ से प्रकाश विदा हो रहा था।

प्रश्न समझा नहीं। मैंने पूछा है, अमीलिया कौन है? आज बातचीत में राधा ने बताया कि वह माधवी की सेवा करती है, और महत् हृदय की अनुपम सुंदरी है। क्या आप उसे जानते हैं?"

भारतेंदु ने बहुत ही धीमे स्वर में कहा—"हाँ, मैं उसे जानता हूँ, और अच्छी तरह जानता हूँ। राधा का कहना वास्तव में सत्य है। वह सत्य ही एक देवी है, जो इस पृथ्वी पर कर्म-वश अवतीर्ण हुई है। वह कैप्टेन जैकब्स की पुत्री है, और एक विदुषी रमणी-रत्न है।"

आभा ने उत्सुकता-पूर्वक कहा—"आपने कभी उसका ज़िक्र नहीं किया।"

भारतेंदु ने साहस एकत्र करते हुए कहा—"समय आने पर उसका ज़िक्र करता।"

आभा को उनके स्वर में कुछ विषाद की झंकार दिखाई दी। उसने भयभीत होकर पूछा—"क्या आपकी तबियत कुछ ख़राब है?"

भारतेंदु ने कहा—"नहीं। अब मैं एक बात कहना चाहता हूँ।"

आभा ने कहा—"अच्छा, कहिए।"

भारतेंदु ने अत्यंत उत्सुकता से कहा—"यह तो आपको मालूम है कि हम दोनो विवाह-सूत्र में शीघ्र ही बँधनेवाले हैं, किंतु इसके पूर्व यह आवश्यक है कि एक दूसरे की कमज़ोरियाँ जान लें, जिसमें जीवन में आगे चलकर लज्जित न होना पड़े।"

आभा ने शंकित हृदय से कहा—"मैं नहीं जानती कि हमारे जीवन में ऐसी कौन बात है, जिसे हम लोग नहीं जानते।"

भारतेंदु ने कहा—"यह ठीक है, किंतु फिर भी मुझे बहुत कुछ कहना है।"

आभा ने विह्वलता के साथ कहा—"कहिए। मैं सब सुनने को तैयार हूँ।"

भारतेंदु ने पूछा—"पहले बतलाइए, आप मुझसे कितना प्रेम करती हैं ?"

आभा ने रुक्ष स्वर में कहा—"हिंदू-स्त्रियाँ विवाह के पहले प्रेम करना नहीं जानतीं। उनका प्रेम तो विवाह होने के बाद आरंभ होता है।"

भारतेंदु के हृदय में उसकी रुक्षता ने शीघ्र वेदना पैदा कर दी। आशा के विपरीत उत्तर मिलना अवश्य दुःखदायी होता है।

भारतेंदु ने उस पीड़ा को दबाते हुए कहा—"यह ठीक है। मैं आपसे स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूँ कि मैं आपके योग्य नहीं। आप-जैसे उच्च-हृदय रमणी को मैं अपने साथ पाप-पंक में घसीटकर आपका जीवन नष्ट करना नहीं चाहता। हमारे वाल्दैन ने यह बड़ी भारी भूल की है, जो हम दोनो को विवाह-सूत्र में बाँधना चाहते हैं। मैं आपसे विवाह नहीं कर सकता। इससे ज़्यादा मैं कुछ कह भी नहीं सकता।"

वह वहाँ अधिक न ठहर सके। वेग से अपने कैबिन की ओर चलकर अदृश्य हो गए। आभा स्तंभित होकर उनकी ओर देखती रह गई।

रजनी की कालिमा फैलकर अवनि और अंबर को ढकती हुई नील रत्नाकर के उस पार जा रही थी, जहाँ से प्रकाश विदा हो रहा था।

---

(१५)

अनूपकुमारी का दबदबा, बाबू मातादीन के जाने के साथ ही, ऐसा जमा कि राज्य के सभी नौकर भय से शंकित हो गए। रियासतें कुचक्र, षड्यंत्र, चुग़ली, दग़ाबाज़ी, जालसाज़ी आदि सभी दुर्गुणों की जन्मदात्री होती हैं। एक दूसरे की बुराई कर, नौकर, अहलकार, कारकुन, सभी प्रधान व्यक्ति के प्रिय बनकर अपना घर भरने के लिये उत्सुक होते हैं। सब लोग राजा के ख़ैरख़्वाह बनकर अपना-अपना आधिपत्य जमाने की कोशिश करते हैं, और यदि उन्हें सफलता नहीं मिलती, तो राजा की बुराई करके अपना गुबार निकालते हैं। इसीलिये देशी राजा हमेशा नौकरों के आश्रित रहते हैं, और उनकी बुराई तथा बदनामी भी बड़ी जल्दी फैल जाती है। पारस्परिक द्वेष के कारण वे कभी आंतरिक सद्भाव से नहीं रह सकते, और विद्वेष की अग्नि प्रज्वलित कर प्रजा और राजा दोनो का अकल्याण साधन करने में निरत रहते हैं।

बाबू मातादीन के हट जाने से कितनों के घर में घृत के दीपक जलाए गए, और कितनों के घर में अंधकार ही रक्खा गया। नए दीवान ठाकुर कुशलपालसिंह अभी हाल ही में इँगलैंड से वापस आए थे, और रियासतों के कुचक्र से सर्वथा अनभिज्ञ थे। राज के अहलकारों ने उन्हें बहुत जल्द बेवक़ूफ़ बना दिया, और अपना घर द्विगुणित उत्साह से भरने लगे। राजा सूरजबख़्शसिंह ने उन्हें केवल इस गुण पर अपना दीवान नियत किया था कि वह अँगरेज़ अफ़सरों से मिलने में भयभीत न होते थे, क्योंकि कई वर्षों तक

इँगलैंड में रहने से उनकी हिम्मत खुल गई थी। बाक़ी दूसरे काम करने की चतुरता उनमें न थी।

इधर राज-संचालन की बागडोर पूर्ण रूप से अनूपकुमारी के हाथ में आ गई थी। सरकारी ख़ज़ाना भी उसके पास आ गया जाता था, और कुल अमला का वेतन उसी के आदेशानुसार दिया जाता था। कितने ही नौकर हटा दिए गए थे, और सब ओर से ख़र्च कम करने का प्रयत्न हो रहा था। हाथियों तथा घोड़ों का ख़र्च फ़िज़ूल समझकर क़तई हटा दिया गया, और सवारी के लिये तीन मोटरें ले ली गईं, जिनमें से दो तो अनूपकुमारी के ख़ास इस्तेमाल के लिये थीं, बाक़ी एक कभी दीवान साहब तथा कभी राजा साहब के काम आती थी।

अनूपकुमारी ने पृथ्वीसिंह को कालविन स्कूल से बुला लिया था। उसे पढ़ाने के लिये अनूपगढ़ में ही प्रबंध किया गया। वह उसे अपने पास, अपनी आँखों के समक्ष, रखने में अपनी भलाई समझती थी, जिससे राजा सूरजबख़्शसिंह का प्रेम उस पर कम न होने पाए। कस्तूरी आदि अनेक पुरानी दासियाँ निकाल दी गई थीं, और दो-तीन नई रक्खी गई थीं। पहले रानी श्यामकुँवरि की प्रतिस्पर्द्धा से, इतनी अनावश्यक दासियाँ थीं, किंतु अब उनके चले जाने से जो कुछ ख़र्च होता था, वह अनूपकुमारी का था, इससे ज़नाने और मरदाने नौकरों में बहुत काट-छाँट हुई थी। दीवान मातादीन के हट जाने से अनूपगढ़ की कायापलट हो गई थी।

राजा सूरजबख़्शसिंह को इस ओर ध्यान देने का समय नहीं मिलता था। वह एसेंबली के नए-नए मेंबर हुए थे, उसी का ताज़ा नशा चढ़ा हुआ था। मदिरा के आवेश में विभोर अपने महल में बैठे हुए अनेक हवाई क़िले बनाया करते थे। उनके हृदय में इस विजय से कुछ ऐसा साहस उत्पन्न हुआ था कि वह अपने को एसेंबली का

विधाता समझने लगे थे। किसी क़ानून को बना देना अपनी बाईं उँगली का संकेत-मात्र समझते थे। रुपयों की ताक़त पर भी उन्हें बेहद विश्वास हो गया था। उनका यही विचार था कि जहाँ प्रत्येक सदस्य को एक-एक हज़ार की थैली भेंट की, वहाँ मेरा प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास हो जायगा। वह यह बाज़ी केवल एक या डेढ़ लाख रुपयों में ही जीत लेने के मनसूबे बाँध रहे थे। उन्होंने नए दीवान साहब को 'अंतरजातीय विधवा-विवाह-बिल' का मसविदा बनाने का आदेश दे दिया था। नए दीवान ठाकुर कुशलपालसिंह उसे बनाने में दत्तचित्त थे। उन्हें भी आशा थी कि फूल के साथ तुच्छ रुई का सूत्र भी देवताओं के सिर पर चढ़ता है।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने अपनी ज़िद पूरी की, और अनूपकुमारी का परदा हटा दिया गया। वह भी स्वतंत्र वायु - मंडल में एक नवीन आनंद से भरकर पक्षियों की भाँति नाना प्रकार के आमोद-प्रमोद में लिप्त रहने लगी। राजमहल की चहारदीवारी के बाहर आकर उसने एक अनुपम आनंद अनुभव किया, और अपनी रूप-माधुरी सबको पान कराकर उत्सुक पुरुषों की लालसा तृप्त करने लगी। जिस समय राजा सूरजबख़्शसिंह उसे अपनी बग़ल में बैठाकर हवा खाने निकलते, और सड़क के किनारे मनुष्यों की क़तार-की-क़तार खड़ी होकर, उन्हें झुककर प्रणाम करती, उस वक़्त अनूपकुमारी की रोमावलि अभिमान से उत्फुल्ल होकर खड़ी हो जाती, और वह सगर्व उनकी ओर देख तथा मुस्किराकर उन्हें उत्साहित करती। राजा सूरज-बख़्शसिंह प्रसन्नता से कहते कि इसी प्रकार प्रजा में भक्ति-भाव उत्पन्न होता है।

रात्रि का प्रथम प्रहर अभी व्यतीत नहीं हुआ था। कुँवर पृथ्वीसिंह अभी पढ़कर आए और अपनी मा के पास बैठे ही थे कि राजा सूरजबख़्शसिंह अपने हाथ में नए दीवान साहब का

बनाया हुआ 'अंतरजातीय विधवा-विवाह-बिल' का मसविदा लिए प्रहृष्ट मन से वहाँ आ गए।

अनूपकुमारी ने भुवनमोहन कटाक्ष से कहा—"यह क्या है?"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने मुस्किराते हुए कहा—"क्यों बतलाऊँ? कुछ पुरस्कार देने को कहो, तो बतला दूँ।"

अनूपकुमारी ने हँसकर कहा—"इस अभागिनी के पास क्या है, जो आपको पुरस्कार दे; जो कुछ था, वह कभी श्रीचरणों में अर्पण कर दिया। जो कुछ है, वह सब आपका ही है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने गद्दी पर बैठते हुए कहा—"जब मैंने सब तुम्हें भेंट कर दिया है, तब तो तुम्हारा ही हो चुका। इस पर मेरा अब कोई अधिकार नहीं।"

अनूपकुमारी ने सिर नत कर कृतज्ञता के भार से दबते हुए कहा—"यह सब आपकी कृपा है, जो एक पथ की भिखारिनी को राजसिंहासन पर बैठा दिया है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"यह तुम ग़लत कहती हो। अभी तक राजसिंहासन पर बैठाया नहीं। हाँ, अब बैठाऊँगा।"

अनूपकुमारी ने मुस्किराकर उत्तर दिया—"जब आपकी कृपा है, तो राजसिंहासन पर न भी बैठी, तो क्या हुआ। मुझे अपनी चिंता नहीं, अगर कुछ है, तो आपके पृथ्वीसिंह की। इसका कोई प्रबंध हो जाय, तो मैं निश्चिंत हो जाऊँ।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"बग़ैर तुम्हें अधिकार दिलाए तो हमारा पृथ्वीसिंह जायज़ वारिस नहीं हो सकता। इसीलिये पहले तुम्हारे साथ विवाह की रीति अदा करना है। इस विवाह को भी क़ानून द्वारा विहित बनाना है।"

अनूपकुमारी ने अपने हर्षावेग को दबाते हुए कहा—"मैं ये बातें कुछ नहीं समझती। आपकी जैसी इच्छा हो, करें, मैं कुछ

दख़ल देना नहीं चाहती। बस, इतनी प्रार्थना है कि इस दासी पर हमेशा ऐसा ही प्रेम-भाव बना रहे, जैसा आज है।"

अनूपकुमारी की नम्रता और विनय ने राजा सूरजबख़्शसिंह को नितांत वशीभूत कर लिया। उनकी एक-एक रग उसके प्रेम से भर गई।

उन्होंने पृथ्वीसिंह के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"क्यों घबराती हो, अनूपगढ़ की गद्दी पर पृथ्वीसिंह ही बैठेगा। लाल साहब का मुँह काला हो ही गया है। अब मुझे उम्मेद नहीं कि वह पुनः अनूपगढ़ लौटने का साहस करेगा। सुनने में आया है कि आजकल वह अपनी ससुराल में है। मैंने न-मालूम क्यों उसका भेद छिपा रखने के लिये उसकी दुलहिन को क़सम रखा दी थी, नहीं तो हज़रत अब तक ससुराल से भी निकाल दिए गए होते। कभी-न-कभी भेद तो खुलेगा ही, तब दूध की मक्खी की तरह निकाले जायँगे। सर रामकृष्ण की तरफ़ से कुछ थोड़ा-सा खटका है, मगर जब उन्हें मालूम होगा कि हज़रत ने जान-बूझकर उनकी लड़की का सत्यानास किया है, तो वह जल-भुनकर उसकी सहायता से इनकार कर देंगे। अकेले राजा किशोरसिंह मेरा क्या कर सकते हैं। मैंने पहले से ही सब मोरचे बाँध लिए हैं।"

यह कहकर वह प्रसन्नता से उमँग उठे। अनूपकुमारी भी उनकी ओर प्रशंसा-पूर्ण दृष्टि से देखने लगी। पृथ्वीसिंह चकित होकर अपने माता-पिता का मुख देखने लगा।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने पृथ्वीसिंह से कहा—"जाओ, अब तुम सो जाओ।"

अनूपकुमारी ने उसके नौकर को बुलाकर उसे सुला देने का आदेश दिया।

पृथ्वीसिंह के जाने के बाद राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"नए

दीवान बड़े चतुर और विद्वान् पुरुष मालूम होते हैं। जैसा उनका नाम है, वैसे ही उनके गुण हैं।"

अनूपकुमारी ने प्रसन्नता के साथ कहा—"कुशल क्यों न होंगे। वह इँगलैंड में कई वर्ष तक रहे हैं। हमारे बाबू मातादीन से तो हज़ारगुना अच्छे हैं।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने ज़ोर से हँसकर कहा—"उस वेदुम के गधे से हज़ार नहीं, करोड़गुना अच्छे हैं। वह तो महज़ दवाइयाँ बनाना जानता था, और मेरा ख़ज़ाना लूटकर अपना घर भरना। क्या बताऊँ, वह यहाँ से निकल गया, नहीं तो उसे ठीक करता।"

अनूपकुमारी ने कहा—"देखिए, इधर दो महीने में चार लाख की बचत हुई, और अगले महीने तक दस लाख आपके ख़ज़ाने में दिखा दूँगी। वह इतने नौकर सिर्फ़ इसलिये रक्खे था, जिसमें उसका रुआब चारो ओर रहे, और अपना घर भरने का मौक़ा मिले। आपने कभी उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"जितना मेरा क़ुसूर है, उतना ही तुम्हारा भी तो है। तुमने कब इस ओर ध्यान दिया।"

अनूपकुमारी ने अँगड़ाई लेते हुए कहा—"उसकी चाल ही ऐसी थी कि हम लोग उसके चक्र में सदैव फँसे रहे, और कभी इस ओर ध्यान देने का मौक़ा ही न मिला। वह सदा अपनी लच्छेदार बातों में उलझाए रहता था।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"चलो, अब उससे जन्म-भर को पिंड छूट गया। अब वह भी हमें अपना काला मुख नहीं दिखाएगा। हमारे नए दीवान अपनी चतुरता से सब काम पूरा कर लेंगे। इन्होंने आज अंतरजातीय बिल का मसविदा बनाकर तैयार कर दिया है। इतनी कुशलता के साथ बनाया है कि मैं दंग रह गया। उसे

पढ़ने से मालूम होता है कि वह ज़रूर क़ानून बन जायगा। अगर मैं कोई अड़चन देखूँगा, तो रुपयों से सबका मुँह बंद कर दूँगा। अगर इस काम में दो-तीन लाख रुपए ख़र्च भी हो जायँ, तो क्या हर्ज है?"

अनूपकुमारी ने कहा—"कोई परवा की बात नहीं। अगर ज़्यादा भी ख़र्च करना पड़े, तो कर देना। मैं बिला किसी ख़शख़शे के इतनी रक़म आपको दे सकूँगी।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने पुलकित होकर उसके कपोल पर सादर प्रेम-चिह्न अंकित करते हुए कहा—"मुझे सच्ची ख़ुशी तो उस दिन होगी, जब तुम्हें राज रानी बनाऊँगा, और लाल साहब और उसकी मा को सदा के लिये हटाकर तुम्हारा और पृथ्वीसिंह का मार्ग साफ़ कर सकूँगा।"

अनूपकुमारी ने उनके वक्ष पर लेटते हुए कहा—"जब आपने विचार लिया है, तो वह होगा ही। आप जो विचारते हैं, वह कर दिखाते हैं। आजकल के समय में आप-जैसा बात का धनी मिलना असंभव है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह उसकी प्रशंसा से बड़े प्रसन्न हुए, और उसे आदर के साथ अपने आलिंगन-पाश में बद्ध करके अपने प्रेम के उद्गार उसके कपोलों पर अंकित करने लगे।

थोड़ी देर बाद राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"जाओ, केशर की शराब लाओ।"

इन दिनों अनूपकुमारी उन्हें मदिरा पीने को बहुत कम देती थी, किंतु आज उसने कोई आपत्ति नहीं की। अलमारी से केशर की शराब निकाल लाई।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"यह क्या, तुम तो एक ही प्याला लाई हो। क्या तुम नहीं पिओगी। अगर तुम्हें नहीं पीना, तो फिर मेरे ही लिये क्यों लाईं?"

उनका स्वर अभिमान-मिश्रित था, जिसकी वेदना ने अनूपकुमारी के हृदय की कली-कली प्रस्फुटित कर दी।

अनूपकुमारी ने वंकिम कटाक्ष-सहित पूछा—"क्या एक प्याले से हम-तुम नहीं पी सकते? या साथ पीने में ज़ात चली जाने का डर है?"

यह कहकर वह हँस पड़ी, और वह भी प्रसन्नता से किलक उठे। उनके मन का अभिमान बह गया।

अनूपकुमारी ने प्याला भरते हुए कहा—"लीजिए, हाज़िर है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने उसे लेकर अनूपकुमारी की ओर बढ़ाते हुए कहा—"पहले तुम पिओ, तब मैं पिऊँगा।"

अनूपकुमारी ने वंकिम भ्रू-क्षेप करके कहा—"दासी तो हमेशा आपका प्रसाद ही पाती है। पहले आप पी लीजिए।"

राजा सूरजबख़्शसिंह किसी प्रकार पहले पीने को सहमत नहीं हुए। अंत में दोनो का एक-एक घूँट पीना तय हुआ।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने दो-तीन प्याले पीने के बाद आवेश में आकर कहा—"अनूप, तुम्हारा रूप दिन-पर-दिन निखरा पड़ता है। लोग कहते हैं, ज्यों-ज्यों बुढ़ापा समीप आता है, त्यों-त्यों आदमी का रूप भागता है, किंतु तुम्हारे संबंध में यह बात लागू नहीं होती। मालूम ऐसा होता है कि तुम्हारा रूप दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है, जो कभी कम होना जानता ही नहीं।"

अनूपकुमारी ने लज्जावती नारी की भाँति शरमाकर कहा—"यह आपका प्रेम है। आपका ज्यों-ज्यों प्रेम बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों मैं भी आपको सुंदर दिखाई पड़ती हूँ।"

अनूपकुमारी नवोढ़ा की भाँति लज्जा से संकुचित होकर उनके वक्षःस्थल से लिपट गई। उन्होंने उसे आवेश के साथ अपने हृदय से लगा लिया। मदिरा का आवेश दोनो को बेसुध करने लगा।

अनूपकुमारी ने उठने का प्रयत्न किया, किंतु राजा सूरजबख़्शसिंह ने उसे पकड़ते हुए कहा—"मैं इस समय तुम्हें अपने से दूर ज़रा देर के लिये भी नहीं हटने दूँगा।"

अनूपकुमारी ने प्रसन्नता से कहा—"आज वह दवा तुम्हें खिलाना चाहती हूँ, जो बाबू मातादीन आपको बनाकर दिया करते थे।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने प्रसन्न होकर कहा—"क्या तुम्हारे पास है? हो, तो लाओ। आज अपने 'विल' का मसविदा बन जाने की ख़ुशी में उसे ज़रूर खाऊँगा। क्या बताऊँ, वह मेरे आने से पहले चला गया, नहीं तो उसे निकालने से पहले कई शीशियाँ बनवा-कर ले लेता।"

अनूपकुमारी ने कहा—"अभी मेरे पास एक पूरी शीशी तैयार है। मैंने उससे लेकर पहले ही रख ली थी। उसकी दो बूँदें ही काफ़ी होती हैं। उसमें कम-से-कम पाँच सौ बूँद दवा होगी। जब ख़त्म होगी, तब देखा जायगा।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने उठते हुए कहा—"जाओ, उसे शीघ्र लाओ।"

अनूपकुमारी अपनी अलमारी से एक छोटी शीशी निकाल लाई, और जल के साथ दो बूँद मिलाकर राजा सूरजबख़्शसिंह को पीने के लिये दी। उन्होंने आतुरता के साथ उसके हाथ से वह शीशी छीन ली, और उसके मना करते रहने पर भी उस गिलास में तीन-चार बूँदें और टपका लीं।

अनूपकुमारी ने उनके हाथ से शीशी छीनते हुए कहा—"अच्छा, अब पी जाओ। तुम तो सब एक ही दिन में ख़त्म कर डालोगे।"

राजा सूरजबख़्शसिंह उसे एक ही साँस में पी गए। अनूप-कुमारी उस दवा को बंद करने चली गई।

उसके आने पर राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"तुमने तो वह दवा पी ही नहीं, अकेले मुझे पिला दी।"

अनूपकुमारी ने मलिन हास्य के साथ कहा—"मेरे हिस्से की तो तुमने ही पी ली। आज न सही, फिर कभी पिऊँगी।"

राजा सूरजबख़्शसिंह के उदर में दवा पहुँचते ही अत्यंत सुखद शीतलता उत्पन्न होने लगी। उनकी नाड़ियों में कंपन होने लगा, और केशरी मदिरा का नशा बड़े वेग से उतरने लगा।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने भयभीत होकर कहा—"अरे, आज क्या हुआ। इसमें पहले का-सा गुण नहीं दिखाई देता। आवेश के स्थान पर शीतलता उत्पन्न हो रही है, और नाड़ी-तंतुओं की शक्ति छिन्न-भिन्न हो रही है। यह क्या, केशरी शराब की उग्रता भी नष्ट हो रही है। अनूप, तुमने आज मुझे क्या पिला दिया। मालूम होता है, मेरी दशा भी लाल साहब की भाँति हो जायगी। हो जायगी नहीं, हो गई।"

यह कहकर वह भय-विह्वल दृष्टि से अनूपकुमारी की ओर देखने लगे।

अनूपकुमारी ने भय विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"यह क्या हुआ। मैंने तो कई दिनों पहले उससे यह दवा ली थी, जब उसके निकलने की बात भी नहीं थी। मालूम होता है, उसने जाते-जाते अपने जासूसों द्वारा कोई छल किया है, और असली शीशी निकलवाकर वैसी ही दूसरी शीशी रखवा दी है। इस शीशी में उसने वह दवा रख दी है, जो मनुष्य को नपुंसक बना देती है। जिस दिन वह बिदा हुआ था, उसने बड़ी तेज़ निगाहों से मेरी ओर देखा था, और कहा था कि माताादीन अपने शत्रुओं को कभी धोखे में नहीं मारता, चेतावनी देकर वार करता है। हमारे बैसवाड़े की यही रीति है। उसकी ही सारी साज़िश मालूम होती है। चलते-चलते भी वह अपना दाँव

खेल ही गया । आज न-मालूम मेरी बुद्धि में यह बात कैसे समा गई कि वह दवा खाई जाय। आज दो महीने से तो कभी यह बात मेरे मन में नहीं आई। हाय, आज सर्वनाश हो गया! मैं भी वह दवा पिए लेती हूँ।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने विह्वल स्वर में कहा—"नहीं, अब तुम्हारे पीने की ज़रूरत नहीं। मैंने ही पीकर अपना सर्वनाश किया, वही मेरे कुढ़ाने के लिये बहुत है। अब क्या फिर उसके पैर पड़ना पड़ेगा। चाहे जो कुछ हो, यह मैं नहीं करने का। दूसरी तरह इलाज करूँगा। लाल साहब को शायद इसी दुष्ट ने यही दवा पिलाकर पुरुषत्व-हीन कर दिया है। ऐसा नर-पिशाच जो न करे, वह थोड़ा। मैंने लाल साहब की दवा नहीं की, उसका प्रतिफल भगवान् ने दिया है।"

यह कहकर वह दोनो हाथ से अपना मुख छिपाकर रोने लगे। अनूपकुमारी भी अश्रु-पूर्ण नेत्रों से उनकी ओर देखने लगी। उसके हृदय में साहस न था कि उन्हें सांत्वना दे।

विधाता का विधान सहज स्वभाव से मुस्किराने लगा।

पंचम खंड

(१)

वालपेराइज़ो का बंदर प्राकृतिक है। उसके तट तक बड़े-बड़े जहाज़ अनायास जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त वह इतना सुरक्षित है कि तूफ़ान में भी जलयानों को कुछ हानि नहीं पहुँच सकती। चिली का सबसे बड़ा और मुख्य बंदर होने के कारण वहाँ की सरकार ने उसे सुंदर बनाने के लिये बहुत प्रयत्न किया है। साल में करोड़ों रुपए का माल आता-जाता है।

पंडित मनमोहननाथ, तार द्वारा समाचार पाकर, डॉक्टर नील-कंठ आदि को लेने स्वयं आ गए थे। प्रभात-काल में उनके जहाज़ ने वालपेराइज़ो के डाक्स में आकर लंगर डाला। जहाज़ डाक्स के समीप लगते ही वह प्रसन्नता के साथ डॉक्टर नीलकंठ को ढूँढ़ते हुए उनकी केबिन की ओर चले।

डॉक्टर नीलकंठ अपना सामान दुरुस्त कर चुके थे, और कपड़े पहन रहे थे कि पंडित मनमोहननाथ ने उत्फुल्ल कंठ से कहा—"स्वागत है! आपको बहुत कष्ट दिया। आप आ गए, यह मेरे परम सौभाग्य की बात है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने हर्षोद्रेक से उनसे हाथ मिलाते हुए कहा—"इतनी बड़ी पृथ्वी का अर्धखंड देखने का सौभाग्य आपकी ही कृपा से हुआ। इसके लिये मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ!"

पंडित मनमोहननाथ मुस्किराने लगे। इसके बाद दोनो ने एक दूसरे का कुशल-समाचार पूछा।

पंडित मनमोहननाथ ने उनके कमरे से बाहर आते हुए पूछा—"आभा सकुशल है, उसे कोई असुविधा तो नहीं हुई?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"कल से आभा की तबियत बहुत ख़राब हो गई है। ज्वर के वेग से वह भयानक कष्ट पा रही है। अभी तक उसे होश नहीं आया।"

पंडित मनमोहननाथ की प्रसन्नता तिरोहित हो गई। उन्होंने चिंतित स्वर में पूछा—"सहसा यह कैसे हो गया। इधर का जल-वायु तो बहुत स्वास्थ्य-प्रद है, फिर समुद्री हवा तो आज-कल बहुत लाभकारी है। इसका कारण क्या है?"

डॉक्टर नीलकंठ ने दुःखित स्वर में कहा—"कारण मेरी समझ में कुछ नहीं आता। हाँ, परसों रात को वह लगभग दस बजे तक बाहर डेक पर बैठी रही। मुमकिन है, उस वक़्त कुछ ठंडक लग गई हो। उस रात को उससे खाया नहीं गया, और सुबह से बड़ा तेज़ ज्वर चढ़ आया। वह किसी से बातचीत भी नहीं करती, चुप-चाप लेटी रहती है।"

पंडित मनमोहननाथ ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा—"आप घबराएँ नहीं, हमारे आश्रम के डॉक्टर हुसैनभाई चतुर तथा कुशल व्यक्ति हैं, उनकी दवा से सब ठीक हो जायगा। आजकल आश्रम छोटा-सा अस्पताल हो रहा है। वहाँ अभी तक दो लड़कियाँ बीमार थीं। उनमें से एक तो अच्छी हो गई है, और एक अभी तक बीमार पड़ी है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने पूछा—"वे दो लड़कियाँ कौन हैं?"

पंडित मनमोहननाथ ने जवाब दिया—"एक तो कैप्टेन जैकब्स की लड़की अमीलिया है, और दूसरी एक अभागिनी अज्ञात कुल की, जिसका ठीक-ठीक नाम-पता कुछ नहीं मालूम। राधा कहती है, उसका नाम माधवी है, और वह इसी नाम से हम लोगों में विख्यात है। राधा को तो अब आप जान गए होंगे, वह तो आपके साथ आई है। उसकी कहानी तो आप सुन ही चुके होंगे।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"हाँ, सब सुन चुका हूँ।"

इसी समय भारतेंदु ने आकर पंडित मनमोहननाथ को प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए उसकी ओर ग़ौर से देखा। भारतेंदु के शरीर की कृशता देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने सस्नेह पूछा—"क्या तुम बीमार रहे?"

भारतेंदु ने सिर झुकाए हुए मलिन स्वर से कहा—"जी नहीं, मैं बीमार तो नहीं था।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"इनकी बीमारी के बारे में मैं कुछ नहीं जानता। हाँ, इधर एक पुस्तक लिखने में इन्होंने बहुत परिश्रम किया है, इसी से कुछ स्वास्थ्य में ख़राबी आ गई है।"

भारतेंदु ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"अब सब ठीक हो जायगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आप लोग चलें, मैं आभा और चाची को लेकर आता हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"चाची कौन?"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"आभा की मा के मरने के बाद उसकी एक रिश्तेदारिन ने, जो मेरे यहाँ रहती थीं, उनका पालन किया है, उनका आभा पर इतना स्नेह है कि वह उसे छोड़कर क्षण-भर भी नहीं रह सकतीं। आभा के आने से उन्हें आना ही पड़ा, हालाँकि उन्हें बेहद तकलीफ़ और असुविधा हुई है। वह पुराने ख़यालात की हैं, समुद्र-यात्रा पाप समझती हैं, किंतु स्नेह ने उनसे वह भी करवा लिया। आभा की मा उसे चाची कहती थीं, इसलिये मैं भी उन्हें वही कहता हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"उनके आने से ठीक ही हुआ। आपकी भी चिंता दूर हो गई, नहीं तो वहाँ वह अकेले कैसे रहतीं।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"देख लीजिए, कल से आभा बीमार

है, वह खाना-पीना भूलकर उसके पास बैठी हैं, और बार-बार यही कहती हैं कि वह अच्छी हो जाय, और उसकी पीड़ा उनके शरीर पर आ जाय ।"

पंडित मनमोहननाथ ने गद्गद स्वर से कहा—"ऐसे स्नेह के चित्र तो भारतीय नारियों में ही देखने को मिलते हैं, जिनसे आज तक भी उसका सिर ऊँचा है ।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उनकी बात का अनुमोदन करते हुए कहा—"भारतीय स्त्रियों की आत्मा प्रेम और स्नेह से सराबोर है । उनका जीवन त्याग और बलिदान की कहानी है ।"

इसी समय राधा ने आकर उन्हें प्रणाम किया ।

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"क्या तुम अपनी मा को भी साथ लाई हो ?"

राधा ने उत्तर दिया—"जी हाँ, उन्हें वहाँ किसके भरोसे छोड़ आती ।"

पंडित मनमोहननाथ ने संतुष्ट होकर कहा—"बड़ा अच्छा हुआ । अब हमारा आश्रम आप लोगों के हर्ष-नाद से मुखरित हो उठेगा ।"

डॉक्टर नीलकंठ ने पूछा—"स्वामीजी कहाँ हैं ? वह नहीं दिखलाई देते ।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"वह आश्रम में हैं । उन्हें प्रबंध करने के लिये छोड़ आया हूँ । वह तो आने के लिये बहुत छटपटा रहे थे; किंतु मैं ही उन्हें नहीं लाया ।"

डॉक्टर नीलकंठ ने पूछा—"यहाँ से आश्रम कितनी दूर होगा ?"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"लगभग तीस मील । मोटर से अधिक-से-अधिक दो घंटे का सफ़र है । बीस मील तक तो पक्की सड़क है, और आगे कुछ ख़राब होने से धीरे-

धीरे जाना होता है। मैंने सड़क बनाने का काम शुरू करा दिया है। दो-तीन महीने में बनकर तैयार हो जायगी।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"तब तो आभा के ले जाने में बड़ी असुविधा होगी।"

पंडित मनमोहननाथ ने मुस्किराहट के साथ कहा—"नहीं, असुविधा कुछ न होगी। मैं यहाँ के अस्पताल से 'एंबूलेंस कार' मँगवा लूँगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"तब तो ठीक है। काम चल जायगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"चलिए, आभा को तो देख आवें।"

डॉक्टर नीलकंठ और राधा के साथ वह आभा की कैबिन की ओर चले गए।

---

(२)

स्वामी गिरिजानंद माधवी के कमरे में बैठे थे, जब डॉक्टर नीलकंठ प्रभृति आश्रम में पहुँचे। मध्याह्न-काल था, और सब लोग गरमी से परेशान थे। डॉक्टर नीलकंठ और स्वामी गिरिजानंद मिलकर बड़े प्रसन्न हुए, किंतु आभा की बीमारी से उन्हें कुछ कष्ट हुआ।

आभा और गंगा के ठहरने के लिये अलग प्रबंध किया गया, तथा राधा अपनी मा यशोदा के साथ एक दूसरे कमरे में ठहराई गई। स्वामी गिरिजानंद ने उनकी ओर ध्यान तक नहीं दिया, और न उन्हें देखा ही। वह डॉक्टर नीलकंठ से बातें करते रहे। यथासमय डॉक्टर हुसैनभाई और अमीलिया का भी परिचय कराया गया।

भारतेंदु को देखकर अमीलिया का हर्ष-स्रोत स्तंभित हो गया। उसने उनकी ओर क्षण-भर देखा, और ज्यों ही वह उससे मिलने के लिये आगे बढ़े, वह तेज़ी से अदृश्य हो गई। भारतेंदु लज्जा, भय और आशंका से सिहरकर अपने कमरे में चले गए। थोड़ी देर बाद अमीलिया माधवी के कमरे में चली गई।

तीसरा पहर था। दिवाकर की मयूखों की ज्वाला कुछ शांत हो गई थी। ब्यूनेसबोका से शीतल पवन आकर मन प्रफुल्लित करने का प्रयत्न कर रहा था।

डॉक्टर नीलकंठ, पंडित मनमोहननाथ और स्वामी गिरिजानंद बैठे हुए आश्रम के संबंध में अपने-अपने विचार प्रकट कर रहे थे।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"इस आश्रम का स्थान-निर्वाचन करने में आपने अत्यंत बुद्धिमत्ता का काम किया है, क्योंकि यहाँ प्रकृति का पूर्ण सौंदर्य निखरा पड़ता है।"

स्वामी गिरिजानंद ने उनकी बात का अनुमोदन करते हुए कहा—"बेशक, ये ही शब्द मैंने भी कहे थे, जब पहलेपहल मैं यहाँ आया था। प्राकृतिक सौंदर्य का विकास यहाँ पूर्ण रूप से हुआ है, उसी प्रकार साम्य-भाव का विकास यहाँ से आरंभ होकर संसार में फैलेगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्नता के साथ कहा—"ईश्वर करे, आपका कहना सत्य हो। मेरी आत्मा को शांति उसी दिन मिलेगी, जब मनुष्यों की दासता मिट जायगी, समता के भाव से संसार ओत-प्रोत हो जायगा। हम सब गुलामी के बंधन में आबद्ध हैं, उसका नाश करना परमावश्यक है। हम संसार में केवल अपने स्वार्थ-साधन के लिये नहीं अवतीर्ण हुए, वरन् सबका—मनुष्य-मात्र का—हित करने के लिये। जब तक हम भिन्न भाव रक्खेंगे, तब तक हमारा कल्याण नहीं हो सकता। हम एक हैं—मनुष्य के नाते एक हैं, और हमारा कर्तव्य है कि हम उस एकता को निबाहें।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"किंतु सब मनुष्य बराबर नहीं हो सकते, अतएव समता होना असंभव है। अपने संबंधियों का ध्यान मनुष्य को रहता ही है, क्योंकि उनका संबंध रक्त-मांस से होता है। पिता-पुत्र और भाई-भाई का स्नेह भुला देने की चीज़ नहीं। उनके हितों का ध्यान तो रखना ही पड़ता है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"यह सब स्वभाव और रूढ़ि के कारण है। चूँकि हमारे पिता ने हमारे लिये पूँजी इकट्ठा करके सौंपी है, इसलिये हम भी अपने पुत्र को पूँजी देने के लिये लालायित रहते हैं। यदि हम उस रूढ़ि को त्याग दें, तो इसका विचार स्वयं नष्ट हो जायगा। इसके अतिरिक्त हमें अभी तक केवल अपनी क्षमता के ऊपर विश्वास है, और हम अपने को उस व्यापक मनुष्य-समाज से भिन्न समझकर अपना एक छोटा घर बनाते हैं,

जिसमें दूसरों के प्रवेश करने की मनाही है, इस कारण हम इतने क्षुद्र और संकीर्ण स्वभाव के हो गए हैं। यदि हम अपने समाज को उस रूप में ढालें कि किसी के भी स्वार्थ का ध्यान न रहे, केवल सामूहिक स्वार्थ का विचार हो—और सुविधाएँ भी समान रूप से सबको प्राप्त हों, तो हमारे विचारों की संकीर्णता स्वयं नष्ट हो जायगी।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"इससे आप मनुष्य-मात्र के भावों, विचारों और बुद्धि की विभिन्नता को कैसे दूर करेंगे। इस विभिन्नता का नाश असंभव है, क्योंकि वह हमारे वश की बात नहीं, और वास्तव में इसी विभिन्नता का नाम ही मानवता है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आपके हाथ में पाँच उँगलियाँ हैं, क्या वे बराबर हैं, किंतु फिर भी वे आपके हाथ में हैं, और उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार से उपयोगिता है। उसी प्रकार मनुष्य-समाज में विभिन्नता क़ायम रहेगी, और हम सबको बराबर नहीं बनाना चाहते, न बराबर बना ही सकते हैं। आपकी किसी उँगली में दर्द पैदा होता है, तो उसका असर कुल हाथ पर पड़ता है, और आप कभी दूसरी उँगली में वैसा दर्द पैदा होने देना नहीं चाहते। अथवा, दूसरे शब्दों में, आप यही चाहते हैं कि समान रूप से पाँचों उँगलियों को अपनी-अपनी सुविधाएँ प्राप्त रहें; ठीक उसी प्रकार हम इस समाज में चाहते हैं कि जीवन की सब सुविधाएँ मनुष्य-मात्र को प्राप्त रहें। देखिए, आप लिखने का काम केवल तीन उँगलियों से करते हैं, और सबसे ज़्यादा अँगूठे से, किंतु दूसरी उँगलियाँ भी उसमें सहायता प्रदान करती हैं। कान खुजलाने, किसी को संकेत करने अथवा भय-प्रदर्शन में आप तर्जनी से काम लेते हैं। इसी प्रकार समाज के भिन्न-भिन्न भाव, विचार और बुद्धिवाले पुरुषों को तद्रूप काम करना चाहिए, क्योंकि समाज में भी तो

भिन्न-भिन्न अवस्था के काम हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि इस सृष्टि में उतने ही भावों, बुद्धियों और विचारों के मनुष्य उत्पन्न होते हैं, जिनकी आवश्यकता होती है। वे समाज के किसी विशेष कार्य को संपादित करते हैं, जो दूसरा न करता है, और न कर सकता है। हम किसी मनुष्य की अवहेलना नहीं कर सकते, क्योंकि वह हमारे समाज का एक आवश्यक अंग है। शरीर के सब अवयवों को यह अधिकार समान भाव से प्राप्त है कि वे दुखी न हों, तथा समान रूप से पुष्ट हों। और, प्रकृति भी हमारे शरीर में वैसा ही व्यवहार करती है। रक्त का संचालन हमारी प्रत्येक नस में होता है, वहाँ तो हृदय यह विचार नहीं करता कि पैर की उँगलियों में, जो सदैव हमसे इतनी दूर और निम्न हैं, क्यों रक्त पहुँचाऊँ? वह तो मस्तिष्क या हाथ के लिये अधिक मात्रा में रक्त संचित करके या दूसरी नाड़ियों से बचाकर उन्हें नहीं देता, तब हम क्यों मनुष्य-समाज-रूपी शरीर में पूँजी का एक हिस्सा दूसरे के अधिकार से दग़ा, फ़रेब, जाल-साज़ी, शक्ति और चातुर्य से छीनकर अपने पुत्र या अन्य किसी व्यक्ति-विशेष को दें। हमारा यह काम सर्वथा अन्याय-पूर्ण है, और इसीलिये युद्ध, कलह, द्वेष और ईर्ष्या के भाव हैं। जहाँ समान रूप से सुविधाएँ प्राप्त हैं, वहाँ ये नीच भाव आपको देखने को न मिलेंगे। आपके हाथ को आपके पैर से ईर्ष्या तो नहीं होती, वरन् इससे विपरीत सहानुभूति है। यदि आपकी भुजाएँ बलिष्ठ हैं, तो आप अपने पैरों को भी वैसा बनाना चाहते हैं। साम्यवाद का प्रचार होने से ही संसार की ईर्ष्या, द्वेष और कलह सब मिटेंगे।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आपकी उपमा और उपमेय में विभिन्नता है, इसलिये वह शुद्ध नहीं। हम शरीर के पैमाने पर बहुत-से मनुष्यों के समाज की तुलना नहीं कर सकते।"

पंडित मनमोहननाथ इसका उत्तर देने ही वाले थे कि दौड़ती हुई अमीलिया ने आकर कहा—"आप लोग माधवी के कमरे में जल्दी चलें, एक दुर्घटना हो गई है।"

अमीलिया ने उनके उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की, वह तुरंत चली गई। पंडित मनमोहननाथ को वह प्रसंग छोड़कर जाने की इच्छा नहीं थी, किंतु अमीलिया का उनके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना चला जाना यह सूचित कर रहा था कि अवश्य कोई दुर्घटना हुई है।

पंडित मनमोहननाथ शीघ्रता से माधवी को देखने चल दिए।

स्वामी गिरिजानंद और डॉक्टर नीलकंठ बैठे रहे।

थोड़ी देर बाद स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"माधवी की दशा पागलों-जैसी अवश्य है, किंतु मुझे विश्वास नहीं होता।"

डॉक्टर नीलकंठ ने पूछा—"वह पागल कैसे हो गई?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"वह कई दिनों तक बेहोश पड़ी रही। जब उसे होश हुआ, तो पुरानी स्मृति एकदम लोप हो गई। अब वह अपने पति और एक-दो वर्ष की लड़की के बारे में प्रलाप करती रहती है। डॉक्टर ने अमीलिया द्वारा उसकी जाँच कराई, तो वह अविवाहित साबित हुई। अब समझ में नहीं आता कि जब वह कुमारी है, तो एक बच्चे की मा कैसे हो गई। इसी अनुमान के आधार पर डॉक्टर उसे पागल कहते हैं। उसकी बातचीत सुनो, तो यह मालूम होता है कि वह अपने पूरे होश में है। उसका प्रलाप सुनकर वास्तव में हृदय में बड़ी वेदना होती है।"

डॉक्टर नीलकंठ की उत्सुकता जाग्रत् हो गई। उन्होंने पूछा—"क्या मैं भी उसे देख सकता हूँ?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"क्यों नहीं। चलिए, आप भी देख लीजिए। उसकी हालत बड़ी शोचनीय है। वह कहती है कि पंडितजी उसे उसके पति और पुत्री के पास से हरण कर लाए

हैं। वह उन्हें बेतरह गालियाँ सुनाती है। एक दिन वह झील में डूबने जा रही थी, भाग्य-वश मैं वहाँ उपस्थित था, उसे पकड़ लिया, नहीं तो वह ज़रूर मर जाती, क्योंकि उसमें घड़ियाल और मगर बहुतायत से हैं।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"चलिए, उसे हम लोग भी देख आवें।"

यह कहकर वह उठकर चलने को उद्यत हुए।

स्वामी गिरिजानंद उन्हें माधवी के कमरे की ओर ले गए।

इस समय उस कमरे में राधा, अमीलिया, पंडित मनमोहननाथ और डॉक्टर हुसैनभाई थे। माधवी आँखें बंद किए हुए लेटी थी। डॉक्टर हुसैनभाई उसकी नाड़ी की परीक्षा कर रहे थे।

डॉक्टर नीलकंठ माधवी के सिरहाने, पंडित मनमोहननाथ की बग़ल में, खड़े हो गए।

डॉक्टर हुसैनभाई ने नाड़ी-परीक्षा करके कहा—"अभी तो कोई भय नहीं मालूम होता। कमज़ोरी के कारण उत्तेजना अधिक है।"

पंडित मनमोहननाथ ने डॉक्टर नीलकंठ से कहा—"इस लड़की को लेकर मैं बड़े संकट में पड़ गया हूँ। जब इसकी असहाय दशा की ओर ध्यान जाता है, तो हृदय दया से परिपूर्ण हो जाता है, और मन को बहुत कष्ट होता है। मैंने इसका बहुत इलाज किया, किंतु सुधार के लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते। डॉक्टर हुसैनभाई भी हार गए हैं। एक बार झील में डूबने चली गई थी, भाग्य-वश स्वामीजी ने इसकी रक्षा की। तब से मैं इसे अकेला नहीं छोड़ता। आज आप लोगों के आने से एक नया भाव उठ खड़ा हुआ है।"

स्वामी गिरिजानंद ने पूछा—"वह क्या?"

पंडित मनमोहननाथ कहने लगे—"बहुत-से लोगों के कंठ-स्वर सुनकर वह कहती है, 'मेरा पति मुझे लेने आ गया है, मैं अब

जाऊँगी ।' यह कहकर वह जाने लगी, तो अमीलिया ने उसे पकड़ा। वह अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी। इस धर-पकड़ में उसके कुछ चोट आ गई है। इस वक्त, कमज़ोरी के कारण शिथिल होकर पड़ी है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने एक उत्तेजक दवा खिलाते हुए कहा—"इस दवा से उसकी शिथिलता दूर हो जायगी।"

माधवी बिना किसी आपत्ति के दवा पी गई।

---

(३)

दवा पीने के थोड़ी देर बाद माधवी की शिथिलता दूर हो गई। उसने अपने नेत्र खोलकर क्षण-भर डॉक्टर हुसैनभाई की ओर देखा, और फिर बंद कर लिए।

पंडित मनमोहननाथ ने उसकी बग़ल में आकर पूछा—"माधवी, अब कैसी तबियत है ?"

उनका स्वर स्नेह से आर्द्र था।

माधवी ने उनकी ओर पुनः देखकर कहा—"मैंने तुमसे कहा था कि मेरे स्वामी तुम्हारा पता अवश्य लगा लेंगे, चाहे तुम मुझे पाताल में छिपा आओ। मैंने आज उनका कंठ-स्वर सुना है। वह अवश्य आए हैं, और अब तुम मुझे रोक नहीं सकते। वह भगवान् रामचंद्र की तरह आए हैं, और तुम्हें रावण की भाँति पराजित कर मुझे ले जायँगे। मैं अब बहुत दिनों तक तुम्हारी क़ैद में नहीं रह सकती।"

यह कहकर वह चुप हो गई, और सोचने लगी।

पंडित मनमोहननाथ ने डॉक्टर नीलकंठ से कहा—"बस, इसी तरह का प्रलाप है।"

वह भी विस्मय के साथ विचारने लगे।

माधवी पुनः कहने लगी—"मुझे वे दिन याद पड़ते हैं, जब वह हमेशा मुझे चिढ़ाया करते थे, और एक दिन मैंने खीझकर कहा था—अगर बहुत तंग करोगे, तो मैं कहीं चली जाऊँगी, और फिर कभी नहीं आऊँगी। उन्होंने कहा था, अगर तुम्हें यमराज

भी उठा ले जायगा, तो मैं उसके पास से छीन लाऊँगा। उनका मेरे ऊपर असीम प्रेम है, और प्रेम-शक्ति के आगे सब शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। वह अवश्य मेरा उद्धार करेंगे। समझ में नहीं आता कि इतने दिनों तक वह कैसे अकेले रहे। जब वह कॉलेज में चार घंटे मुश्किल से रहते थे, तब इतने दिन उनके किस प्रकार व्यतीत हुए। एक दिन की बात और याद पड़ती है; उन्होंने एक दिन कहा कि मैं तुम्हारा फ़ोटो खिंचवाना चाहता हूँ। मैं फ़ोटो खिंचाना अपशकुन मानती थी। मेरी अम्मा कहा करती थीं कि जो फ़ोटो खिंचवाता है, वह जल्दी मर जाता है। मैं इसी भय से फ़ोटो खिंचाने के लिये तैयार न होती थी, और उनकी ज़िद थी कि चाहे जो हो, फ़ोटो खिंचाया जायगा। हम दोनो का झगड़ा हमेशा चाची ही निपटाया करती थीं। चाची ने भी उन्हें बहुत समझाया, लेकिन वह माने नहीं। तब मैंने उनसे गुस्से में कहा कि तुम मुझे जल्दी मारना चाहते हो। उस दिन भी उन्होंने कहा था कि मैं सावित्री की तरह तुम्हें पुनर्जीवित कर लूँगा, क्योंकि मेरा प्रेम छल-रहित और निश्चल है; इसकी अवहेलना यमराज भी नहीं कर सकते। मैंने उनसे कहा कि सावित्री तो मेरा नाम है, वह प्रभाव तो मेरे ही पास है। तब उन्होंने कहा कि वह तो सत्ययुग की बात है, अब कलिकाल में उलटा हो गया है। अंत में हारकर मुझे फ़ोटो खिंचवाना पड़ा। जब फ़ोटो बनकर आया, तो मैंने कहा था कि जब मैं मर जाऊँगी, तो इसी को देखकर मेरी याद कर लिया करना। उन्होंने इसके जवाब में कहा था—ठीक है, जब मरोगी, तब देखकर याद करूँगा, और अभी तो रोज़ पूजा करने में कोई हर्ज नहीं। मेरे जीवित रहते तुम कभी नहीं मर सकतीं। मेरे प्रेम-कवच से आवृत तुम्हारे शरीर को यमराज भी स्पर्श करने में शंकित होंगे।"

माधवी चुप हो गई। डॉक्टर नीलकंठ के मुख की श्री अंतर्हित हो गई थी। वह बड़े ध्यान से माधवी की ओर देख रहे थे।

पंडित मनमोहननाथ की दृष्टि सहसा उन पर पड़ी। उन्होंने भयभीत होकर कहा— डॉक्टर नीलकंठजी, क्या आपकी तबियत कुछ ख़राब है?"

माधवी ने अपने नेत्र खोलकर देखा, और पूछा—'क्या नाम लिया, क्या वह आ गए? हाँ, ज़रूर आए हैं। यही तो उनका नाम है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने माधवी के सामने आकर पूछा—"तुम कौन हो, जो अपने उर में इतने भेद छिपाए हुए हो? तुम क्या कोई स्वर्ग की देवी हो?"

वह इसके आगे न कह सके। अतीत की स्मृति ने उनका कंठ अवरुद्ध कर दिया।

माधवी की विस्फारित दृष्टि स्थिर हो गई। वह उनकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देखने लगी।

माधवी ने अस्फुट स्वर में कहा—"तुम आ गए? मैं तुम्हें पहचान गई, तुममें चाहे जितना परिवर्तन हो जाय, मैं तुम्हें नहीं भूल सकती। आह! आज मैं कितनी प्रसन्न हूँ। मैं जानती थी कि तुम आओगे।"

यह कह वह उठकर बैठ गई, और डॉक्टर नीलकंठ की पद-धूलि लेने के लिये अग्रसर हुई। अमीलिया ने उसे रोकने का प्रयत्न किया।

माधवी ने सक्रोध कहा—"अब तुम लोगों की शक्ति नहीं कि मुझे मेरे स्वामी के पास से जुदा कर सको। वह मेरे सामने हैं। मुझमें पूर्ण शक्ति आ गई है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने अमीलिया को अलग करते हुए कहा—

"उसे छेड़ो नहीं, यह प्रलाप नहीं, सत्य घटना है। मेरा स्वप्न आज सत्य हुआ। यह उस जन्म की आभा की मा है।"

माधवी ने प्रसन्न होकर कहा—"हाँ, मेरी आभा, आभा, आभा। मैं उसका नाम भूल गई थी, अब तुम्हारे कहने से याद आया। वह कहाँ है, क्या उसे अपने साथ नहीं लाए? लाओ, लाओ, मेरी आभा को। इतने दिनों तक वह कैसे रही होगी। बिस्कुट और दूध अपने साथ लाए हो या नहीं? क्या तुम नहीं जानते कि उसे बिस्कुट कैसे अच्छे लगते हैं। चाची को क्यों नहीं लाए? उन्हीं के पास आभा रहती होगी। आभा उन्हें बहुत हिल गई थी, रात-दिन उनके पास रहती थी। तुम बोलते नहीं, क्या आभा को नहीं लाए?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आभा भी आई है, और चाची भी आई हैं। तुम घबराओ नहीं। मैं अभी उन्हें बुलाता हूँ।"

माधवी बड़ी शांति से लेट गई, और कहा—"तुम मेरे पास सिरहाने बैठ जाओ, जैसे लखनऊ में, जब मैं कभी बीमार पड़ती थी, बैठते थे। मुझे ये लोग न-मालूम कैसे तुम्हारे पास से छीन लाए, और मुझे बहुत कष्ट दिया है। मैं तो अपने जीवन से इतना ऊब गई थी कि मरना चाहती थी, क्योंकि यह मुझे विश्वास था कि मरने के बाद भी तुम्हें पाऊँगी। इन लोगों ने मुझे मरने भी न दिया। इन लोगों ने मुझे पागल बना रक्खा है। आज शांति मिली है। इन सब लोगों को जाने के लिये कह दो। पुलिस में इन्हें पकड़वा क्यों नहीं देते।"

डॉक्टर नीलकंठ ने आश्वासन देते हुए कहा—"तुम घबराओ नहीं, उत्तेजित भी न हो। मैं सबको पकड़वा दूँगा, और सबको सज़ा मिलेगी। तुम बहुत उत्तेजित न हो।"

उनके हृदय का चिर-संचित प्रेम उमड़कर बारंबार बाँध तोड़ने

का प्रयास कर रहा था, किंतु वह उसे बड़ी मुश्किल से रोके हुए थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि माधवी पूर्वजन्म की आभा की मा है। स्वामी गिरिजानंद और पंडित मनमोहननाथ बड़े आश्चर्य से उन दोनो की बातचीत सुन रहे थे। उनके सामने केवल एक प्रश्न था—"क्या पूर्वजन्म वास्तव में सत्य है?"

माधवी ने उनका हाथ प्रेम से पकड़ते हुए कहा—"आज कितना सुखमय दिन है! मेरी सब चिंताओं का अंत हो गया। तुम आभा को नहीं लाए हो, मुझसे झूठ कहते हो। मैं ही पागल हूँ, तुम आभा को कैसे ला सकते हो, वह अभी दूध-पीती बच्ची है। जहाज़ पर आने से उसे कष्ट होता। ये लोग भी मुझे यहाँ जहाज़ से लाए हैं। तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं यहाँ हूँ। तुमने ज़रूर पुलिस में इत्तिला दी होगी। ये लोग कौन हैं, यह याद नहीं पड़ता कि मैं कैसे इनके जाल में फँस गई। मैं बीमार थी, तुम मेरा इलाज डॉक्टर बैनर्जी से करवा रहे थे। वह कहते थे कि क्षय है, जीर्ण ज्वर है। तुमने उनकी बात पर विश्वास कर लिया था, और रात-दिन रोया करते थे। तुम चाहे जितना छिपाओ, क्या मैं जानती नहीं। मैं तुमसे कहती थी कि मैं ज़रूर अच्छी हो जाऊँगी। देखो, मैं अच्छी हो गई। अगर ये दुष्ट मुझे हरण कर न लाए होते, तो मैं वहीं रहती। एक दिन रात को मेरी तबियत बहुत घबराने लगी, ऐसा मालूम हुआ कि प्राण निकल रहे हैं। मैं तुम्हारे गले से भयभीत होकर लिपट गई। तुमने मुझे कोई दवा पिलाई, इसके बाद मैं बेहोश हो गई। जब आँख खुली, तो मैंने अपने को इन दुष्टों के बीच में पाया। मैंने इनसे बहुत विनय की कि मुझे मेरे पतिदेव और आभा के पास पहुँचा दो, किंतु भला ये लोग कब सुनते हैं। मुझे बहकाकर, जहाज़ पर चढ़ाकर यहाँ ले आए। इनका सरदार मेरा पिता बनकर तुम्हारा नाम-पता पूछा

"उसे छेड़ो नहीं, यह प्रलाप नहीं, सत्य घटना है। मेरा स्वप्न आज सत्य हुआ। यह उस जन्म की आभा की मा है।"

माधवी ने प्रसन्न होकर कहा—"हाँ, मेरी आभा, आभा, आभा। मैं उसका नाम भूल गई थी, अब तुम्हारे कहने से याद आया। वह कहाँ है, क्या उसे अपने साथ नहीं लाए? लाओ, लाओ, मेरी आभा को। इतने दिनों तक वह कैसे रही होगी। बिस्कुट और दूध अपने साथ लाए हो या नहीं? क्या तुम नहीं जानते कि उसे बिस्कुट कैसे अच्छे लगते हैं। चाची को क्यों नहीं लाए? उन्हीं के पास आभा रहती होगी। आभा उन्हें बहुत हिल गई थी, रात-दिन उनके पास रहती थी। तुम बोलते नहीं, क्या आभा को नहीं लाए?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आभा भी आई है, और चाची भी आई हैं। तुम घबराओ नहीं। मैं अभी उन्हें बुलाता हूँ।"

माधवी बड़ी शांति से लेट गई, और कहा—"तुम मेरे पास सिरहाने बैठ जाओ, जैसे लखनऊ में, जब मैं कभी बीमार पड़ती थी, बैठते थे। मुझे ये लोग न-मालूम कैसे तुम्हारे पास से छीन लाए, और मुझे बहुत कष्ट दिया है। मैं तो अपने जीवन से इतना ऊब गई थी कि मरना चाहती थी, क्योंकि यह मुझे विश्वास था कि मरने के बाद भी तुम्हें पाऊँगी। इन लोगों ने मुझे मरने भी न दिया। इन लोगों ने मुझे पागल बना रक्खा है। आज शांति मिली है। इन सब लोगों को जाने के लिये कह दो। पुलिस में इन्हें पकड़वा क्यों नहीं देते।"

डॉक्टर नीलकंठ ने आश्वासन देते हुए कहा "तुम घबराओ नहीं, उत्तेजित भी न हो। मैं सबको पकड़वा दूँगा, और सबको सज़ा मिलेगी। तुम बहुत उत्तेजित न हो।"

उनके हृदय का चिर-संचित प्रेम उमड़कर बारंबार बाँध तोड़ने

का प्रयास कर रहा था, किंतु वह उसे बड़ी मुश्किल से रोके हुए थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि माधवी पूर्वजन्म की आभा की मा है। स्वामी गिरिजानंद और पंडित मनमोहननाथ बड़े आश्चर्य से उन दोनो की बातचीत सुन रहे थे। उनके सामने केवल एक प्रश्न था—"क्या पूर्वजन्म वास्तव में सत्य है ?"

माधवी ने उनका हाथ प्रेम से पकड़ते हुए कहा—"आज कितना सुखमय दिन है ! मेरी सब चिंताओं का अंत हो गया। तुम आभा को नहीं लाए हो, मुझसे झूठ कहते हो। मैं ही पागल हूँ, तुम आभा को कैसे ला सकते हो, वह अभी दूध-पीती बच्ची है। जहाज़ पर आने से उसे कष्ट होता। ये लोग भी मुझे यहाँ जहाज़ से लाए हैं। तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं यहाँ हूँ। तुमने ज़रूर पुलिस में इत्तिला दी होगी। ये लोग कौन हैं, यह याद नहीं पड़ता कि मैं कैसे इनके जाल में फँस गई। मैं बीमार थी, तुम मेरा इलाज डॉक्टर बैनर्जी से करवा रहे थे। वह कहते थे कि क्षय है, जीर्ण ज्वर है। तुमने उनकी बात पर विश्वास कर लिया था, और रात-दिन रोया करते थे। तुम चाहे जितना छिपाओ, क्या मैं जानती नहीं। मैं तुमसे कहती थी कि मैं ज़रूर अच्छी हो जाऊँगी। देखो, मैं अच्छी हो गई। अगर ये दुष्ट मुझे हरण कर न लाए होते, तो मैं वहीं रहती। एक दिन रात को मेरी तबियत बहुत घबराने लगी, ऐसा मालूम हुआ कि प्राण निकल रहे हैं। मैं तुम्हारे गले से भयभीत होकर लिपट गई। तुमने मुझे कोई दवा पिलाई, इसके बाद मैं बेहोश हो गई। जब आँख खुली, तो मैंने अपने को इन दुष्टों के बीच में पाया। मैंने इनसे बहुत विनय की कि मुझे मेरे पतिदेव और आभा के पास पहुँचा दो, किंतु भला ये लोग कब सुनते हैं। मुझे बहकाकर, जहाज़ पर चढ़ाकर यहाँ ले आए। इनका सरदार मेरा पिता बनकर तुम्हारा नाम-पता पूछा

करता था, लेकिन मैंने नहीं बताया। मुझे भय था कि कहीं तुम्हें भी दुःख न दे। एक दिन मैंने कहा था कि मेरे पिता का नाम पंडित लक्ष्मीकांत है, तुम ज़बरदस्ती कहाँ से मेरे पिता बन गए। मुझे पिता बनकर ठगना चाहते थे। अच्छा, पिताजी का कोई समाचार मिला है? उन्होंने तो हमसे अपना संबंध ही तोड़ लिया। उन्हें अपनी दुलारी सावित्री की याद अब शायद नहीं आती। अम्मा तो अच्छी हैं? भैया कमलाकांत क्या अभी तक कॉलेज में पढ़ते हैं? वह ज़रूर मुझे चाहते थे। पिताजी का इतना कठोर आदेश होने पर भी मेरे पास आते और मेरे यहाँ खाते थे।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"अब तुम आराम करो। मैं अब तुम्हें छोड़कर न जाऊँगा।"

माधवी ने कहा—"हाँ, अब मैं सोऊँगी। अभी तो मारे भय के नींद नहीं आती थी। मैं डरती थी कि अगर सो गई, तो ये लोग मुझे दूसरी जगह ले जाकर छिपा आवेंगे, और जब तुम मुझे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आओगे तब नहीं पाओगे। किंतु अब मुझे कोई डर नहीं। तुम्हारे पास से यमराज भी मुझे नहीं ले सकते, यह तो तुम कहा ही करते थे।"

यह कहकर माधवी मुस्किराई। डॉक्टर नीलकंठ को भी हँसी आ गई। अतीत की स्मृति ने बड़े ज़ोर से चुटकी ली।

माधवी फिर कहने लगी—"आज मेरे पास बहुत कुछ कहने को है। मुझे कह लेने दो। शायद ये दुष्ट आज रात को ही मौका पाकर मार डालें। तुम इनका विश्वास मत करना। इनके साथ एक भगवा पहने महात्मा भी हैं, वैसे ही, जिनसे तुम सदा घृणा करते थे। मैं भी उनसे घृणा करती हूँ। उसे देखते ही मुझे गंगाजी के किनारे बैठनेवाले रँगे सियारों की याद आ जाती है, जिन्होंने मेरी सखी कमला को भ्रष्ट कर जाह्नवी में डूब मरने के

लिये बाध्य किया था। तुम्हें वह घटना याद है न? तब से मैं बराबर इनकी छाया से दूर भागती रही। यहाँ यह भगवा पहने महात्मा भी मुझे वैसा ही मालूम होता है। मैं उसका मुख नहीं देखना चाहती। उसे मेरे पास से हटा दो। नहीं, पुलिस में पकड़ा दो।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"तुम फिर बात करना, अब सो जाओ। बहुत उत्तेजित होने से फिर बीमार पड़ जाओगी।"

फिर डॉक्टर हुसैनभाई को निद्रा लानेवाली ओषधि बनाने का आदेश दिया।

डॉक्टर हुसैनभाई ने बिना प्रतिपाद के उनकी आज्ञा पालन की।

डॉक्टर नीलकंठ ने ओषधि का गिलास अपने हाथ में लेकर कहा— 'लो, यह दवा पी जाओ, भय करने की कोई ज़रूरत नहीं। बाहर पुलिस मकान को घेरे हुए है। अभी थोड़ी देर में मैं सबको गिरफ़्तार करवा दूँगा। मैं अब तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा।"

माधवी ने दवा तुरंत पी ली। दवा पीकर कहा—"अगर मुझे नींद आ जाय, तो छोड़कर कहीं न जाना। इन दुष्टों का विश्वास मत करना। इन्हें शीघ्र ही पकड़वा देना।"

यह कहकर उसने उनका हाथ फिर पकड़ लिया।

डॉक्टर नीलकंठ ने आश्वासन देते हुए कहा—"तुम अब ज़रा भी चिंता न करो। मुझे कोई धोखा नहीं दे सकता।"

उनका आवेग आँखों के बाहर निकलने का उपक्रम करने लगा। माधवी की आँखें दवा के प्रभाव से झिपने लगीं। वह उनका हाथ अपने वक्षःस्थल से लगाए हुए निद्रा में निमग्न हो गई।

विधाता का विधान मनोहर मुस्कान से उन सबको चकित करने लगा।

करता था, लेकिन मैंने नहीं बताया। मुझे भय था कि कहीं तुम्हें भी दुःख न दे। एक दिन मैंने कहा था कि मेरे पिता का नाम पंडित लक्ष्मीकांत है, तुम ज़बरदस्ती कहाँ से मेरे पिता बन गए। मुझे पिता बनकर ठगना चाहते थे। अच्छा, पिताजी का कोई समाचार मिला है? उन्होंने तो हमसे अपना संबंध ही तोड़ लिया। उन्हें अपनी दुलारी सावित्री की याद अब शायद नहीं आती। अम्मा तो अच्छी हैं? भैया कमलाकांत क्या अभी तक कॉलेज में पढ़ते हैं? वह ज़रूर मुझे चाहते थे। पिताजी का इतना कठोर आदेश होने पर भी मेरे पास आते और मेरे यहाँ खाते थे।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"अब तुम आराम करो। मैं अब तुम्हें छोड़कर न जाऊँगा।"

माधवी ने कहा—"हाँ, अब मैं सोऊँगी। अभी तो मारे भय के नींद नहीं आती थी। मैं डरती थी कि अगर सो गई, तो ये लोग मुझे दूसरी जगह ले जाकर छिपा आवेंगे, और जब तुम मुझे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आओगे तब नहीं पाओगे। किंतु अब मुझे कोई डर नहीं। तुम्हारे पास से यमराज भी मुझे नहीं ले सकते, यह तो तुम कहा ही करते थे।"

यह कहकर माधवी मुस्किराई। डॉक्टर नीलकंठ को भी हँसी आ गई। अतीत की स्मृति ने बड़े ज़ोर से चुटकी ली।

माधवी फिर कहने लगी—"आज मेरे पास बहुत कुछ कहने को है। मुझे कह लेने दो। शायद ये दुष्ट आज रात को ही मौक़ा पाकर मार डालें। तुम इनका विश्वास मत करना। इनके साथ एक भगवा पहने महात्मा भी हैं, वैसे ही, जिनसे तुम सदा घृणा करते थे। मैं भी उससे घृणा करती हूँ। उसे देखते ही मुझे गंगाजी के किनारे बैठनेवाले रँगे सियारों की याद आ जाती है, जिन्होंने मेरी सखी कमला को भ्रष्ट कर जाह्नवी में डूब मरने के

लिये बाध्य किया था। तुम्हें वह घटना याद है न? तब से मैं बराबर इनकी छाया से दूर भागती रही। यहाँ यह भगवा पहने महात्मा भी मुझे वैसा ही मालूम होता है। मैं उसका मुख नहीं देखना चाहती। उसे मेरे पास से हटा दो। नहीं, पुलिस में पकड़ा दो।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"तुम फिर बात करना, अब सो जाओ। बहुत उत्तेजित होने से फिर बीमार पड़ जाओगी।"

फिर डॉक्टर हुसैनभाई को निद्रा लानेवाली ओषधि बनाने का आदेश दिया।

डॉक्टर हुसैनभाई ने विना प्रतिपाद के उनकी आज्ञा पालन की।

डॉक्टर नीलकंठ ने ओषधि का गिलास अपने हाथ में लेकर कहा—'लो, यह दवा पी जाओ, भय करने की कोई ज़रूरत नहीं। बाहर पुलिस मकान को घेरे हुए है। अभी थोड़ी देर में मैं सबको गिरफ़्तार करवा दूँगा। मैं अब तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा।"

माधवी ने दवा तुरंत पी ली। दवा पीकर कहा—"अगर मुझे नींद आ जाय, तो छोड़कर कहीं न जाना। इन दुष्टों का विश्वास मत करना। इन्हें शीघ्र ही पकड़वा देना।"

यह कहकर उसने उनका हाथ फिर पकड़ लिया।

डॉक्टर नीलकंठ ने आश्वासन देते हुए कहा—"तुम अब ज़रा भी चिंता न करो। मुझे कोई धोखा नहीं दे सकता।"

उनका आवेग आँखों के बाहर निकलने का उपक्रम करने लगा। माधवी की आँखें दवा के प्रभाव से झिपने लगीं। वह उनका हाथ अपने वक्षःस्थल से लगाए हुए निद्रा में निमग्न हो गई।

विधाता का विधान मनोहर मुस्कान से उन सबको चकित करने लगा।

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"यह बड़ी आश्चर्य-जनक घटना है। इसके पूर्व कभी नहीं सुना।"

स्वामी गिरिजानंद ने उत्तर दिया—"मालूम होता है, ईश्वर हमारे ऋषियों के कथन को सत्य प्रमाणित करने के लिये शहादत पर विश्वास करनेवाली इस दुनिया के नास्तिकों के सामने अकाट्य प्रमाण पेश कर रहा है। माधवी की दशा देखकर कौन अब इनकार कर सकता है कि पूर्वजन्म न था, और पर-जन्म न होगा। अभी तक जो अनुमान-मात्र था, उसके अनुमोदन के लिये अब हमारे पास अकाट्य प्रमाण है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"विधाता का अदृश्य हाथ और अव्यक्त आदेश प्रत्येक काम के पीछे होता है, आज से यह भी प्रमाणित हुआ। मनुष्य स्वयं कमज़ोरियों का समूह-मात्र है।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"हाँ, सत्य तो यही है। अहंकार के कारण मनुष्य अपने को ही विधाता मान बैठा है, इसलिये ईश्वरीय शक्तियाँ विकसित होकर हमें यह बता रही हैं कि सन्मार्ग वही है, जो तुम्हारे प्राचीन ऋषियों ने मेरे आदेश से तुम्हारे कल्याण के लिये निर्दिष्ट किया है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने, जो अब तक चुपचाप बैठे थे, कहा—"मैं भी स्वामीजी के कथन से सहमत हूँ। हमारा कल्याण अपने प्राचीन सिद्धांतों के अनुसार चलने में ही है। आजकल हम पश्चिमीय सभ्यता के वातावरण में अपनी प्राचीन संस्कृति को भूल गए हैं, जब तक हम उसे पुनर्जीवित न करेंगे, तब तक संसार में कुछ

उन्नति नहीं कर सकते। यदि आज योरपीय सभ्यता के विकास का मूलान्वेषण करें, तो हमें उस स्थान पर पहुँचकर ठहर जाना पड़ेगा, जब से उनके यहाँ पुनर्जन्म अथवा 'रिनायसांस' होना आरंभ हुआ था। 'रिनायसांस' अथवा पुनर्जन्म के समय में केवल प्राचीन ग्रीक अथवा रोमन सभ्यता की पुनःप्रतिष्ठा हुई है। अब यह प्रश्न कि ग्रीक और रोमन सभ्यता का संबंध प्राचीन भारतीय सभ्यता से था, या नहीं, विवाद-पूर्ण है। किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि प्राचीन सभ्यता को पुनर्जीवित करने से हमारा विकास होगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"हाँ, अब तो यही कहना पड़ेगा।"

स्वामी गिरिजानंद ने मुस्किराकर कहा—"भारतवर्ष की आदिम सभ्यता अपने उदर में बड़े-बड़े अनुभव छिपाए हुए है। महाभारत-काल से हमारा पतन आरंभ हुआ, और अभी तक होता जा रहा है। विदेशी आक्रमणकारियों ने भी हमारा इतिहास, जिसमें हमारी सभ्यता अंकित थी, नष्ट कर दिया है। अब उसके यत्र-तत्र ध्वंसावशेष मिलते हैं, वे भी अपूर्ण। किंतु इतना तो ज़रूर कहना पड़ेगा कि 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।' और, शायद कभी मिटेगी भी नहीं।"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"भारतीय सभ्यता का अब तक जब नाश नहीं हुआ, तो अब होगा, यह कहना असंभव है। किंतु आजकल की प्रचलित प्रणाली में बहुत कुछ परिवर्तन करने पड़ेंगे।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"हाँ, समय और परिस्थितियों के अनुसार अवश्य परिवर्तन करना पड़ेगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"अच्छा, आप यह बतलाइए कि जो-जो बातें माधवी ने कही हैं, क्या वे सब ठीक हैं?"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"वे अक्षरशः सत्य हैं। वे ऐसी बातें हैं, जिनकी सत्यता केवल मैं जान सकता हूँ, और जिनको गुज़रे हुए आज लगभग सत्रह साल से ऊपर हो गए हैं। जब मैं इँगलैंड गया था, तो मेरी जातिवालों ने मुझे समाज-च्युत कर दिया था, किंतु मेरा साला कमलाकांत हमेशा लुक-छिपकर अपनी बहन को देखने आता था। इसका भेद सिवा हम चार आदमियों के किसी को नहीं मालूम। मैं आपसे क्या बतलाऊँ, जितनी बातें उसने कही हैं, सब सत्य हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने विस्मयान्वित स्वर से पूछा—"इसके इस जन्म का हाल तो मुझे पूर्ण रूप से मालूम नहीं, किंतु अमीलिया के कहने से मालूम हुआ कि यह अविवाहित-सी है। तब इसे क्या पहले भी अपने पूर्वजन्म की स्मृति थी? और, अगर नहीं, तो सहसा उसे कैसे स्मरण हो गया।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"इसका भेद मैं कैसे कह सकता हूँ। मनुष्य की सत्ता के बाहर है कि वह ईश्वर के कार्यों का रहस्य जान सके। यह मुमकिन है कि मस्तिष्क, जहाँ स्मरण-शक्ति का केंद्र है, सिर में भयानक चोट लगने से भूकंप की भाँति उथल-पुथल गया हो, और पुरानी स्मृतियाँ सजग होकर ऊपरी सतह में आ गई हों, और इस जन्म की याददाश्त नीचे दब गई हो। वह अपने को मृत नहीं समझती, बल्कि पुराने जीवन का केवल प्रसार जानती है। उसे स्मरण नहीं कि उसके शरीर का आज सत्रह साल पहले अवसान हो चुका था, और उसे मैंने गंगा-तट पर चितारोहण किया था। मृत्यु की उसे याद नहीं। वह उसे बेहोशी समझती है, और जब उसकी चेतना आपके यहाँ जागी, तो पुराने जीवन की वे ही स्मृतियाँ उसके सामने एकत्र होने लगीं। वह अभी तक आभा को दो वर्ष की दूध-पीती बच्ची

समझती है। लड़कपन में वह बिस्कुट बहुत खाया करती थी, कल भी उसने पहले वही प्रश्न किया। अभी तक वह जागी नहीं, जागने पर आज आभा और चाची को ले जाकर उसके सामने पेश करूँगा, देखूँ, वह उन्हें पहचानती है या नहीं। मेरा तो विश्वास है कि वह चाहे आभा को न पहचाने, लेकिन चाची को ज़रूर मेरी तरह पहचान जायगी।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"हम लोग इधर फँसे रहे, और आभा की कोई ख़बर नहीं ली।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"वह इस समय अच्छी है। बुख़ार उतर गया है, और आज सुबह बिलकुल स्वस्थ थी। डॉक्टर हुसैनभाई कह रहे थे कि एक-दो दिन में अच्छी हो जायगी। चाची और राधा की मा उसकी सेवा-शुश्रूषा कर रही हैं। राधा की मा भी बड़े अच्छे स्वभाव की मालूम होती हैं। चाची से उनसे ख़ूब पटती है।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"मैं उधर नहीं गया। माधवी ने कल मेरी अच्छी तरह ख़बर ली, तब से स्त्रियों के सामने जाने का साहस नहीं होता।"

ये सब हँसने लगे।

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आप बुरा न मानें। उसने मुझे भी तो ख़ूब खरी-खरी सुनाई है। वह हम लोगों को अपना शत्रु समझती है। अब मेरा भी उसके सामने जाने का साहस नहीं होता, शायद उत्तेजित होने से फिर कुछ आफ़त न आ पड़े।"

स्वामी गिरिजानंद ने हँसते हुए कहा—"भाई, मैं तो कल से यह कमरा छोड़कर बाहर नहीं गया, और सबकी आँखों से अपने को छिपाए हूँ।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"भला, इस तरह कब तक काम चलेगा ?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"जब तक आप माधवी के साथ विवाह करके उसका भय दूर न कर देंगे।"

डॉक्टर नीलकंठ ने चकित होकर उनकी ओर देखा।

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"हाँ, जो स्वामीजी कहते हैं, वह अब आपको करना पड़ेगा। माधवी के साथ आपको विवाह करना पड़ेगा। जब भगवान् ने आपकी खोई वस्तु आपको दी है, तब स्वीकार करना पड़ेगा। आत्मा तो वही है, केवल कलेवर बदला है। वह अब आपको छोड़ भी तो नहीं सकती। आप उसे किसी प्रकार नहीं समझा सकते कि यह उसका पुनर्जन्म है।"

स्वामी गिरिजानंद ने हँसकर कहा—"यह बिलकुल असंभव है, मैं भी स्वीकार करता हूँ। उसका और आपका इसी में कल्याण है कि आप उससे विवाह करें।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"मेरी तो बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। देखा जायगा।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"जनाब की बारात में हम सब चलेंगे, और कन्या के संप्रदान के लिये किसी दूसरे को ढूँढ़ना पड़ेगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने हँसकर कहा—"यह नहीं हो सकता, कन्या का संप्रदान आपको करना पड़ेगा। हाँ, उसका ख़र्च मैं ज़रूर बरदाश्त कर लूँगा। मैं कन्या-संप्रदान नहीं कर सकता। इसलिये यह ज़िम्मेवारी आपके सिर रहेगी।"

इसी समय अमीलिया के साथ आभा ने उस कमरे में प्रवेश किया।

आभा दो दिनों की बीमारी में बिलकुल पीली पड़ गई थी, उसके नेत्रों की ज्योति अंतर्हित हो गई थी; आँखें गड्ढे में घुस

गई थीं। सदैव रक्तिम रहनेवाले कपोल पीले पड़ गए थे। ओष्ठ शुष्क होकर नीरस हो गए थे। उसका इतना परिवर्तित रूप देखकर डॉक्टर नीलकंठ चकित रह गए।

उन्होंने उठकर आभा को सहारा देकर कुर्सी पर बैठाते हुए पूछा—"अब कैसी तबियत है?"

आभा ने उत्तर दिया—"अब तो अच्छी हूँ, आपसे एक बात पूछने आई हूँ।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"मुझे वहीं बुला लिया होता।"

आभा ने निष्प्रभ नेत्रों से कहा—"लेटे-लेटे मन बहुत क्लांत हो गया था। सुना है, राधा के साथ जो माधवी नाम की लड़की तूफ़ान से बचाई गई थी, वह मेरी उस जन्म की मा है। क्या यह सत्य है?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"हाँ, वह तुम्हारी उस जन्म की मा है, और अब इस जन्म में फिर मा होगी।"

आभा ने विस्मय से अपने पिता की ओर देखा।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"लक्षणों से तो ऐसा ही मालूम होता है। तुम लड़कपन में बिस्कुट बहुत खाती थीं, इसकी भी याद उसे है। तुम्हें देखने के लिये वह बहुत लालायित है। आज जब वह जागेगी, तब तुम्हें ले चलूँगा।"

इसी समय पंडित मनमोहननाथ कमरे के बाहर चले गए, और उनके पीछे-पीछे स्वामी गिरिजानंद भी।

उनके जाने के बाद आभा ने अश्रु-पूर्ण नेत्रों से कहा—"पापा, क्या वह सत्य ही मेरी मा हैं? आज चिर-संचित दुःख का नाश होगा। मैं उन्हें अभी देखूँगी। मुझे केवल दूर से दिखा दो।"

उसकी आँखों से हर्ष आँसू बनकर बाहर निकलने लगा।

डॉक्टर नीलकंठ ने उसे सांत्वना देते हुए कहा—"अब इसी

घबराती हो, उसके जागने पर हम, तुम और चाची, सब चलेंगे। आभा, अभी तक उसका प्रेम तुम्हारे ऊपर वैसा ही है। तुम्हें पहचानेगी कि नहीं, यह मैं नहीं कह सकता।"

आभा कुछ कहने जा रही थी कि राधा ने आकर कहा—"माधवी सोकर उठी है, और आपको अपने पास न देखकर परेशान हो रही है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उठते हुए कहा—"आओ आभा, हम लोग चलें।" फिर राधा से कहा—"तुम चाची को उसी कमरे में ले आओ।"

आभा अमीलिया के हाथ के सहारे शीघ्रता से माधवी के कमरे की ओर जाने लगी। डॉक्टर नीलकंठ भी उसे एक तरफ़ से सहारा दिए हुए थे।

डॉक्टर नीलकंठ को देखकर माधवी की विकलता कम हुई। वह आज बिलकुल स्वस्थ मालूम होती थी। एक रात में उसका मुरझाया हुआ सौंदर्य अपनी पुरानी मोहकता एकत्र कर रहा था।

डॉक्टर नीलकंठ को देखकर वह उनकी पद-रज लेने के लिये उठने लगी। किंतु आभा को देख ठिठककर वहीं खड़ी रही, और जिज्ञासा-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी।

आभा पास पहुँचकर, उसके गले से लिपटकर रोने लगी।

माधवी ने उसे अपने हृदय से लगाते हुए कहा—"क्या यही मेरी आभा है?"

मातृप्रेम उमड़कर आभा को अपनी स्वर्गीय ज्योति से देदीप्यमान करने लगा।

माधवी ने उसका मुख चूमते हुए कहा—"हाँ, यही मेरी आभा है। देखो, इसके बाएँ गाल पर उसी जगह काला तिल है,

जैसा इसके जन्म-काल में था। इसके बाएँ कान की लूर के पीछे भी एक मसा था, वह भी मौजूद है। मुख की गढ़न भी वही है; वैसी ही आँखें हैं। तुम कहा करते थे कि आभा की आँखें बड़ी हैं। देखो, वैसी ही बड़ी-बड़ी आँखें हैं। लेकिन यह इतनी जल्दी कैसे बढ़ गई!"

माधवी आश्चर्य से उसका मुख देखने लगी। आभा अपने नेत्र बंद किए हुए किसी अनुपम आनंद का रस-भोग कर रही थी।

इसी समय राधा के साथ गंगा भी वहाँ आ गई।

डॉक्टर नीलकंठ ने गंगा की ओर इशारा करते हुए पूछा—"इन्हें पहचानती हो?"

माधवी ने क्षण-भर तक उसकी ओर देखा, फिर कहा—"अरे, चाची भी यहाँ आ गईं?"

गंगा भी सवेग उससे मिलने के लिये दौड़ी, और माधवी भी उठने लगी। आभा के पैर के नीचे उसकी साड़ी दब गई। सवेग उठती हुई माधवी पत्थर के फ़र्श पर गिर पड़ी। वह ज्यों ही उठने लगी कि उसके सिर में ठीक उसी स्थान पर पलँग का पाया लगा, जहाँ एडमंड हिक्स के जहाज़ में, अपनी रक्षा करने में, आघात पहुँचा था। हाल ही का अच्छा हुआ ज़ख्म पुनः फट गया, और माधवी उसी क्षण बेहोश हो गई। रक्त की धारा सवेग उसी क्षत स्थान से निकलने लगी। सब लोग एक साथ चीत्कार कर उठे। आभा और गंगा बेहोश माधवी के शरीर से लिपट गईं।

चीत्कार सुनकर डॉक्टर हुसैनभाई और पंडित मनमोहननाथ दौड़े आए।

डॉक्टर हुसैनभाई की बहुत-सी दवाइयाँ माधवी के कमरे में रहती थीं। इन्होंने एक दवा बनाकर उसे तुरंत पिलाने की कोशिश

की, किंतु माधवी की अचेतनता इतनी गहरी थी कि वह दवा पी न सकी। डॉक्टर हुसैनभाई उसे इंजेक्शन देने का आयोजन करने लगे।

अमीलिया ने अब तक उस क्षत स्थान को पानी से धोकर साफ़ कर दिया था, किंतु रक्त का स्राव किसी प्रकार बंद न होता था।

डॉक्टर हुसैनभाई ने इंजेक्शन लगाते हुए कहा—"आप लोग धैर्य धरें, अभी सब ठीक हो जायगा। चोट ज़्यादा गहरी नहीं मालूम होती। सिर्फ़ ऊपरी हिस्से में थोड़ा-सा घाव हो गया है। इतना ख़ून निकलने का कारण केवल यह है कि चोट पुरानी जगह में लगी है।"

उनके आश्वासित शब्दों पर सबको विश्वास हुआ, और आभा विनय-पूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी।

डॉक्टर हुसैनभाई उत्सुकता से दवा का असर देखने लगे।

माधवी की आँखें पथराई हुई थीं, जैसे जीवन का अंत हो चुका हो। उसके श्वास की गति भी मंद पड़ती जा रही थी, और रक्त-स्राव पूर्ववत् था। डॉक्टर नीलकंठ आकाश की ओर देखने लगे।

---

(५)

उसी दिन अमीलिया को एकांत में पाकर भारतेंदु ने कहा—"अमीलिया, मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

अमीलिया ने उनकी ओर देखा तक नहीं; वह शीघ्रता से जाने लगी।

भारतेंदु ने बड़े कातर स्वर में कहा—"मुझे केवल दो-तीन बातें कहनी और पूछनी हैं, दो मिनट ठहरकर सुन लो।"

अमीलिया ने ठहरकर सरोष कहा—"क्यों, क्या कहना चाहते हो? मेरा एक बार सर्वनाश कर क्या तुम्हें शांति न मिली?"

भारतेंदु ने उसकी कटुता सहन करके कहा—"नहीं, उस दिन से अभी तक मुझे शांति नहीं मिली, और जब तक तुम क्षमा न करोगी, शायद मिलेगी भी नहीं।"

अमीलिया ने तिरस्कार-पूर्ण स्वर में कहा—"मैं अब तुम्हारी चिकनी-चुपड़ी बातों का अर्थ अच्छी तरह जानने लगी हूँ। तुम्हें यह भय है कि मैं कहीं आभा से तुम्हारी कीर्ति प्रकाशित न कर दूँ!"

उसका कूट-व्यंग्य भारतेंदु को अग्नि-शलाका की भाँति जलाने लगा।

भारतेंदु ने कहा—"नहीं, मुझे उसका भय नहीं, मैंने उसकी आशा त्याग दी है, और उससे भी कह दिया है कि मैं उसके योग्य नहीं। मैं अब अपने पाप का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ।"

अमीलिया ने भृकुटियाँ चढ़ाते हुए कहा—"वह कैसे? क्या तुम्हें

हज़ार-दो हज़ार रुपए देकर मेरे सतीत्व का मूल्य चुकाना चाहते हो, या अपने पुत्र की क़ब्र पर कोई स्मारक-चिह्न बनाना चाहते हो, जिससे तुम्हारी कीर्ति अमर होकर भावी संतति की आँखें खोलती रहे ?"

भारतेंदु के लिये अपनी वेदना छिपाना असह्य हो गया।

अमीलिया ने फिर कहा—"तुम क्षमा माँगने आए हो। आज से पाँच वर्ष पहले कभी यह भाव तो उत्पन्न नहीं हुआ, आज कैसे हो गया! मैंने न-मालूम कितने पत्र लिखे, कितनी अनुनय-विनय की, किंतु तुमने तो दो लाइनें लिखकर भी कभी मुझे सांत्वना न दी। जब घाव कुछ मुरझाने लगा था, तब उसे कुरेदकर फिर नमक छिड़कने आए हो।"

भारतेंदु ने जड़ित स्वर में कहा—"अमीलिया, तुम्हारा कहना सत्य है। इस समय मैं अपराधी हूँ। तुम जो चाहो, मुझे कह लो, वह मेरे लिये कम ही होगा। क्या मुझे अपनी स्थिति साफ़ करने का समय दोगी ?"

अमीलिया ने क्रोध से काँपते हुए कहा—"क्या तुम्हारे पास अपनी सफ़ाई के अब भी सुबूत हैं? याद रखना, यह आज-कल की अदालत नहीं, जहाँ झूठी शहादतों पर सफ़ाई या बरियत हो जाती है, और मुलज़िम सचमुच अपराधी होकर भी छूट जाता है। अब मुझे पहले-जैसी सरल बालिका भी मत समझ लेना, क्योंकि तुम्हारे विश्वासघात ने मुझे दुरभिसंधि-पूर्ण संसार की चालों से सचेत कर दिया है, और मैं पुरुषों पर विश्वास नहीं करती।"

भारतेंदु ने मलिन स्वर में कहा—"मैं अपने अपराध से कब बरी होता हूँ। नत-मस्तक होकर उसे स्वीकार करता हूँ। मैं क्षमा माँगने नहीं, सज़ा का हुक्म पाने के लिये हाज़िर हुआ हूँ। अमीलिया, तुम विश्वास रक्खो, जो दंड तुम मेरे लिये निर्धारित

करोगी, वह मैं सहर्ष ग्रहण करूँगा। आभा के प्रति मेरा कोई कर्तव्य है, यह मुझे स्वयं नहीं मालूम। मैंने उससे अपनी पाप-कहानी, दो शब्दों में, कह दी है। आगे विस्तार-पूर्वक कहता, किंतु उसके सहसा बीमार होने से मैं नहीं कह सका।"

उनका स्वर अनुताप से रंजित था।

अमीलिया ने नम्र होते हुए कहा—"बस, इतना ही कहना है या और कुछ?"

भारतेंदु को कुछ कहने का साहस हुआ, उन्होंने कहा—"यह कैसे कहूँ कि नहीं कहना है, मेरे कहने के लिये बहुत है। मैंने कभी तुम्हारे साथ विश्वासघात करने का विचार नहीं किया। मैंने जो अपराध किया था, उसकी ग्लानि से मैं तुम्हारे सामने आने का साहस नहीं करता था, यहाँ तक कि पत्र लिखने की भी हिम्मत न होती थी। मेरा पाप मुझे डरा रहा था। मैं जन्म से ही भीरु स्वभाव का हूँ। जब मुझे मालूम हुआ कि मेरे अपराध का वह पापमय परिणाम फला है, तब से उसकी ग्लानि से मैं स्वयं मरा जा रहा हूँ। मैंने आज तक आभा से कभी प्रेम-संभाषण नहीं किया, प्रेम का एक शब्द कभी उच्चारण नहीं किया। मैं करता कहाँ से, मेरे मन का सारा उत्साह तो नष्ट हो गया था, और मैं अकाल वृद्ध हो गया था। यह विवाह-संबंध पिताजी ने स्थिर किया था। मुझमें इतना साहस न था कि मैं उनका प्रतिवाद करूँ। मैंने यह यत्न किया था कि यह विवाह-संबंध टूट जाय, और इसीलिये आभा के पिता यहाँ तक आए हैं। जब मैंने उनसे कहा कि पिताजी ने मुझे एक पैसा अपनी संपत्ति से देने को नहीं कहा, तो वे लोग घबरा गए, और उसी का निर्णय करने के लिये यहाँ आए हैं। उस दिन मेरी आत्मा ने बहुत धिक्कारा, इसलिये आभा से मैंने कह दिया कि मैं उसके योग्य नहीं।

मैं जानता था कि उसे बहुत कष्ट होगा, और वह धक्का सहन
न कर सकेगी, फिर भी मुझे कहना पड़ा, इस भय से कि
जब वह तुम्हारे मुँह से मेरी पाप-कथा का सब हाल सुनेगी, तो
उसे बहुत ज़्यादा व्यथा होगी। मैं इसमें एक अक्षर भी झूठ नहीं
कहता। सत्यता की कसौटी हृदय है, अपने हृदय से पूछकर देखो
कि क्या मेरा कथन असत्य है ?"

अमीलिया विचार में पड़ गई।

भारतेंदु फिर कहने लगे—'एक समय था, जब मैं तुम्हारे प्रेम
के हिंडोले में झूलने का सुख-स्वप्न देखा करता था, किंतु आज
वह आशा करना आकाश-कुसुम की इच्छा करना है। मैं वह
प्रस्ताव नहीं कर सकता, और यदि करूँ भी, तो तुम इसमें अपना
उपहास समझोगी। अब मेरा कल्याण इसी में है कि उस पाप-
पंक के प्रक्षालन में अपना जीवन व्यतीत कर दूँ। शायद कभी
तुम्हारे मन में मुझे क्षमा करने के भाव उदय हो जायँ।"

यह कहते-कहते भारतेंदु के नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए।

अमीलिया ने अपना मुख फिराते हुए कहा—"तुम जाओ,
ऐसी जगह जाओ, जहाँ मैं तुम्हें न देखूँ। तुम्हारे शब्द मेरे
हृदय को पानी-पानी किए डालते हैं। निष्ठुर, मैं अब भी तुम्हें
उसी तरह प्यार करती हूँ। प्रेम का कभी नाश नहीं होता, और
वह कितना कमज़ोर हृदय का होता है कि एक ही शब्द में अपना
क्रोध, मान, अभिमान, रोष, राग, सब भूल जाता है। जिसने
उसकी हत्या की है, जिस तलवार से उसके प्रेमिक वधिक ने
आघात किया है, वह उसके और उसकी तलवार की धार के
बोसे लेता है। तुम जाओ, मेरे मन में छलमयी आशा का
दीपक प्रज्वलित न करो। मैं तुम्हें भूल गई हूँ, मैं अब दूसरे की
वाग्दत्ता हूँ।"

कहते-कहते अमीलिया दोनो हाथों से अपना मुख ढापकर रोने लगी।

भारतेंदु ने उसके समीप पहुँचकर उसे सांत्वना देने के लिये उसके सिर पर हाथ रक्खा। अमीलिया ने उसे क्रोध से हटा दिया, और कहा—"तुम मेरा स्पर्श न करो। वह अधिकार तुमने हमेशा के लिये खो दिया है। मेरे इस शरीर का अब कोई दूसरा व्यक्ति स्वामी है। मैं भ्रम के वश में होकर भूल कर बैठी हूँ, अब तो उसकी रक्षा मुझे करनी ही पड़ेगी। तुम अपना कर्तव्य पालन करो, मैं अपना। जीवन के प्रथम परिच्छेद में हम दोनो ने भूल की थी, उसका परिणाम हम दोनो को भोगना पड़ा है।"

भारतेंदु ने व्यथित स्वर में पूछा—"क्या तुमने किसी को अपना हृदय दे दिया है ?"

अमीलिया ने कहा—"हृदय नहीं दिया है, शरीर दूँगी। हृदय तो मैंने उसे दिया था, जिसने उसकी क़द्र नहीं की, और ठुकरा दिया। मेरी उमंग, मेरा प्रेम, मेरा उत्साह, मेरा सुहाग, मेरी महत्त्वाकांक्षा, सब नष्ट हो गए हैं। तुम्हें ढूँढ़ने से उनकी राख भी नहीं मिलेगी। किंतु संसार में रहकर मनुष्य को कर्तव्य पालन करना पड़ता है, मनुष्य-धर्म भी पालन करना पड़ता है। जिसने मेरे शरीर की रक्षा की है, उसे यह शरीर तो समर्पित करना ही पड़ेगा।"

भारतेंदु की अंतरात्मा पीड़ा से झंकरित हो उठी। उन्होंने धीमे स्वर में पूछा—"वह भाग्यवान् कौन है ?"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"कुछ दिनों में अपने आप प्रकट हो जायगा, जब वैध रूप से अपना शरीर उसे समर्पण करूँगी। पापा आ गए हैं, उनकी अनुमति लेना अवशेष है।"

भारतेंदु ने व्यथित हृदय से कहा—"यदि तुम्हें इसमें प्रसन्नता है, तो मैं तुम्हारे मार्ग में रोड़े नहीं अटकाऊँगा। तुम सहर्ष उससे

विवाह करो। किंतु इसके पहले तुम मुझे क्षमा कर दो, बस, मेरे लिये यही यथेष्ट है।"

अमीलिया ने कहा—"तुम्हें क्षमा मैं उसी दिन कर चुकी थी, जब तुमसे प्रेम किया था। अब क्या क्षमा करूँगी। अब तुम आभा के साथ विवाह कर उसे सुखी करो। मनुष्य अपने जीवन में कोई-न-कोई भूल अवश्य करता है। वह हमारे जीवन की भूल थी, इसे भूल जाना उचित है। मनुष्य यदि भूल न करे, तो वह मनुष्य की परिभाषा को पूर्ण नहीं करता।"

भारतेंदु ने कहा—'तुम्हारी क्षमा से मेरे जीवन का विकास आरंभ होगा। मैं अब तक जिस वेदना को सहन करता रहा हूँ, जो कसक निरंतर मुझे तड़पाती रही है, जो अग्नि अहर्निश प्रज्वलित होकर मुझे दग्ध करती रही है, उससे निस्तार तो इस जन्म में मिल नहीं सकता, किंतु मेरे मन की ग्लानि किसी अंश तक कम हो जायगी। मैं मनुष्यता से पतित हो गया हूँ, अब पुनः मनुष्य नहीं बन सकता। प्रायश्चित्त से अवश्य कुछ आत्मिक मालिन्य स्वच्छ हो जायगा। मैं तुम्हें हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि तुम सुखी होकर अपना कर्तव्य पालन करो।"

यह कहकर भारतेंदु शीघ्रता से अमीलिया को संदिग्ध अवस्था में छोड़कर चले गए।

अमीलिया ने उन्हें बुलाकर कहा—"अब ज़रा मेरी भी सुन लीजिए।"

भारतेंदु ने उस पर किंचित् कर्णपात नहीं किया।

अमीलिया क्षण-भर उनकी अपेक्षा कर माधवी के कमरे में चली गईं।

---

(६)

मध्याह्न-काल का सूर्य अपनी प्रखर किरणों से संसार को दग्ध कर रहा था। स्वामी गिरिजानंद अपने कमरे में बैठे हुए माधवी के पुनर्जन्म के विषय में सोच रहे थे। मनुष्य दूसरे के सौभाग्य को देखकर कभी-कभी कुंठित हो जाया करता है—यही उसका स्वभाव है। डॉक्टर नीलकंठ यद्यपि उनके अभिन्न-हृदय बंधु थे, और उनके सौभाग्य से उन्हें सुख अवश्य प्राप्त हुआ था, परंतु जब वह अपनी दशा का मिलान उनसे करते थे, तब ईर्ष्या का कीटाणु उनके मन को दुःखित करने लगता। उनके अतीत जीवन के चित्र उनके सामने एक-एक करके आने लगे। वह विचारने लगे—"मानव-जीवन कितना रहस्य-पूर्ण है। पग-पग पर हमारे लिये विस्मय से अवाक् रह जाने के लिये वस्तुएँ मौजूद हैं। कौन जानता था कि यह निराश्रय लड़की उस जन्म की भद्र रमणी है, जिसकी स्मृति-सुवास से अब तक डॉक्टर नीलकंठ का घर सुरभित है। डॉक्टर साहब भी कैसे भाग्यवान् व्यक्ति हैं, जो इसी जन्म में अपनी खोई हुई निधि पा गए हैं। एक मैं हूँ, जो सब कुछ खो दिया है, जिसकी पुनः प्राप्ति की कोई आशा नहीं। तभी तो मुझे यह संसार छोड़कर भगवा पहनना पड़ा।

"माधवी ने कहा था कि भगवा पहने कपटी साधुओं से मुझे बहुत भय लगता है। वास्तव में मैं इस भगवा वस्त्र के आवरण में अपना कपटी हृदय छिपाए हुए हूँ। अपनी पाप-कथा मैं स्वयं जानता हूँ, और अगर आज संसार के सामने खोलकर रख दूँ, तो मुझे विश्वास है, कोई भला आदमी मुझे अपने द्वार

पर खड़ा न होने देगा। हत्यारा और ख़ूनी कहकर मेरा सब तिरस्कार
करेंगे, और मेरा आदर-सम्मान सब कपूर की भाँति वायु में विलीन
हो जायगा।

"आह ! मेरा हृदय आज भी उस दिन की याद करके काँप
उठता है, जब मैंने हृदय-हीन होकर अपनी प्रथम स्त्री को घर से
बाहर निकाल दिया था। वह उस समय गर्भवती थी। मेरा बालक
उसके गर्भ में था, लेकिन मैंने कोई परवा नहीं की। वह बहुत रोई-
तड़पी, गिड़गिड़ाई, लेकिन मैंने कुछ ध्यान नहीं दिया। उस अँधेरी
रात में निस्सहाय, केवल एक धोती पहनाकर, बाहर निकाल दिया
था। हाय ! अब जब मैं सोचता हूँ, तो भय से काँप उठता हूँ, और
अपनी हृदय-हीनता पर स्वयं मुझे आश्चर्य होता है।

"मोहिनी—यही उसका नाम था। वह वास्तव में मोहिनी थी।
उसका जन्म यद्यपि ग़रीब-घर में हुआ, परंतु वह रूप का भंडार
लेकर अवतीर्ण हुई थी। उसी प्रकार उसका शील और सौजन्य
था। उसके बाप उसके बाल्यकाल में ही मर चुके थे, और उसका
पालन-पोषण, विवाह उसकी माता ने किया था। उसकी मा के
मरने के बाद उसे कहीं सहारा मिलने की आशा न थी, फिर भी
उसे निकाल दिया था। क्यों ? मुझे उसकी सच्चरित्रता पर संदेह
हुआ था। संदेह-मात्र से आज तक किसी ने ऐसा कष्ट अपनी स्त्री
को न दिया होगा। उफ़् ! मैं कितना बड़ा पापी हूँ।

"वैसी पति-परायणा स्त्री संसार में क्या दूसरी हो सकती है।
जब तक मैं ड्यूटी पर से वापस आकर भोजन न कर लेता था,
वह ख़ुद नहीं खाती थी। रेलवे में मुलाज़िम था, मुझे हमेशा बारी-
बारी से आठ-आठ घंटे की ड्यूटी करनी पड़ती थी। मेरे साथ वह
भी भुगतती थी, और फिर भी मैं उस पर अकथनीय अत्याचार
करता था। कभी उसने उलटकर जवाब तक नहीं दिया। उस दिन

भी, जब यह दुर्घटना हुई थी, मेरी मार से उसकी पीठ और मुँह से ख़ून निकलने लगा था, किंतु वह ज़ोर से रोई तक नहीं। जब मैं उसे घर से बाहर निकालने लगा, तो वह मेरा पैर पकड़कर बैठ गई। मैं क्रोध से अंधा हो रहा था, उसे घसीटकर घर के बाहर निकाल आया। जब उसने वहाँ भी मेरे पैर पकड़ लिए, तो उसके सिर पर आघात करके बेहोश कर दिया, फिर अपना दरवाज़ा बंद कर सो गया। सुबह उसका कहीं पता न था। मेरा पाप हँसकर मेरा विद्रूप करने लगा।

"मैंने दूसरा विवाह किया। यह स्त्री पहले-जैसी न थी। रूप और सौंदर्य में पहली से अवश्य श्रेष्ठ थी, किंतु हृदय-हीनता में मुझसे भी बढ़कर थी। यदि यह कहूँ कि मेरा ही पाप मुझे दंड देने के लिये दूसरी स्त्री के रूप में प्रकट हुआ था, तो यह अतिशयोक्ति न होगी। मैंने अपनी पहली स्त्री का ख़ून किया था, तो इसने मेरा ख़ून किया। यह तो उस महात्मा की कृपा थी, जिसने मुझे जीवन-दान देकर संसार की निस्सारता का उपदेश दिया, और मुझे इस पवित्र धर्म में दीक्षित किया।

"संसार के लिये मैं मृत हूँ। मेरा असली परिचय कोई नहीं जानता। मेरे आत्मीय और मेरी स्त्री भी नहीं जानती कि इस संसार में गौरीशंकर जीवित है। मेरी दूसरी स्त्री अपनी कहीं पाप-वासना पूर्ण कर रही होगी, हास-विलास में मत्त होकर विषय-वासना का तांडव-नृत्य कर रही होगी, और मेरी पहली स्त्री मोहिनी—स्वर्गीया देवी—यथार्थ ही स्वर्ग में उत्सुकता से मेरे आने की प्रतीक्षा कर रही होगी। मुझे विश्वास है, वह मुझे क्षमा कर देगी, क्योंकि उसमें हृदय था, और था मेरे प्रति असीम प्रेम। किसी वस्तु का वास्तविक मूल्य उसके खो जाने पर ही विदित होता है। मेरी अंतरात्मा में

यह प्रतिध्वनि निरंतर उठा करती है कि अपने पाप-कर्मों को भोगने के लिये ही मैं पुनर्जीवित हुआ हूँ।

"यह वृश्चिक-दंशन मुझे अहर्निश संतप्त किया करता है। क्या मोहिनी मुझे क्षमा करेगी? क्या मैं उससे क्षमा माँगने योग्य हूँ? इन सब प्रश्नों का उत्तर है केवल नहीं। परंतु फिर भी मुझे आशा है। मोहिनी, मोहिनी, मेरा अपराध क्षमा करो......।"

इसी समय राधा के साथ उसकी मा यशोदा ने उस कमरे में प्रवेश किया। यशोदा और स्वामी गिरिजानंद की आँखें चार हुईं, और दोनो की दृष्टि विस्मय और कौतूहल से स्थिर हो गई।

स्वामी गिरिजानंद ने विस्फारित नेत्रों से यशोदा की ओर देखते और आराम-कुर्सी से उठते हुए कहा—"तुम......"

इसके आगे वह कुछ कह न सके। उनके पाप ने उनका कंठ-स्वर रोक दिया। यशोदा काँप रही थी, उसमें खड़े रहने की शक्ति न थी। वह अचेत होकर गिरने लगी। राधा और स्वामी गिरिजानंद ने उसे रोक लिया, और फ़र्श पर वहीं लिटा दिया।

राधा आश्चर्य से स्वामी गिरिजानंद की ओर देखने लगी। आज के पहले उसने कभी अपनी मा को इस प्रकार मूर्च्छित होते नहीं देखा था।

राधा ने भय-जड़ित स्वर से कहा—"अम्मा बेहोश हो गईं, लाऊँ, डॉक्टर को बुला लाऊँ?"

स्वामी गिरिजानंद ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—"नहीं, डॉक्टर बुलाने की कोई ज़रूरत नहीं। अभी, क्षण-भर में, यह मूर्च्छा दूर हो जायगी। बेटी, मेरे पाप का भेद खोलने का प्रयत्न मत करो। वास्तव में मैं तुम्हारा पिता हूँ, और तुम्हारी मा मेरी पहली स्त्री है, जिसे एक दिन मैंने उसके चरित्र पर संदेह करने से घर के बाहर, बुरी तरह से आहत कर, निकाल दिया था......।"

राधा ने विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"तुम्हीं मेरे पिता हो, जिसके अत्याचार से हमें अभी तक निवृत्ति नहीं मिली। क्या तुम वही निरंकुश, पशु से भी गए-बीते, बर्बर हो, जिसने एक सती-साध्वी को, जब वह गर्भवती थी, असहाय निरवलंब दशा में, केवल एक धोती पहनाकर, घर के बाहर निकाल दिया था। तुम क्या वही......?"

स्वामी गिरिजानंद ने अपने दोनो हाथों से अपना मुँह छिपाते हुए कहा—"हाँ, मैं वही पापी हूँ। तुम मेरा खूब तिरस्कार करो, यही मेरे लिये उपयुक्त दंड है। केवल तिरस्कार से मेरे पापों का प्रायश्चित्त न होगा, मुझे दंड दो, तब मेरा निस्तार होगा।"

राधा ने सक्रोध कहा—"फिर भी कहते हो कि मेरा भेद प्रकाशित न करो। यह नहीं हो सकता। मैं तुम्हें ले जाकर संसार के सामने खड़ा करूँगी, और कहूँगी कि इस भगवा चोले के भीतर एक पापी की आत्मा छिपी हुई है। संसार जिसकी भक्ति करता है, आदर करता है, जिसके पैरों पर अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाता है, वह एक महान् पापी, निरंकुश, अपनी स्त्री और गर्भजात पुत्री को नरक-पथ की ओर घसीट ले जानेवाला, उन्हें घर के बाहर निराश्रय निकालकर वेश्या - वृत्ति करने के लिये मजबूर करनेवाला पातकी है। जिसके वेदांत के लेक्चर सुनकर आप प्रशंसा के पुल बाँधते हैं, उससे उसके जीवन, उसकी स्त्री और लड़की की कलंक-कहानी तो सुनिए। दोनो सुनकर फिर उसकी प्रशंसा कीजिए। उफ़्! तुम्हें पिता कहते हुए शर्म आती है। इस समय प्रकट होकर तुमने हम लोगों के बचे-बचाए सुख का भी अंत कर डाला। शायद अम्मा की यह बेहोशी मृत्यु में परिणत हो जायगी। पहले तुमने उनकी आत्मा का ख़ून किया, और अब उनके जीवन का।"

स्वामी गिरिजानंद ने कोई उत्तर नहीं दिया। अपराधी की भाँति सिर झुकाए खड़े थे।

राधा ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—"मैं जाकर पंडितजी से कहती हूँ कि आपने कैसे भयंकर पातकी को अपने यहाँ स्थान दिया है।"

राधा का तीक्ष्ण स्वर अपने कमरे में चिंतित बैठे हुए पंडित मनमोहननाथ ने सुना। वह किसी दुर्घटना की आशंका से तुरंत ही स्वामी गिरिजानंद के कमरे की ओर दौड़ पड़े। उन्होंने देखा, एक प्रौढ़ा रमणी बेहोश पड़ी है, और स्वामी गिरिजानंद अपराधी की भाँति सिर झुकाए खड़े हैं, और राधा उनकी ओर सक्रोध देख रही है।

उन्होंने कठोर स्वर से पूछा—"क्या मामला है राधा?"

राधा ने तेज़ी के साथ कहा—"है क्या? आप अपने यहाँ ऐसे पापियों को आश्रय देते हैं, जिन्हें दुनिया में कहीं किसी भले आदमी के यहाँ क्षण-भर के लिये स्थान न मिलेगा। जिसे आप स्वामी गिरिजानंद कहकर सम्मान करते हैं, वह वास्तव में साधु नहीं, बल्कि इस पवित्र वेष में अपने पापों को छिपाए हुए महान् पातकी, ख़ूनी और संसार का, मनुष्य-समाज का, बड़ा भारी अपराधी है। जिसने एक सती-साध्वी को, जो वास्तव में निरपराध थी, अर्धरात्रि के समय, गहन अंधकार में, अधमरी अवस्था में, केवल एक फटी धोती पहनाकर घर के बाहर निकाल दिया था। वह सती उस समय गर्भवती थी, जिसका ज्ञान इस दुष्ट पातकी को था, फिर भी अपनी उस संतान की, अपनी स्त्री की कुछ भी परवा न कर, घर से निकालकर पथ की भिखारिनी कर दिया था। इसने उस सती को पाप-मार्ग में चलने के लिये मजबूर किया, क्योंकि हिंदू-समाज में स्त्रियों को पति से त्यक्त होने पर अपना गुज़ारा पाने का भी अधिकार प्राप्त नहीं। ग़रीब, निस्सहाय औरतें

अदालत की शरण नहीं ले सकतीं। मेहनत-मज़दूरी कर और शरीर को बेचकर ही वे अपना जीवन-निर्वाह कर सकती हैं। उच्च वर्णों की जातियों की स्त्रियाँ पर्दे में बंद रहने से मेहनत-मज़दूरी करने लायक रहती नहीं, उनके लिये तो केवल वेश्या-वृत्ति का द्वार ही उन्मुक्त रहता है। यही नहीं, इन्हीं महात्मा ने अपनी पुत्री को भी, जिसका कोई अपराध न था, पतन के उस भयानक गह्वर में जाने दिया। मैं आपके सामने अंचर पसार न्याय की भीख माँगती हूँ। मेरी मा तो शायद मर ही गई, अब वह उठकर इन महात्मा का दर्शन न करेगी; लेकिन मैं प्रतिशोध चाहती हूँ, ईश्वरीय न्याय चाहती हूँ।"

कहते-कहते राधा का स्वर विह्वलता से अवरुद्ध हो गया। पंडित मनमोहननाथ की समझ में कुछ न आया। वह कभी स्वामी गिरिजानंद की ओर देखते और कभी राधा की ओर। फिर यशोदा को इंगित करके कहा—"क्या यही तुम्हारी मा है?"

राधा जल की छींटें देकर अपनी मा की मूर्च्छा दूर करने में लगी हुई थी। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

स्वामी गिरिजानंद ने साहस एकत्र करके उत्तर दिया—"जी हाँ, यह राधा की मा और मेरी पहली स्त्री है; और राधा का पिता मैं हूँ। जो स्वामी गिरिजानंद के नाम से संसार की आँखों में आज कई वर्षों से धूल डाल रहा है, वह वास्तव में एक महान् पातकी है। राधा ने जो कुछ भी मेरे लिये कहा, वह मेरा सत्य परिचय देने के लिये पर्याप्त नहीं। मैं पुराना जीवन भूलकर हर्ष मना रहा था कि मेरा पापमय अतीत कोई नहीं जानता, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं। मेरे मूक पाप स्वयं वाचाल होकर अपना भंडाफोड़ करेंगे। लेकिन इतना संतोष है कि मुझे प्रायश्चित्त करने का अवसर मिल गया।"

राधा के यत्न से यशोदा को कुछ होश आ रहा था। उसने आँखें खोलकर चारो ओर देखा, फिर विचारों को एकत्र करते हुए कहा—"क्या यह स्वप्न है ? राधा, आज मैंने उनको देखा है। वही गौर मुख है, वे ही आँखें हैं, और माथे पर वही दाग़ है, जो गाँव में भाइयों से लड़ाई हो जाने पर लाठी लग जाने से हुआ था। वह ज़रूर वही हैं। अंतिम दिनों में उनकी सेवा करके अपना पाप-पंक धो डालने का प्रयत्न करूँगी। राधा, वह तुम्हारे पिता हैं, जन्म-दाता हैं।"

राधा ने क्रुद्ध होकर कहा—"अम्मा, शांत होकर चुप रहो। मुझे क्षमा करना, मैं उस पापात्मा को पिता के पवित्र पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये तैयार नहीं।"

यशोदा ने दाँतों-तले जिह्वा दबाते हुए कहा—"यह क्या कहती हो, अबोध ! जो कुछ भी हो, वह तुम्हारे पिता हैं। पिता के अपराधों की विवेचना करने का अधिकार संतान और स्त्री को नहीं। वह कहाँ हैं ? मुझे उनके पास ले चलो। उनकी चरण-धूलि लगाकर अपना यह जीवन सफल करूँगी।"

स्वामी गिरिजानंद ने उसके सामने आकर, नत-जानु होकर कहा—"वास्तव में राधा का कहना सत्य है। मैं पिता का पवित्र पद पाने के लिये सर्वथा अयोग्य हूँ, और साथ ही पति का आदर-पूर्ण पद भी पाने के लिये। मैं किस प्रकार अपने पापों की क्षमा माँगूँ ?"

यशोदा ने उठकर कहा—"यह क्या करते हो ? मैं वैसे ही पाप-पंक में फँसी हुई घृणित हूँ, और क्यों मुझे संतप्त करते हो। ईश्वर की बड़ी कृपा थी, जो आपके दर्शन हो गए, मैं तो सब प्रकार से निराश हो गई थी। मैं तुम्हारे स्पर्श करने योग्य नहीं हूँ, अपने चरणों की धूलि दूर से मेरे सिर पर डाल दो।"

पंडित मनमोहननाथ ने आगे आकर कहा—"देवी, जो तुम्हें

पापिनी कहे, वह स्वयं एक बड़ा भारी पापी है। तुम्हारी आत्मा की पवित्रता सर्वदा अक्षुण्ण है। शरीर कलुषित होने से आत्मा कभी कलुषित नहीं होती। मैं तो तुम्हें स्वामी गिरिजानंद से हज़ार-गुना पवित्र समझता हूँ। और, मेरी उतनी ही भक्ति की आप अधिकारिणी भी होंगी।"

यशोदा ने उन्हें देखकर घूँघट से अपना मुख छिपा लिया।

पंडित मनमोहननाथ उन लोगों को वहीं छोड़कर कुछ सोचते हुए कमरे के बाहर चले गए।

कमरे में किंचित् काल के लिये घोर निस्तब्धता छा गई। किसी अदृश्य शक्ति का मृदुल और नीरव हास्य उस छोटे-से कमरे में मुखरित होकर राधा, यशोदा उर्फ़ मोहिनी और स्वामी गिरिजानंद को चकित करने लगा।

---

(७)

जिस समय स्वामी गिरिजानंद के कमरे में उपर्युक्त घटनाएँ हो रही थीं, उस समय माधवी की चेतनता वापस आई। डॉक्टर नीलकंठ, आभा और गंगा उसके पास बैठे हुए उत्सुकता से देख रहे थे। माधवी को होश में आते देखकर डॉक्टर हुसैनभाई विजय-भरी दृष्टि से उन सबकी ओर देखने लगे। माधवी ने चकित होकर चारो ओर देखकर पूछा—"मैं कहाँ हूँ ?"

आभा ने उसके समीप जाकर विह्वलता और व्यग्रता से पुकारा—"अम्मा, अम्मा !"

गंगा भी सस्नेह कह उठी—"बिटिया, अब कैसी तबियत है ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने अपनी व्यग्रता दमन करते हुए कहा—"पूर्ण रूप से होश में आने दो, फिर बातें करना। ज़्यादा चिल्लाने से शायद फिर तबियत ख़राब हो जाय।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने डॉक्टर नीलकंठ की बात का समर्थन किया।

आभा और गंगा, दोनो अपने मन की भावनाएँ दबाकर माधवी की ओर देखने लगीं, जो उनकी ओर बड़े ही कौतूहल से देख रही थी।

माधवी ने अस्पष्ट स्वर से पूछा—"क्या तूफ़ान शांत हो गया ?"

आभा और गंगा को आशा थी कि माधवी उन दोनो को देखकर प्रसन्न होगी, किंतु वे उनके लिये अब केवल अपरिचित थीं।

आभा ने माधवी के कपोल के पास अपना मुख ले जाकर कहा—"अम्मा, अम्मा, यह तुम्हारी आभा है। क्या तुम मुझे नहीं पहचानतीं ?"

माधवी ने स्फुट स्वर में कहा—"आभा, आभा, कौन आभा! मैं तो आभा नाम की किसी लड़की को नहीं जानती। हाँ, राधा को ज़रूर जानती हूँ, जिसने उन दुष्ट द्वीपोवालों से मेरी रक्षा की है, और शायद उस कप्तान से भी की, जो तूफ़ान में मेरी इज़्ज़त-आबरू लेने पर कटिबद्ध था। हाँ, यह तो बतलाओ, मैं कहाँ हूँ, और राधा कहाँ है?"

आभा ने अपने हृदय की आशाओं को दबाते हुए डॉक्टर नीलकंठ से कहा—"पापा, चोट लग जाने से शायद अम्मा की सुध-बुध जाती रही है, और अब प्रलाप कर रही हैं।"

गंगा बड़े ध्यान से माधवी की ओर देख रही थी।

डॉक्टर नीलकंठ ने आभा के कथन के उत्तर में कहा—"नहीं आभा, तुम्हारा यह अनुमान सर्वथा मिथ्या है। इसे वास्तविक ज्ञान अब हुआ है।"

उन्होंने बड़े कष्ट से अपनी मनोवेदना छिपाई।

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"आपका अनुमान सत्य प्रतीत होता है। दर असल इस वक़्त पूरी तरह से होश हुआ है।"

माधवी ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उन लोगों की ओर देखते हुए पूछा—'क्या है? आप लोग मेरी ओर इस प्रकार क्यों देख रहे हैं? जहाज़ तूफ़ान से बच गया है या नहीं? राधा कहाँ है? क्या वह भी मुझे धोखा देकर चली गई? क्या आप राधा को नहीं पहचानते?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"राधा यहाँ है, अभी बुलाता हूँ। उस बदमाश कप्तान का जहाज़ डूब गया, और वह भी डूब-मरा। आप और राधा, दोनों बच गई हैं, और हम वक़्त बिलकुल निरापद हैं। आपको क्या कुछ याद है कि आप कैसे बेहोश हो गई थीं?"

माधवी ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"उफ़्! जहाज़ डूब गया? तब तो जहाज़ के कितने ही आदमी डूब गए होंगे। किस प्रकार उनके प्राण निकले होंगे!"

माधवी विचार में पड़ गई।

आभा ने अधीर स्वर में कहा—"अम्मा, क्या आप मुझे फिर भूल गईं?"

यह कहकर वह माधवी के वक्षःस्थल पर गिर पड़ी। माधवी उसकी ओर व्याकुल दृष्टि से देखने लगी।

डॉक्टर नीलकंठ ने आभा को उठाते हुए अवरुद्ध कंठ से कहा—"आभा, किस छलमयी छलना के फेर में पड़ रही हो। वह तो एक स्वप्न था, जिसने क्षण-भर के लिये हमें अपनी झलक दिखा दी। जिस प्रकार जागने पर स्वप्न का नाश होता है, उसी प्रकार अब यह भाव भी नष्ट हो गया। इसमें तिल-भर संदेह नहीं कि यह उस जन्म की तुम्हारी माता है, परंतु इस जन्म के विकास के साथ पुरानी भावनाओं और विचारों का अंत हो गया। अब एक नवीन संसार का सूत्र-पात है। यह तो भगवान् की इच्छा थी, जिसने अपना चमत्कार दिखाकर हमारे नेत्र खोल दिए हैं। मस्तिष्क का वह स्थान, जहाँ अतीत की स्मृति संचित रहती है, भीषण धक्का लगने से उथल-पुथल गया था, अब दूसरा धक्का लगने से सब वस्तुएँ यथास्थान आ गईं, और पुराने कार्य-क्रम पर मानसिक विचार अपना काम करने लगे। अब चाहे जितना यत्न करो, गत जीवन की स्मृति पुनः जाग्रत् नहीं होने की, और तुम्हारी मा अब सदैव के लिये पुनः मर गई समझो।"

कहते-कहते उनके नेत्र अश्रुओं से सिक्त हो गए, और कंठ-स्वर रुक गया। आभा ने बालकों की भाँति पिता के वक्षःस्थल में अपना

सिर छिपाते हुए अधीरता से कहा—"पापा, मैं तो अम्मा से दो बातें भी न कर पाई।"

यह कहकर वह बड़े वेग से रो पड़ी।

डॉक्टर नीलकंठ का कलेजा पानी-पानी होकर बहा जा रहा था। उन्होंने आभा की पीठ पर सस्नेह हाथ फेरते हुए कहा—"आभा, तुम्हारी मा तो बहुत दिन हुए, मर गई थी। अब उसकी याद करके क्यों दुखी होती हो। माता-पिता का संयुक्त भार तो मैंने अब तक वहन किया है, वैसे ही करता रहूँगा। मेरे रहते तुम्हें कोई कष्ट नहीं होने पाएगा।"

गंगा, अभागिनी गंगा अपने मन की सारी उमंगें लिए ही रह गई थी। आभा का रुदन देखकर वह भी रोने लगी। अतीत की उस दुर्घटना की पुनरावृत्ति हो रही थी, जब आभा की मा सावित्री का देहावसान आज से लगभग सत्रह वर्ष पूर्व हुआ था। अंतर केवल इतना था कि उस दिन सावित्री की आत्मा पांचभौतिक शरीर को त्यागकर इसी गायत्री के कलेवर में प्रविष्ट होने के लिये आतुरता के साथ प्रस्थान कर गई थी, और आज उसी अतीत की स्मृति निर्वाणप्राय दीपक की भाँति प्रज्वलित होकर सदैव के लिये विस्मृति के निविड़ कालिमांधकार में विलीन हो गई। स्मृति और विस्मृति के संबंध का ज्ञान इस प्रकार पहले कभी किसी को अनुभव हुआ था या नहीं, यह कौन कह सकता है? सद्‌ज्ञान के अहंकार का पुतला मनुष्य तो अपनी बौद्धिक की खिचड़ी अलग ही पकाने में संलग्न रहता है।

इसी समय पंडित मनमोहननाथ ने आकर यह रुदन का दृश्य देखा। वह स्तंभित होकर उनकी ओर देखने लगे। अभी क्षण-भर पहले पति-पत्नी का चिरकालीन पुनर्मिलन देखकर वह चकित हो हुए थे, और यहाँ एक दूसरे परिवार को रुदन करते देख, किं

भावी आशंका से सिहरकर उन्होंने डॉक्टर हुसैनभाई से पूछा—"क्या हुआ, माधवी सकुशल है?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उत्तर दिया—"जी हाँ, सकुशल है। उसकी बेहोशी तो दर असल आज ही दूर हुई है।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"मैं समझा नहीं।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उत्तर दिया—"आज सुबह की बेहोशी के बाद जब उसे होश आया, तो उसने राधा और जहाज़ तथा कैप्टेन के बारे में प्रश्न किए, जिससे अनुमान होता है कि इस जन्म के विचारों के कार्य-क्रम में, दिमाग़ में उथल-पुथल हो जाने से, जो अंतर आ गया था, दुबारा उसी ज़ख़्म पर चोट लग जाने और अपनी जगह पर आ जाने से वह पुनः जारी हो गया। अब न तो उसे पूर्व-जन्म की कोई बात याद है, और न वह डॉक्टर नीलकंठ वग़ैरह को पहचानती है। इस समय वह उसी प्रकार अपरिचित है, जैसे हम लोग।"

डॉक्टर नीलकंठ इस समय तक अपने शोक पर विजयी हो चुके थे। संयत चेष्टा से मनमोहननाथ के समीप आकर कहा—"हाँ पंडितजी, वह तमाशा ख़त्म हो गया। उसका आविर्भाव तो केवल हम लोगों को दुखी करने के लिये हुआ था। ईश्वर की सृष्टि का यह नियम है कि प्रत्येक वस्तु उतनी ही देर रहती है, जितनी देर उसकी आवश्यकता होती है। संसार का प्रत्येक मनुष्य अपना कोई विशेष कार्य करने के लिये अवतीर्ण हुआ है, इसलिये वह उसे संपादन करता है। उसका जीवन उस वक़्त तक रहेगा, जब तक वह उस विशेष कार्य का संपादन नहीं कर लेता। इसी प्रकार हमारे पापों के कारण मुरझाया हुआ घाव ताज़ा होना था, वह हो गया। अब उसके गत जीवन की स्मृति का नाश न होना अवश्य विस्मय-जनक होता।"

पंडित मनमोहननाथ ने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्या माधवी वे सब बातें भूल गई ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने मलिन हास्य के साथ कहा—"हाँ, सब कुछ भूल गई। एक बात भी याद नहीं। आभा और चाची को भी नहीं पहचानती। अतीत की सब घटनाएँ विस्मृति के पर्दे में आच्छादित हो गई हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने माधवी के समीप जाकर पूछा—"माधवी, क्या तुम मुझे नहीं पहचानतीं ?"

माधवी अपनी आँखें बंद किए किसी विचार में लीन थी। उसने धीरे-धीरे अपने नेत्र खोलकर उनकी ओर देखते हुए कहा—"यह याद नहीं पड़ता कि मैंने कभी आपको देखा है।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"अच्छा, अपना परिचय बताओ, तुम कौन हो, और कैसे टोपीवालों के जाल में पड़ गई थीं ?"

फिर डॉक्टर हुसैनभाई से पूछा—"बातें करने से कोई हानि पहुँचने की संभावना तो नहीं ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"आप थोड़ी देर तक बातें कर सकते हैं। किसी तरह की हानि न पहुँचेगी।"

पंडित मनमोहननाथ ने पुनः माधवी से वही प्रश्न किया।

माधवी कुछ देर सोचने के बाद कहने लगी—"कानपुर-ज़िले में कुंडलपुर-नामक एक गाँव है, वहाँ के पंडित मधुसूदन मिश्र की मैं लड़की हूँ। मेरे पिता का देहांत उस समय हुआ, जब वह मेरे लिये कोई पात्र खोजने गए थे। तभी से मेरे दुर्भाग्य के दिन प्रारंभ हुए। गाँववाले मुझे अभागिनी कहने लगे, और तरह-तरह के ताने देने लगे। मेरी विधवा माँ ने मेरा विवाह सत्तर वर्ष के वृद्ध से किया, और मैं विवाह के पश्चात् जब अपनी ससुराल गई, तो मेरे पतिदेव मर चुके थे। विवाह के कई साल बढ़ाया थे, और

उनके समाप्त होने के पहले ही मैं विधवा हो गई। मेरे पति के मरते ही उनके पट्टीदारों ने सारी जायदाद पर क़ब्ज़ा कर लिया, और मुझे घर से बाहर निकाल दिया। मैं पुनः अपने मायके वापस आई। सौभाग्य का सिंदूर माँग में भरकर गई थी, और उसे हमेशा के लिये पुँछवाकर वापस आई। अभागिनी होने का इससे ज़्यादा प्रमाण और क्या चाहिए। मेरी मा को और स्वयं मुझे विश्वास हो गया कि मैं मंदभागिनी हूँ। मैं जहाँ जाऊँगी, वहाँ केवल विपत्ति की सृष्टि होगी। इसी तरह कुढ़ते-कुढ़ते अपने दिन व्यतीत करने लगी। आख़िर एक दिन अम्मा का भी देहांत हो गया। मेरे पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। उन पर बहुत क़र्ज़ था। उनके सामने ही जायदाद का एक बड़ा हिस्सा महाजनों के अधीन हो चुका था, और जो कुछ बचा, वह उनके मरने के बाद नीलाम होकर चला गया। दो-तीन खेतों से हम मा-बेटी किसी तरह अपना गुज़ारा करती थीं, और उनके मरने के पश्चात् वह द्वार भी बंद हो गया। रिश्तेदारों ने क़ब्ज़ा कर लिया, और मुझे घर के बाहर निकलना पड़ा। मैं पढ़ी-लिखी थी; सोचा, शहर में जाकर किसी स्कूल में नौकर हो जाऊँगी। इसी विचार से एक रात को, गाँववालों के उपद्रव से मुक्त होने के लिये, शहर की ओर चल दी। जब मैं स्टेशन पहुँची, तो वहाँ एक वृद्ध, जिसके साथ दो स्त्रियाँ थीं, मिला। उसने मेरा हाल सुनकर कई प्रकार से मुझे आश्वासन दिया। कपटी संसार से मैं बिलकुल अनभिज्ञ थी। मैंने उसकी बातों पर विश्वास किया, और ऐसा सहृदय बंधु मिल जाने से भगवान् को मन-ही मन अनेकों धन्यवाद दिए। मुझे क्या मालूम था कि वह दुष्टों और पापियों का सरदार है। कानपुर जाकर हम लोगों को उसने एक पक्के मकान में उतारा, और

जब मैंने उसके अंदर जाकर वहाँ का रोमांचकारी दृश्य देखा, तो मैं भय से सिहर उठी। अपनी रक्षा के लिये भगवान् से प्रार्थना करने लगी। उस लंकापुरी में राधा मुझे त्रिजटा-रूप में मिल गई, जिसने मुझे आश्वासन और मेरी रक्षा करने का वचन दिया। भाग्य-वश उसी दिन सबको कलकत्ते ले जाने के लिये तार आ गया, और हमें तुरंत रवाना होना पड़ा। कलकत्ते पहुँचकर हमसे एक काग़ज़ पर अंगूठे का निशान बनवाया गया, और हमें एक जहाज़ पर बैठा दिया गया। जिस दिन जहाज़ रवाना हुआ, रात को बड़ा भयंकर तूफ़ान आया। मैं राधा से बातें कर रही थी, इसी समय एक दूसरी औरत, जो उसी पापी-दल की थी, आई, और राधा से अवश्य बातें करने लगी। मैं अपने कमरे में गई, और राधा मेरे खाने का प्रबंध करने चली गई। राधा के जाते ही वह स्त्री, जिसका नाम गुलाब था, मुझे अपने कमरे में ले चलने के लिये ज़िद करने लगी। मैं कम-से-कम इन लोगों को प्रसन्न रखना चाहती थी, क्योंकि उस पाप-पुरी में इन्हीं का सहारा था। गुलाब मुझे घुमाती हुई ऊपर के खंड में ले गई, जहाँ कप्तान का कमरा था। वहाँ उसने मुझे उसके कमरे में जाने को कहा। मेरे इनकार करने पर उसने बड़ी ज़ोर से धक्का दिया, जिससे मैं बेहोश हो गई। होश आने पर देखा, वह दुष्ट कप्तान मुझे मदिरा पिलाने का प्रयत्न कर रहा है। मैंने पीने से इनकार किया, और उसकी बहुत प्रकार से आरज़ू-मिन्नत की, परंतु वह दुष्ट न पसीजा, और मेरे ऊपर आक्रमण करने लगा। इसी समय एक बड़ा विकट शब्द हुआ, और जहाज़ बड़े ज़ोर से डगमगा गया। मैं गिर पड़ी, और फिर मुझे होश न रहा। होश आने पर मैं अपने को यहाँ पाती हूँ। बस, यही मेरी कहानी है।"

पंडित मनमोहननाथ और डॉक्टर नीलकंठ बड़े ध्यान से सुन रहे थे। उन्होंने कहा—"यहाँ पहले कभी तुम थीं, क्या तुम्हें यह याद नहीं पड़ता?"

माधवी ने उत्तर दिया—"जी नहीं, मैं इस जगह कभी नहीं आई। इतनी बड़ी होकर मैं कभी अपने गाँव से बाहर नहीं गई। मुझे याद नहीं, मैंने कभी आप लोगों को देखा हो। आपके चेहरे से मालूम होता है कि आप सज्जन पुरुष हैं। मैं अनाथ हूँ, दुष्टों से मेरी रक्षा कीजिए, यही प्रार्थना बारंबार हाथ जोड़कर करती हूँ।"

कहते-कहते माधवी की आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी।

पंडित मनमोहननाथ ने स्नेह के साथ उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"बेटी, तुम किसी प्रकार की चिंता मत करो। तुम्हें मैंने अपनी धर्म-कन्या बनाया है। तुम अपना सब भय दूर करो।"

माधवी को आश्वासन मिला। उसने कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टि से पंडित मनमोहननाथ की ओर देखा।

उनकी आँखों से भी ममत्व और वात्सल्य द्रवीभूत होकर उसे सांत्वना प्रदान करने लगे।

---

(८)

सर रामकृष्ण ने बड़े आदर के साथ बाबू मातादीन को बैठाते हुए कहा—"आज आप बहुत दिनों में आए ?"

अभी थोड़ी देर पहले पुलिस-डायरी उनके पास आ चुकी थी, जिसे पढ़कर उन्हें भली भाँति मालूम था कि वह कहाँ गए और क्या करते थे। यद्यपि बाबू मातादीन अपने को बहुत चालाक समझते थे, और उन्हें इस बात का अभिमान भी था, मगर सी० आई० डी० के व्यक्ति उनसे भी अधिक धूर्त थे। जो आजकल उनका बड़ा प्रिय नौकर हो रहा था, वह वास्तव में सर रामकृष्ण के आज्ञानुसार काम करता हुआ सी० आई० डी० का एक व्यक्ति था, जो गुप्त रीति से उनकी गति-विधि पर नज़र रखता था, और अपनी रिपोर्ट नित्य भेजा करता था। इसके अतिरिक्त दो व्यक्ति और भी थे, जो बाहर रहकर उन पर नज़र रखते थे।

बाबू मातादीन के बैठ जाने पर उन्होंने अपने प्रश्न को दोहराया।

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"हुज़ूर के दुश्मनों को शिकस्त देने के फ़िराक़ में गया था।"

सर रामकृष्ण ने उन्मादित करनेवाली मधुर हँसी के साथ कहा—"कहाँ-कहाँ गए, और क्या किया, ज़रा मैं भी सुनूँ।"

बाबू मातादीन ने प्रसन्न मुद्रा से कहा—"अनूपकुमारी के असली पति का पता लग गया है! वह अभी जीवित है।"

सर रामकृष्ण ने उत्सुकता-पूर्वक कहा—"कहाँ है?"

बाबू मातादीन ने सहास्य उत्तर दिया—"वह संन्यासी होकर

देश-विदेश में उपदेश देता फिरता है। आजकल वह विदेश में है, लेकिन शीघ्र ही आने की संभावना है। मुझे यह भय था कि कहीं वह मर न गया हो, लेकिन यह ठीक पता चल गया है कि वह जीवित है। यही समाचार देने के लिये मैं ख़िदमत में हाज़िर हुआ हूँ।"

सर रामकृष्ण ने कहा—"यह तो अच्छी ख़बर है। अब आप उसकी हुलिया थाने में जाकर लिखा दें, पुलिस उसका पता लगा लेगी। मैं इंस्पेक्टर जेनरल पुलिस को अपना डी० ओ० लिख दूँगा।"

बाबू मातादीन ने उठते हुए कहा—"जो हुक्म। हाँ, क्या आपने कुँवर साहब को वह ओषधि खिलाई थी?"

सर रामकृष्ण ने प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए कहा—"उफ़्! मैं तो उसके लिये आपको धन्यवाद देना बिलकुल भूल गया था। आप कहेंगे, बड़े आदमियों का स्वभाव ऐसा ही होता है। भाई, माफ़ करना।"

बाबू मातादीन ने उत्फुल्ल होकर कहा—"यह आप क्या फ़रमाते हैं। मैं तो आपके पैर की जूतियों के पास बैठनेवाला हूँ। ख़ैर, मुझे सबसे बड़ी ख़ुशी इस बात की है कि मेरा कथन सत्य प्रमाणित हुआ। मुझे यक़ीन है, उसकी एक ही ख़ूराक से कुँवर साहब की बीमारी चली गई होगी।"

सर रामकृष्ण ने मुस्किराते हुए कहा—"हाँ, फ़ायदा तो एक ही ख़ूराक ने किया है। ज़रा ठहरिए, मैं अभी आता हूँ।"

यह कहकर वह घर के अंदर चले गए, और थोड़ी देर में नोटों का एक पुलिंदा लाकर उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"लीजिए, यह आपके लिये इनाम है। ये पाँच हज़ार के नोट हैं।"

बाबू मातादीन ने बड़ी दीनता से उन्हें वापस करते हुए कहा—

"यह आप क्या फ़रमाते हैं, क्या मैं यह कभी ले सकता हूँ ? पहले ही अर्ज़ कर चुका हूँ कि कमतरीन आपका पुश्तैनी ख़ादिम है, कुँवर साहब का तो कम-से-कम है ही। अगर अपने खाल की जूतियाँ बनाकर उन्हें और कुँवरानी साहबा को पहनाऊँ, तो भी उनके एहसान से मैं उऋण नहीं हो सकता। मेरे लिये इतना ही पुरस्कार बहुत है, जो मुझे संतोष और अकथनीय आनंद प्राप्त हुआ है। मैं इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। क्या मैं कुँवर साहब के दर्शन कर सकता हूँ ?"

सर रामकृष्ण ने नोटों को मेज़ पर रखते हुए कहा—"यह याद रखिए, आप इन्हें मंजूर न करके मुझे और ख़ासकर लेडी साहबा को बहुत दुःखित कर रहे हैं। कुँवर साहब इस समय कहीं बाहर गए हुए हैं, किसी दूसरे वक़्त आप आकर उनसे मिल लीजिएगा।"

बाबू मातादीन बिदा होकर चले गए।

उनके जाने के बाद सर रामकृष्ण धीमे स्वर में कहने लगे—"वास्तव में बड़ा धूर्त आदमी है। मैंने लोभ दिया, लेकिन इसमें न फँसा। यदि कोई कच्चा खिलाड़ी होता, तो पाँच हज़ार रुपए कदापि न छोड़ता। मालूम होता है, कोई बहुत बड़ी मछली मारने की प्रतीक्षा कर रहा है। अच्छा, इसकी उस दवा को तो किसी पर आज़माऊँ। अभी तक वह ज्यों-की-त्यों पड़ी है। जिस दवा के प्रभाव से कुँवर साहब अच्छे हुए हैं, वह ज़रूर इसी की बनाई हुई है। बड़ा विलक्षण पुरुष है। मैंने भी इसकी दोस्ती कर ली है, देखूँ, यह कितना दौड़ता है। जिस वक़्त यह मेरे लिये कंटक सिद्ध होगा, निकालकर फेंक दूँगा। बंसी में फँसी हुई मछली चाहे जितनी दूर भाग जाय, शिकारी जब उसे खींचेगा, तो आना ही पड़ेगा।

"कुँवर साहब के लिये अब क्या करना उचित होगा? राजा साहब को बुढ़ापे में इश्क़ सवार हुआ है, जिससे अपने घरवालों की

फ़िक्र नहीं करते। लड़कियाँ इतनी बड़ी हो गई हैं, लेकिन विवाह नहीं करते। ऐसे गुणवान् पुत्र को त्यागकर एक रखैल के लड़के को गद्दी पर बैठाने के लिये आकुल हैं। अवध के ताल्लुक़ेदारों में आज तक ऐसा नहीं हुआ, अब होना भी असंभव है। तभी तो मैं भी चुपचाप बैठा हूँ। अगर आज चाहूँ, तो मैं उनकी सारी इज़्ज़त ख़ाक में मिला दूँ, लेकिन फिर भी मेरे संबंधी हैं। इसमें मेरी ही बदनामी होगी। यह भी सुनने में आया है कि वह अनूपकुमारी से विवाह करने जा रहे हैं। हालाँकि इस विवाह करने से मेरी कोई क्षति नहीं, और न इससे कुँवर साहब के अधिकारों पर कुछ व्याघात हो सकता है, परंतु है लज्जा-जनक। मेरे संबंधी होने से मुझे भी नदामत उठानी पड़ेगी। इसे रोकना मेरा कर्तव्य है।"

इसी समय मालती ने आकर कहा—"क्या आपने आज का लीडर पढ़ा है?"

उसके स्वर में उद्विग्नता थी।

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"अभी नहीं पढ़ा। आज काम बहुत था, इसलिये अवकाश नहीं मिला। क्या कोई विशेष समाचार है?"

मालती ने सिर झुकाए हुए कहा—"जी हाँ, अनूपगढ़ के बारे में एक अद्भुत ख़बर आई है।"

सर रामकृष्ण ने उत्सुकता-पूर्वक कहा—"देखूँ, क्या ख़बर है!"

मालती समाचार-पत्र देकर चली गई।

सर रामकृष्ण ध्यान-पूर्वक पढ़ने लगे। लीडर के रायबरेली के संवाद-दाता ने लिखा था—"अनूपगढ़ के राजा सूरजबख़्शसिंह हिंदू-समाज के सुधारक नेता हैं। आप प्रसिद्ध दानी हैं। और उनके दान से आज कितनी ही संस्थाएँ चल रही हैं। आप केवल आदर्शवादी, निष्कर्मण्य सुधारक नहीं, वरन् कर्मिष्ठ हैं। आपके

गुणों से मोहित होकर जनता ने आपको एसेंबली का सदस्य मनो-नीत करके भेजा है। आप एसेंबली में कई महत्त्व-पूर्ण प्रस्ताव रखनेवाले हैं, जिससे हिंदू-समाज की स्त्रियों को विशेष अधिकार मिलेंगे, और उनकी शोचनीय दशा में बहुत कुछ परिवर्तन होगा। यह जानकर सबको प्रसन्नता होगी कि यद्यपि उनकी अवस्था विवाह योग्य नहीं है, और न वह विवाह करने के इच्छुक हैं, परंतु संसार के सामने एक उदाहरण रखने के लिये इस अवस्था में भी विधवा-विवाह करेंगे। यह विवाह अनुकूल अवस्था की वधू के साथ होगा। वधू प्रौढ़ अवस्था की है, जिसमें अनमेल विवाह नहीं कहा जा सकता। ताल्लुक़ेदारों के समाज में ऐसा विधवा-विवाह पहला ही है। नवयुवकों को इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, और साहस-पूर्वक विधवा-विवाह कर हिंदू-समाज का पाप धोने की कोशिश करनी चाहिए। अंत में हम श्रीमान् राजा साहब को उनके साहस और निर्भीक विचारों के लिये बधाई देते हैं!"

सर रामकृष्ण यह समाचार पढ़कर ज़ोर से हँस पड़े। उनकी हँसी से कमरा गूँज उठा।

उनकी हँसी सुनकर लेडी चंद्रप्रभा ने आकर पूछा—"ऐसी हँसने की कौन ख़बर आई है?"

सर रामकृष्ण ने हँसते हुए कहा—"बड़ा ही अद्भुत समाचार है। क्या यह तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारे समधी साहब एक विधवा से विवाह करके एक आदर्श हम लोगों के समाज में रखने जा रहे हैं। अब मुझे भी विधवा-विवाह करने के लिये किसी बूढ़ी विधवा को खोजना पड़ेगा।"

यह कहकर वह फिर हँसने लगे।

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"वाह! इसमें हँसने की कौन बात! तुम भी कोई विधवा से विवाह कर लो। तुम्हारा ही अरमान क्यों

रह जाय। विधवा वही अनूपकुमारी होगी, जिसने उस घर की सारी इज़्ज़त-आबरू पर पानी फेर दिया है।"

सर रामकृष्ण ने हँसी रोकते हुए कहा—"मालूम तो ऐसा ही होता है। अभी उस भाग्यशालिनी का नाम ज़ाहिर तो नहीं हुआ, लेकिन अनुमान से ऐसा ही मालूम होता है। बेचारे को बुढ़ापे में बुढ़भस सवार हुआ है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"यह विवाह तो रोकना पड़ेगा। चाहे जैसे हो, मैं यह विवाह कदापि न होने दूँगी।"

सर रामकृष्ण ने हँसकर कहा—"इसका रोकना मेरे और तुम्हारे लिये कब संभव है। विवाह हो जाने से हमारा नुक़सान ही क्या है। इस विवाह से कुँवर साहब के हक़ पर कोई बुरा असर नहीं पड़ता। पाटवी तो पाटवी ही रहेगा, और अभी तक ऐसा क़ानून नहीं बना, जिससे रखैल के लड़के गद्दी के मालिक हो सकें।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"लेकिन विवाह के बाद वह रखैल नहीं रहेगी, वह तो विवाहिता हो जायगी।"

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"उसका पुत्र उस समय पैदा हुआ था, जब वह उप-पत्नी होकर रहती थी, इसलिये वह किसी प्रकार गद्दी का हक़दार नहीं हो सकता।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"लेकिन जो पुत्र विवाह के बाद होंगे, वे तो गुज़ारा पाने के हक़दार होंगे?"

सर रामकृष्ण ने कहा—"ऐसा विवाह हिंदू-समाज की रीति के प्रतिकूल है, इससे यह क़ानूनन् विहित नहीं समझा जायगा।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"विधवा-विवाह को सरकार ने जायज़ क़रार दिया है, फिर वह नाजायज़ कैसे समझा जायगा?"

सर रामकृष्ण ने मुस्किराते हुए कहा—"वर और वधू को एक ही जाति का होना चाहिए, और इसके अतिरिक्त हम ताल्लुक़ेदारों

का क़ानून ही दूसरा है। लेकिन यह विवाह अवश्य रोकना पड़ेगा। और कुछ नहीं, इससे हमारी इज़्ज़त में भी बट्टा लगता है, क्योंकि वह हमारे निकट-संबंधी हैं।"

लेडी चंद्रप्रभा ने हँसते हुए कहा—"ख़ैर, यह तो आपको भी अंगीकार करना पड़ा कि यह विवाह रोकना चाहिए।"

सर रामकृष्ण हँसने लगे।

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"उस बाबू मातादीन का क्या हुआ? उसका बहुत दिनों से कोई हाल नहीं मिला?"

सर रामकृष्ण ने हँसकर कहा—"वह तो आज भी आया था। बड़ा ही धूर्त आदमी है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने उत्सुकता के साथ पूछा—"क्या कहता था?"

सर रामकृष्ण ने कहा—"कह गया है कि अनूपकुमारी के पति का पता लग गया है, और वह अभी तक जीवित है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने विस्मित स्वर में पूछा—"क्या अभी तक अनूप-कुमारी का पति जीवित है! तब तो वह विधवा नहीं है। हिंदू-क़ानून के मुताबिक़ कोई हिंदू-स्त्री पति रहते दूसरा विवाह नहीं कर सकती। अगर हम लोग विवाह होने के पहले-पहले उसके पति को ढूँढ़ निकालें, तो फिर यह विवाह नहीं हो सकता। अपने आप रुक जायगा।"

सर रामकृष्ण ने मुस्किराते हुए कहा—"यह तो ठीक है, लेकिन उसे ढूँढ़ निकालना कोई सहज काम नहीं। मातादीन यह भी कहता था कि इस समय वह विदेश में है। मैंने उससे उसकी हुलिया थाने में लिखा देने को कह दिया है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"चाहे जैसे हो, इस विवाह को रोकना ही पड़ेगा। मैं कुछ नहीं जानती।"

सर रामकृष्ण ने हाथ जोड़कर कहा—"जो हुक्म सरकार! घर की सरकार का हुक्म तो पहले मानना पड़ता है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने हँसते हुए कहा—"यह क्या करते हो, तुम्हें ज़रा भी शर्म नहीं। सब लड़के-बाले बड़े हो गए हैं; अगर कोई देख ले, तो क्या कहेगा? मैं आज से तुम्हारे कमरे में क्या, तुम्हारे पास नहीं आऊँगी। तुम्हारा दिमाग़ तो अँगरेज़ों के साथ रहकर उनका-जैसा हो गया है, लेकिन मैं हिंदू-स्त्री हूँ, मुझे यह कुछ अच्छा नहीं लगता।"

यह कहकर वह तेज़ी के साथ कमरे से बाहर हो गई।

सर रामकृष्ण हँसते हुए उन्हें बुलाते ही रहे।

---

(६)

राजा सूरजबख़्शसिंह ने अनूपकुमारी का चित्र उसके सामने रखते हुए कहा—"देखो, मैं तुम्हारा यह चित्र अख़बारों में प्रकाशित कराऊँगा। तुम्हें पसंद है या नहीं?"

अनूपकुमारी ने मलिन हास्य के साथ कहा—"यह फ़िज़ूल आडंबर किस लिये करते हो। अब मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता।"

राजा सूरजबख़्शसिंह के मुख की श्री अंतर्हित हो गई। उनके भूले हुए मन के घाव पर धक्का लगा, और अपनी वास्तविक दशा का भान हो गया। बाबू मातादीन के प्रति हृदय विद्वेष से जल उठा। उन्होंने तेज़ी के साथ कहा—"तुम इतना परेशान क्यों होती हो, मैं शीघ्र ही अच्छा हो जाऊँगा। दवा ज़रूर कुछ-न-कुछ फ़ायदा दिखाएगी। दुश्मनों के वार से घबराना क्षत्रियों का धर्म नहीं। मातादीन की दवा का असर हमेशा के लिये नहीं रह सकता, उसकी भी एक अवधि होगी, जैसी सब चीज़ों की होती है। जब उसकी उत्तेजक दवा का असर चंद घंटे रहता है, तो इसका प्रभाव चंद दिन या महीने रहेगा। यह कभी संभव नहीं कि हमेशा के लिये मुझे अपंग कर दे।"

अनूपकुमारी ने अपनी आँखें पोंछते हुए कहा—"मुझे विश्वास नहीं होता। जब तक तुम पूर्ण रूप से अच्छे नहीं हो जाते, तब तक मैं कुछ नहीं सच मानती। जाते-जाते उस दुष्ट ने ऐसा वार किया है, जिसका कोई जवाब नहीं दिया जा सकता। यदि मैं उसे देख पाऊँ, तो फिर चाहे जो कुछ हो, उसके कलेजे के ख़ून से अपनी

छुरी की प्यास बुझाऊँ। इसके लिये अगर फाँसी पर लटकना पड़े, तो कोई परवा नहीं।"

कहते-कहते उसका सहज सौंदर्य और रूप-माधुरी भयंकरता के पर्दे से झाँकने लगी। उसकी मतवाली आँखों की सहज अरुणाभा तीव्र होकर अग्नि के शोलों की भाँति प्रज्वलित हो उठी। उसके अधर फड़कने लगे, और जिह्वा मनोभावों को व्यक्त करने में असमर्थ होकर लड़खड़ाने लगी। उसका वह रूप देखकर राजा सूरजबख़्शसिंह भी काँप उठे।

उन्होंने उसके समीप पड़ा हुआ चित्र उठा लिया, और कहने लगे—"फ़िज़ूल अपना मन क्यों परेशान करती हो। हरामज़ादा मेरे ही घर मे पला, और अख़ीर में मुझ पर ही वार किया। मैं जब सब बातें सोचता हूँ, तो मेरा ख़ून अपने आप खौलने लगता है, और यही विचार उठता है कि इस हरामख़ोर को एक-एक बूँद पानी के लिये तरसाकर मारूँ। ईश्वर चाहेगा, तो ऐसा ही होगा।"

अनूपकुमारी को उनके कथन पर विश्वास नहीं हुआ। वह संदिग्ध दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी। फिर कहा—"मुझे उसकी शक्ति का पता है। तुम कौशल में उससे कभी नहीं पार पा सकते। वह हमारे बहुत समीप है, लेकिन हमसे छिपा हुआ है। जब उसके वार करने का समय आएगा, वह प्रकट होगा, और अपना काम कर डालेगा। इसके पहले उसका पता लगना, उसकी गंध तक मिलना असंभव है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया—"तो क्या वह अकेला ही हम लोगों पर विजयी होगा?"

अनूपकुमारी ने कहा—"यह मैं नहीं कहती, और शायद इस बार ऐसा न होने पाएगा। उसने मुझे हमेशा नीचा दिखाया है, अब मुक़ाबला होने पर ऐसा न होगा। दो में से एक बात

होगी, या तो वह मेरा सर्वनाश करेगा, या मैं ही उसका अंत कर दूँगी।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने घबराकर कहा—"यह तुम बार-बार क्या कहती हो। उसे यमपुर पहुँचाने के लिये मेरे पास सैकड़ों आदमी हैं।"

अनूपकुमारी ने धीमे, किंतु दृढ़ कंठ से कहा—"उस पर हाथ उठाने की शक्ति आपके किसी आदमी में नहीं। उसकी आँखों में वह शक्ति है कि जिसे वह एक बार देख दे, वह उसका अनुगत हो जाता है। मुझे आपके आदमियों पर तनिक विश्वास नहीं। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि राजमहल के सब नौकर उसके नौकर हैं, और उसके गुप्तचरों का काम देते हैं। अभी आपको उसकी शक्ति का अंदाज़ा नहीं है। अगर कोई उससे लोहा ले सकता है, तो वह केवल मैं हूँ। मेरा सर्वनाश करने के लिये ही वह अंतर्धान हुआ है, और कोई विकट षड्यंत्र रचने की योजना में है।"

कहते-कहते वह फिर भयंकर हो उठी। उसके वास्तविक रूप की एक झलक फिर राजा सूरजबख़्शसिंह को दिखाई दी, और इस बार वह पहले से भी अधिक सिहर उठे।

अनूपकुमारी कहने लगी—"यह वह अच्छी तरह जानता है कि मेरे रहते उसकी चालें नहीं चलेंगी, इसलिये वह मुझे अपने मार्ग से हटाना चाहता है। आपको अपंग बनाकर उसने मुझे यह चेतावनी दी है कि मैं फिर उसकी शरण में जाऊँ, और उसके हाथों की कठपुतली होकर नाचूँ। अपना और अपने बच्चे का सर्वनाश कराऊँ। परंतु मैंने निश्चय कर लिया है कि ऐसा नहीं होगा। मैं अब उसके पैर नहीं पड़ूँगी, चाहे मेरा सर्वनाश ही क्यों न हो जाय। वह कब तक इस प्रकार छिपकर अपनी जान बचाएगा।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने आकुल होकर कहा—"तुम क्या कह रही हो, मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

अनूपकुमारी ने उनकी ओर मोहन कटाक्ष करके, कुछ अँगड़ाते हुए कहा—"थोड़े दिनों में सब समझ में आएगा। अब हमें कौशल से काम लेना पड़ेगा। अब हमारे सामने सबसे पहले यह काम है, कि किसी तरह मातादीन का पता लगावें कि वह कहाँ है, और क्या कर रहा है। हमारे पास ऐसे चतुर व्यक्ति नहीं, जो उसे खोज-कर ढूँढ़ निकालें?..."

राजा सूरजबख़्शसिंह ने बात काटकर कहा—"लेकिन क्या हम चतुर आदमी नौकर नहीं रख सकते?"

अनूपकुमारी ने उस प्रकार मुस्किराते हुए कहा, जैसे कोई आचार्य अपने भोले शिष्य के अत्यंत सरल प्रश्न पर मुस्किराता है—"अब जो आदमी हम नौकर रक्खेंगी, वह उसका ही आदमी होगा। इसी काम के लिये उसके सैकड़ों आदमी फिर रहे होंगे, जो इस बात की कोशिश में होंगे कि हम किसी तरह यहाँ नौकर हो जायँ। आप कोई नया आदमी बिना मुझे दिखाए नौकर न रक्खें।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"ठीक है, यह ज़िम्मेवारी भी छूटी। नए दीवान को मैं हुक्म दे दूँगा कि जिस किसी को नौकर रखना हो, उसे पहले ज़नानी ड्योढ़ी पर भेजकर मंज़ूरी हासिल कर ली जाय।"

अनूपकुमारी ने मुस्किराते हुए कहा—"इस तरह नहीं, यों हुक्म दीजिए कि जिस किसी को नौकर रक्खा जाय, उसको असालतन सरकार में पेश किया जाय, और सरकार की मंज़ूरी हासिल होने पर नौकर समझा जाय। हाला-वाला किसी को नौकर न रक्खा जाय, और न किसी का इस्तीफ़ा मंज़ूर किया जाय या कोई बर्ख़ास्त किया जाय।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"लेकिन मुझसे यह आफ़त और माथा-पच्ची न होगी, इसीलिये मैंने दीवान को कुल अख़्तियारात दे रक्खे हैं।"

अनूपकुमारी ने कहा—"मैं सब कर लूँगी, आप घबराएँ नहीं। जब राज्य करना है, तो माथा-पच्ची भी करनी पड़ती है। जो काम हो, वह आपके नाम से होना चाहिए, इसी में ख़ूबसूरती है। सरकार तो हमेशा ज़नानी ड्योढ़ी में ही रहते हैं, और रहेंगे, तब नौकरी का नया उम्मेदवार तो यहीं आवेगा। मैं उसकी परीक्षा ले लूँगी। इसमें न तो किसी को बुरा लगेगा, और न नाम ही बदनाम होगा; काम भी चल जायगा।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने उसकी ओर प्रशंसा-पूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"यह बहुत ठीक है। तुममें भगवान् ने रूप के साथ गुण भी दिया है, बुद्धि भी दी है। तुम्हें पाकर मैं यथार्थ ही धन्य हो गया।"

अनूपकुमारी ने सिर झुकाते हुए कहा—"यह आपकी मिहरबानी है, नहीं तो मेरी क्या हक़ीक़त। ख़ैर, अब आप वह उपाय कीजिए, जिससे नासिरुद्दीन अपने आप प्रकट हो जाय, और हमें कुछ विशेष प्रयत्न न करना पड़े।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने उसकी ओर देखते हुए कहा—"उपाय तुम्हीं बताओ, मैं तो उतने ही क़दम चलूँगा, जितने तुम कहोगी। यह मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम्हारी-जैसी कुशाग्र बुद्धि मेरी नहीं।"

अनूपकुमारी ने प्रसन्न कंठ से कहा—"यह आप क्या बार-बार कहते हैं। आपके साथ मेरा विवाह होने की बात नासिरुद्दीन को बिलकुल अच्छी नहीं लगी, और न उसे यही अच्छा लगा कि लाल साहब के बजाय हमारा पृथ्वीसिंह गद्दी पर बैठे।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने तीव्रता के साथ कहा—"उसे अच्छा नहीं लगा, इसकी परवा कौन करता है। उसे अच्छा या बुरा लगने से मेरा न कोई फ़ायदा है, और न नुक़सान।"

अनूपकुमारी ने हँसकर कहा—"बस, इसी बात से मेरा और उसका झगड़ा शुरू हुआ। मैंने उसे साफ़-साफ़ कह दिया कि इस बारे में मैं कुछ नहीं जानती। जो राजा साहब की इच्छा होगी, वह करेंगे। उसने दो-एक बार मुझे चेतावनी दी, और कहा कि मैं ऐसा अन्याय न होने दूँगा, गद्दी पर तो लाल साहब ही बैठेंगे। एक दिन उसने यहाँ तक कह डाला था कि अगर तुम अपने पैर बहुत फैलाओगी, तो मैं तुम्हें कुतिया की तरह राजमहल से बाहर निकाल दूँगा, फिर तुम्हें रोटियाँ तक के लाले पड़ जायँगे।"

राजा सूरजबख़्शसिंह के मस्तक पर बल पड़ने लगे। उन्होंने भ्रू कुंचित करके कहा—"उस नमकहराम का इतना ऊँचा दिमाग़ चढ़ गया था। पहले मुझसे यह बात क्यों नहीं कही, नहीं तो उसकी दाढ़ी उखाड़कर और उसमें मिरचें लगाकर बिदा करता।"

अनूपकुमारी ने एक बंकिम कटाक्ष के साथ उनकी ओर देखा, और कहा—"उसने मुझे डरा दिया था, इसलिये नहीं कहा। उस ज़माने में आप उसके हाथों के खिलौने हो रहे थे। उसने कहा था कि अगर इस बात की चरचा राजा साहब से की, तो याद रखना, उसी दिन तुम्हें राजमहल के बाहर निकलना पड़ेगा।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने अधीरता के साथ कहा—"क्या बताऊँ, तुमने पहले यह बात क्यों नहीं कही ?"

अनूपकुमारी ने कहा—"पहले मेरा इतना साहस न होता था। उसने यह भी कहा था कि मैं राजा साहब से कहूँगा कि यह हत्यारिणी है, अपने पति का ख़ून करके आई है, और मेरे पास एक ऐसा आदमी है, जो यह कहेगा कि यह मेरी स्त्री है, इसने मुझे ज़हर

देकर मारा था, और अगर राजा साहब कुछ ध्यान नहीं देंगे, तो फिर पुलिस में रिपोर्ट कर तुम्हारी बेइज़्ज़ती करूँगा...।'

राजा साहब ने बात काटकर कहा—"अच्छा, उसकी यहाँ तक हिम्मत थी ?"

अनूपकुमारी ने भोले स्वर में कहा—"जी हाँ, वह बड़ा साहसी था। अपनी इ्ज़्ज़त जाने के भय से मैं चुपचाप रही। मैंने आपसे कहा भी था कि इस बात को छोड़ दें, लेकिन आप माने नहीं। आख़िर वह यहाँ से हमारे होशियार होने के पहले ही निकल भागा। अब, जहाँ तक मेरा अनुमान है, वह उसी षड्यंत्र के रचने में लगा होगा। किसी लोभी साधू-संन्यासी को खड़ा करेगा, और उससे कहलवाएगा कि अनूपकुमारी मेरी परिणीता स्त्री है, और उसने मुझे विष देकर मेरी हत्या करने की कोशिश की थी।"

अनूपकुमारी की बात से चकित होकर राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"वह कुत्ता हज़ार भूके, मगर बिगाड़ क्या सकता है। मेरे ख़िलाफ़ पुलिस भी मामला में हाथ डालने के पहले दो बार सोचेगी। इसके अलावा मेरे पास असंख्य रुपए हैं, मैं सबका मुँह बंद कर दूँगा। प्रथम तो मातादीन ख़ुद ऐसा करने की हिम्मत न करेगा, दूसरे अगर की भी, तो सुबूत कहाँ से पेश करेगा। मुर्दे कहानी नहीं कहा करते। करने तो दो, उलटा मातादीन ख़ुद फँसेगा, और जेल जायगा। वह इतना बुद्धू नहीं, जो साँप के बिल में हाथ डाले। औरत-ज़ात को धमकाने के लिये बहुत है। अगर कहीं पहले ज़िक्र किया होता, तो मैं तुम्हारे सामने उसका भंडाफोड़ करा देता।"

अनूपकुमारी ने कहा—"नहीं, उसमें सब कर गुज़रने की ताक़त है। वह सब तरफ़ से मज़बूती करके मैदान में उतरेगा। इसीलिये

वह गुरु हुआ है। जाने के दिन भी वह इसी बात की चेतावनी देकर गया।"

राजा साहब ने लापरवाही दिखलाते हुए कहा—"इस ओर से तो तुम बेफ़िक्र रहो, मैं उसे अच्छी तरह समझ लूँगा। उसे मैदान में उतरने तो दो, फिर मैं उससे अच्छी तरह निपट लूँगा।"

अनूपकुमारी ने उनके पास खिसककर कहा—"तुम तो उसकी बात पर विश्वास न करोगे?" यह कहकर उसने बड़ी मधुर दृष्टि से उनकी ओर देखा।

राजा साहब ने आदर और आश्वासन के साथ उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—"मातादीन क्या, अगर ब्रह्मा भी स्वयं आकर कहें, तो मैं स्वप्न में भी विश्वास नहीं कर सकता। अगर शायद कभी आँखों से भी देख लूँ, तो भी मैं उनका भ्रम समझूँगा।"

अनूपकुमारी ने मन-ही-मन संतुष्ट होकर कहा—"अगर आप विश्वास नहीं करेंगे, तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ सकता। भय केवल आपकी तरफ़ से है, क्योंकि आपके रुष्ट होने से मैं संसार में जीवित नहीं रह सकती, और फिर मेरा संसार में है ही क्या।"

कहते-कहते अनूपकुमारी की आँखों से अजस्र अश्रु-धार बह चली।

रमणी—विशेषकर प्रेयसी के आँसू दिग्विजयी होते हैं। अनूपकुमारी के आँसुओं ने राजा साहब के कलेजे में बर्छियों का काम किया। उन्होंने उसे हृदय से लगाते हुए, आदर के साथ आँखें पोछते हुए, कहा—"अनूप, तुम इतना अधीर क्यों होती हो? जानती हो, तुम्हारे आँसुओं से मुझे कितना कष्ट होता है। यदि तुम पहले से भी न कहतीं, तो मैं कदापि विश्वास न करता। जो बात अनुमान तथा कल्पना के बाहर है, उसे कौन विश्वास करेगा। मैं अब इसी निश्चय पर पहुँचता हूँ कि हम लोगों का विवाह क़ानूनी रीति से जितनी जल्द हो जाय, उतना अच्छा।

विवाह हो जाने के बाद तुम्हारे अधिकार कहीं अधिक हो जायँगे। उस वक्त तुम अनूपगढ़ की रानी हो जाओगी, फिर तुम्हारे ऊपर सहसा किसी को भी हाथ डालने का साहस न होगा।"

अनूपकुमारी ने मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए कहा—"मुझे कब इनकार है। लेकिन मैं छिपकर विवाह नहीं करना चाहती। विवाह को खूब प्रकाशित करके करना चाहिए, ताकि छिपे हुए मानाहीन को भी मालूम हो जाय कि मैं डंके की चोट पर अनूपगढ़ की राज-गद्दी-पर बैठती हूँ।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने भी प्रसन्न होकर कहा—"यही तो मैं भी चाहता हूँ। इसीलिये मैं तुम्हारा फ़ोटो हर अख़बार में प्रकाशित कराना चाहता हूँ। हमारे नए दीवान साहब भिन्न-भिन्न नाम से भारतवर्ष के समाचार-पत्रों में कई लेख लिखेंगे, और मैं भी दोनो हाथों अख़बारवालों को रुपए देकर वशीभूत कर लूँगा। वे भी हमारी तारीफ़ में लंबे-लंबे लेख लिखेंगे। रुपए में वह ताक़त है, जो पीतल को भी चमकाकर सोने-जैसा चमकीला कर दे। हमारा यह विवाह समाज में आदर्श विवाह समझा जायगा।"

अनूपकुमारी ने प्रसन्न होकर, मंद मुस्कान-सहित कहा—"तभी मुझे चैन आएगा, जब मैं दुश्मनों की छाती पर सवार होकर राज-सिंहासन पर बैठूँगी।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"यदि तुम्हारी इच्छा है, तो ऐसा ही होगा। अनूपकुमारी संतुष्ट होकर हँसने लगी।

---

(१०)

डॉक्टर हुसैनभाई ने अमीलिया का कर-पल्लव चूमते हुए कहा—"क्यों प्रियतमे, अब कब तक मैं धैर्य धरूँ ? अभी मि० जैकब्स यहाँ मौजूद हैं, मुझे आज्ञा दो कि मैं उनसे यह शुभ संदेश कहूँ।"

अमीलिया की आँखों से प्रकट हो रहा था कि वह रात-भर सोई नहीं, और रो-रोकर रात्रि व्यतीत की है। उसका मुख श्री-हीन था, अधर शुष्क और पपड़ाए हुए, आँखें निस्तेज थीं। किंतु कमरे का अंधकार और प्रेम की अधीरता ने डॉक्टर हुसैनभाई को उसके मुख की विवर्णता को देखने नहीं दिया। अमीलिया ने उनके प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर हुसैनभाई ने अपने प्रश्न का उत्तर न पाकर अधीरता के साथ उसके मुख की ओर देखा। उसका चेहरा देखकर वह चौंक पड़े।

उन्होंने अधीरता के साथ कहा—"क्या तुम्हारी तबियत कुछ ख़राब है ? मालूम होता है, रात-भर नींद नहीं आई।"

अमीलिया ने अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा—"नींद कभी दुखी और शाप-ग्रस्त के पास नहीं आती।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने चिंतित स्वर में पूछा—"क्या कुछ मुझसे अपराध हुआ है ?"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"आपसे क्या अपराध हो सकता है। सारे अनर्थ की जड़ तो मैं स्वयं हूँ।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने चकित होकर कहा—"यह आप क्या कहती हैं ?"

अमीलिया ने करुण स्वर में कहा—"वास्तव में मैं ही अपने दुःखों का कारण हूँ। इधर आपने मेरी जीवन-रक्षा की, और मेरे मृत मन में नवीन आशा का बीजारोपण किया, और उधर मेरा विद्रोही मन उन्हें समूल नष्ट करने की फ़िराक़ में है।"

डॉक्टर हुसैनभाई का मुख आशंका से श्वेत हो गया।

उन्होंने भयाकुल स्वर में कहा—"इसका कारण ?"

अमीलिया ने विषण्ण मुख से उत्तर दिया—"कारण क्या, मेरा अभाग्य ! मेरे भाग्य में वह सुख नहीं। मैंने उसे हमेशा के लिये खो दिया है।"

कहते-कहते उसके आँसू निकलकर डॉक्टर हुसैनभाई के मन को अधीर बनाने लगे।

अमीलिया कहने लगी—"मैं अपनी दुःखमय कहानी कह चुकी हूँ, और क्या कहूँ। मैं अब अपना जीवन एकांत-वास में व्यतीत करूँगी, यही मैंने निश्चय किया है। विवाह के प्रलोभन में पड़कर अपना और किसी दूसरे का सुख नष्ट नहीं करूँगी। मैं आपसे क्षमा माँगती और प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे भूल जाइए।"

डॉक्टर हुसैनभाई में बोलने की शक्ति नहीं रह गई थी।

अमीलिया फिर कहने लगी—"मेरे व्यवहार से आपको अवश्य दुःख होता होगा, किंतु आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं बिलकुल असमर्थ हूँ। जब मेरा विवाह एक बार हो चुका, तब मैं कैसे 'उनके' जीवित रहते दूसरा विवाह करूँ। संसार चाहे मेरे कार्य को दोष न दे, प्रशंसा करे, परंतु मैं अपनी दृष्टि में स्वयं गिर जाऊँगी। मैं ऐसा नहीं करूँगी। आपसे पुनः क्षमा माँगती हूँ।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने शांत स्वर में कहा—"मैं आप पर कोई

बेजा दबाव नहीं डालना चाहता। जब आपकी यही इच्छा है, तब मैं भी सब सहन करूँगा। पुरुष भी प्रेम करता है, तो केवल एक बार। मैं जब आपसे प्रेम करता हूँ, तो अपने जीवन की अंतिम घड़ी तक प्रतीक्षा भी कर सकता हूँ। प्रेम रूह का रूह से होता है, ऐसे प्रेम का नाश नहीं। आप स्वच्छंदता से, अपने इच्छानुसार, अपना कर्तव्य पालन करें।"

कहते-कहते उनका गला भर आया, और वह शीघ्रता से अपने हृदय में उठते हुए तूफ़ान का दमन करने के लिये कमरे से बाहर हो गए।

अमीलिया उनकी ओर पथराई हुई आँखों से देखती रही। थोड़ी देर तक वैसे ही खड़ी रहकर वह एक कुरसी पर बैठ गई, और सोचने लगी—

"एक यह आख़िरी सहारा था, उसे भी खो दिया। मन! अब तो तू प्रसन्न है। बोल, तू क्या कुछ और चाहता है? तेरे उतावलेपन ने उन उमंगों में मुग्ध पुरुष को भी अपना-जैसा दुखी बना दिया। अब तो तुझे शांत होना चाहिए, या अभी कुछ और दिखलाना मंज़ूर है?

भारतेंदु, तुम मेरे जीवन की किस कुघड़ी में उदय हुए थे, जो मेरा सर्वनाश करके भी शांत नहीं होते। अब क्या मेरे जीवन-बलि-दान से ही शांत होगे? जहाँ मैंने सुखमय स्वप्न देखने आरंभ किए, तुमने न-मालूम कहाँ से प्रकट होकर उनका नाश कर दिया। तुम्हारा जीवन भी नष्ट हुआ और मेरा भी। तुम्हारे प्रेम में एक अबोध बालिका उन्मत्त है, वह तुम्हारी पूजा करती है—उस भक्ति से, जैसे उपास्य देव की की जाती है। वह अभी तक उस आघात से अच्छी नहीं हुई, जो तुमने उसे जहाज़ पर पहुँचाया था। वह अभी कल ही कह रही थी कि यहाँ आकर न-मालूम उन्हें क्या हो गया है। आभा

को देखकर मेरा मन करुणा, दया और स्नेह से परिपूर्ण हो जाता है। जिस दुख से मैं दुखी हूँ, उससे उसे संतप्त क्यों करूँ? संसार की मातृहारा बालिका जिसका जीवन मेरे ही-जैसा दुःखमय बीता है, उसे जीवन-भर के लिये संतप्त करना मेरा कर्तव्य नहीं। मैं आभा का प्राप्य आभा को दूँगी।

"मैंने अपने जीवन में एक बड़ी भूल की है, जिसके परिणाम-स्वरूप अभी तक दुःख भोग रही हूँ। वैसी ही भूल आभा ने भी की है, जिससे उसके जीवन का सुहाग भी मेरी तरह नष्ट हो सकता है। उसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। भारतेंदु के साथ विवाह होने में उसका कल्याण है, और मेरा भी।

"मेरा क्या होगा? मैं कौन-सा कार्य लेकर अपने जीवन के दिन व्यतीत करूँ। डॉक्टर हुसैनभाई एक सहृदय, उन्नत विचारों के पुरुष हैं। उनका प्रेम वास्तव में अथाह है, असीम है। मुझे विश्वास है कि वह मेरी प्रतीक्षा जीवन के अंत तक करेंगे। उनके प्रेम में कामुकता नहीं। भारतेंदु के प्रेम में कामुकता थी, और अब है उसका अनुताप। कामुकता के साथ अनुताप सन्निहित है। प्रेम में कामुकता नहीं होती, वह तो शांत, स्निग्ध और निःस्पृह होता है। वह स्वर्गीय ज्योति से देदीप्यमान रहता है। उसमें किसी प्रकार की कामना नहीं होती, विनिमय या प्रत्युत्तर की आकांक्षा नहीं होती। उस प्रेम की झलक आभा और डॉक्टर हुसैनभाई में मिलती है। इन दो प्रेमी जीवों को दुखी करना क्या मेरा कर्तव्य है?

"जितना ही इस विषय को सोचती हूँ, उतना ही उसकी उलझन के जाल में फँसी जाती हूँ। भारतेंदु को भी मैं प्राप्त कर सकती हूँ, लेकिन क्या उससे मुझे शांति मिलेगी। दो प्रेमी जीवों को दुखी करके क्या मैं सुखी हो सकती हूँ? भारतेंदु के साथ विवाह करने से निरंतर कलह, मानसिक अनुताप की अग्नि में जलना होगा

है, जीवन का सौख्य नष्ट करना है। क्योंकि यह विवाह प्रेम की लहरों में डूबकर नहीं होगा—अनुताप और दुःख की वेदी पर चढ़कर होगा, जिससे सदैव इनकी सृष्टि होती रहेगी।

"जब मैं अपने जीवन का पृष्ठ उलट चुकी हूँ, तब उसे पुनः पढ़ना मूर्खता है। उसे हमेशा के लिये भूल जाना चाहिए। भारतेंदु के साथ आभा का विवाह कराना मेरा कर्तव्य हो गया है। आह, यह विचार उठते ही हृदय में पीड़ा होती है। मनुष्य का हृदय बड़ा स्वार्थी होता है।"

इसी समय आभा ने आकर पूछा—"आज अभी तक आप नहीं उठीं। क्या कुछ तबियत ख़राब है?"

अमीलिया ने आभा को पकड़कर कुरसी पर बैठाते हुए कहा—"आओ, मैं तुम्हारी ही बात सोच रही थी।"

आभा ने उत्सुकता से पूछा—"मेरी कौन-सी बात सोच रही थीं?"

अमीलिया ने सप्रेम उत्तर दिया—"क्या तुम्हारी बात सोचने का अधिकार मुझे नहीं?"

आभा ने सलज्ज कंठ से उत्तर दिया—"क्यों नहीं?"

अमीलिया ने उसका कपोल चूमते हुए कहा—"आभा, तुमने मुझे अपना गुलाम बना लिया है। न-मालूम क्यों तुम्हें देखकर मैं सब कुछ भूल जाती हूँ।"

आभा ने मुस्किराकर कहा—"और, आपने क्या कुछ कम मुझे वशीभूत किया है। अब बार-बार यही विचार मन में उठता है कि मैं देश में जाकर आपके बिना कैसे रहूँगी। इतनी सेवा आपने पूर्व-जन्म की मेरी मा की की है, जिसके ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो सकती।"

अमीलिया ने सप्रेम उसकी ठुड्डी पकड़कर उसकी आँखों के भीतर देखते हुए, कहा—"बहन, स्नेह के बंधन में कृतज्ञता और

ऋण की गाँठ नहीं पड़ा करती। सात्त्विक स्नेह से उच्च कोई भाव दुनिया में नहीं। यह स्नेह-बंधन जाति, देश आदि के संकीर्ण विचारों से परे है। इसमें तो केवल दो आत्माओं के गूढ़ परिचय का भाव सन्निहित रहता है। मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि जैसा प्रेम-भाव अभी है, वैसा सदा बना रहे। तुम्हारे जाने से मुझे मर्मांतक पीड़ा होगी, लेकिन यहाँ से—मेरे पास से दूर भागने में ही तुम्हारा कल्याण है। मेरी छाया से तुम जितना दूर रहोगी, उतना ही तुम्हारे लिये हितकर होगा। तुम मेरा असली रूप नहीं पहचानतीं। दूसरे के लिये चाहे मैं कितनी ही दयालु, स्नेही और सेवामय हो जाऊँ, किंतु तुम्हारे लिये किसी-न-किसी दिन कंटक साबित हो जाऊँगी। फिर बहन, यह स्नेह का भाव घृणा में बदल जायगा। आश्रम-उद्घाटन का समारोह कल समाप्त हो जायगा, और इसके बाद ही तुम सब लोग यहाँ से विदा हो जाओगे। तुम्हारे पिता यहाँ से जाने की जल्दी कर रहे हैं, क्योंकि भारत पहुँचकर तुम्हारा विवाह करना है। तुम शीघ्र ही पंडितजी की पुत्रवधू बनोगी, और इस नाते से पुनः तुमसे मिलाप हो सकता है। परंतु जहाँ तक हो सके, तुम मुझसे दूर रहना।"

कहते-कहते अमीलिया के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली।

आभा ने उसकी आँखें पोछते हुए कहा—"तुम्हारी बातें मैं नहीं समझी। स्नेह का बंधन मिलने-जुलने से दृढ़ होता है।"

अमीलिया ने शांत होते हुए कहा—"इसका कारण कुछ नहीं, केवल मेरा प्रलाप है। मैं इसी आश्रम में रहूँगी, और मनुष्य-मात्र की सेवा करके अपने दिन व्यतीत करूँगी। किंतु बड़ी बहन के नाते तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तुम सुखी हो।"

आभा ने कुछ उत्तर न दिया।

अमीलिया फिर कहने लगी—"तुम्हारी पूर्व-जन्म की मा यानी

माधवी को पंडितजी ने अपनी पुत्री बनाने का संकल्प किया है।
वह अपनी संपत्ति का कुछ भाग तो भारतेंदु को देंगे, और बाक़ी
इसी साम्यवाद-आश्रम को अर्पण कर देंगे, जिसका परिचालन
माधवी, मैं तथा दूसरे तीन व्यक्ति करेंगे।"

आभा ने कहा—"और हम लोग कहाँ रहेंगे?"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"इच्छा-पूर्वक कहीं रह सकते हैं,
लेकिन शायद तुम लोगों को अभी भारत में ही रहना पड़ेगा।
पंडितजी की इच्छा है कि जब तक तुम्हारे पिता जीवित हैं, तब
तक तुम लोग वहीं रहो। तुम्हारे पिता को वह दुखी नहीं करना
चाहते, और न उनके जीवन का अंतिम अवलंब छीनने की उनकी
इच्छा है।"

आभा ने पूछा—"और तुम क्या अपना विवाह नहीं करोगी?"

अमीलिया ने शुष्क हँसी के साथ कहा—"मेरा विवाह अब नहीं
होगा। मैं आजन्म कुमारी रहूँगी। हमारी जाति में कुमारी रहने
का रिवाज है।"

आभा ने पूछा—"यह क्यों, फिर डॉक्टर हुसैनभाई क्या करेंगे?"

यह कहकर आभा कुछ मुस्किराई।

अमीलिया ने हँसकर कहा—"वह मेरी प्रतीक्षा करेंगे। जब
कभी मेरा अधिकार मेरे मनोभावों पर हो जायगा, तब देखा
जायगा।"

आभा ने कहा—"तुम्हें समझना पहेली से भी कठिन है।"

अमीलिया ने उठते हुए कहा—"मुझे ऐसी ही अनबूझ पहेली
बनी रहने दो। चलो, माधवी के पास चलें।"

यह कहकर वह आभा को लेकर चली गई।

---

(११)

साम्यवाद-आश्रम का उद्घाटन हो गया। पंडित मनमोहननाथ की संपत्ति का एक विशाल भाग उनकी खानों पर काम करनेवालों की संपत्ति हो गई। जाति-भेद, वर्ण-भेद, देश-भेद से यह आश्रम मुक्त था।

दोपहर का समय था। पंडित मनमोहननाथ, स्वामी गिरिजानंद और डॉक्टर नीलकंठ, तीनो स्वदेश लौटने का परामर्श कर रहे थे।

डॉक्टर नीलकंठ ने मुस्किराते हुए कहा—"आपने अपनी संपत्ति का एक भाग भारतेंदु को दे दिया, इसके लिये मुझे बड़ा संतोष है। हम लोगों का इतनी दूर आना सफल हो गया।"

पंडित मनमोहननाथ ने हँसकर कहा—"अजी, आपको अपनी स्त्री के भी तो दर्शन हो गए, और स्वामी गिरिजानंद भी अपने परिवार से मिल गए।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"यह सब आपकी कृपा का फल है। जिस ज्वाला से मैं अहर्निश जलता था, वह किसी अंश तक शांत हो गई। मेरी मूर्खता से राधा और उसकी मा को असहनीय कष्ट भोगने पड़े हैं, जिनका उत्तरदायी मैं हूँ। मैं संसार में मुख दिखाने योग्य नहीं। राधा मुझे अभी तक पिता स्वीकार नहीं करती। उसका क्रोध वाजिब है। इस जीवन से तो मेरा मरण अच्छा है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"भगवान् की सृष्टि में एक-से-एक अद्भुत व्यापार होते हैं, जिनकी कल्पना मनुष्य नहीं कर सकता। मुझे स्वप्न में भी यह अनुमान नहीं हुआ था कि मैं इस जन्म में

आभा की मा को देख सकूँगा। उसे देखा, लेकिन उससे मेरी पीड़ा कम होने की अपेक्षा बढ़ गई।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आप माधवी से विवाह क्यों नहीं करते?"

डॉक्टर नीलकंठ ने शुष्क हँसी के साथ कहा—"विवाह अब बुढ़ापे में करूँगा। दरअसल देखा जाय, तो इस विस्मृति में ही आनंद है, तभी हमें अपने पूर्वजन्म की याद नहीं रहती। हालाँकि मुझे माधवी का पूर्व-वृत्तांत विदित हो गया, परंतु मैं उससे विवाह नहीं कर सकता, क्योंकि समय का भेद है। वह अभी तरुण बालिका है, मेरी आभा से भी छोटी, और मैं पचास वर्ष का वृद्ध! क्या इस शादी में उल्लास हो सकता है? और, क्या विवाह भी वैध कहा जा सकता है?"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"विधाता के विधान में कोई ग़लती नहीं होती। हम अपनी नासमझी से उसके प्रतिकूल चलकर अपना अनिष्ट करते हैं। माधवी को मैंने अपनी धर्म-पुत्री बनाना निश्चय किया है, क्योंकि इस जगत् में उसका अपना कह-कर कोई नहीं। वह मेरे इसी आश्रम में रहेगी। वह बाल-विधवा है, और एक प्रकार से कुमारी। उसने जन्म-भर अविवाहित रहने का विचार किया है। अमीलिया और माधवी में स्नेह-विशेष है। उन दोनों को मैंने इस आश्रम के स्त्री-विभाग की संचालिका नियुक्त किया है। इस विषय में उन दोनों का मत भी प्राप्त हो गया है। मार्तंड को आप अपने साथ ले जायँ, और उसे अपनी संरक्षता में रक्खें। जब आप विवाह करना निश्चय करेंगे, मैं वहाँ उपस्थित हो जाऊँगा, और अगर न आ सकूँ, तो मेरी प्रतीक्षा न कीजिएगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने सहास्य कहा—"आपने तो सब कार्य-क्रम निश्चित कर दिया है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"जी हाँ, मैंने सब तय कर दिया है। मेरी इच्छा थी कि आज के दिन भारतेंदु का विवाह करके निश्चिंत हो जाता, किंतु आपकी और चाची की अनुमति न मिली। उनकी इच्छा स्वदेश जाकर विवाह करने की है।"

पंडित मनमोहननाथ भी गंगा को चाची कहने लगे थे।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"शायद आपको यह नहीं मालूम कि चाची भी आभा के विवाह के बाद अपना शेष जीवन इसी आश्रम में व्यतीत करना चाहती हैं।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"उन्होंने अंत-समय में गंगा-लाभ का लोभ तो छोड़ दिया, परंतु माधवी का साथ छोड़ना नहीं चाहतीं। उसके ऊपर उनका अगाध प्रेम है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर में कहा—"हाँ, उनका उस पर माता से भी अधिक स्नेह था। उन्हें इस बात का बड़ा शोक है कि उनसे यह अतीत की बातें न कर सकी। इसी लोभ से वह उसके साथ रहना चाहती हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"यही तो मानव-हृदय की सबसे बड़ी कमज़ोरी है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"इसी कमज़ोरी में तो मानवता का इतिहास छिपा हुआ है।"

स्वामी गिरिजानंद ने प्रसंग बदलते हुए कहा—"अब मुझे क्या करना उचित है?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"इस ममता को त्याग करके पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें, और राधा तथा उसकी मा के प्रति प्राय-श्चित्त करें। मनुष्य अपने जीवन में अनेक भूल करता है, लेकिन जो उस भूल को सुधार लेता है, वह तो मनुष्य बना रहता है, और जो उसे सुधारता नहीं, वह पशुओं की श्रेणी में उतर जाता है। राधा

की मा को अपने घर में स्थान देने से क्या आपको संकोच होता है ?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"संकोच मुझे तिल-मात्र भी नहीं है, वरन् मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ। मेरे विचार संकीर्ण नहीं। मैं विशद हिंदू-समाज का एक अंग हूँ, जिसमें पवित्रता का संबंध आत्मा से है, न कि शरीर से। शरीर का धर्म है अपवित्र रहना। शरीर और आत्मा के बीच में उन्हें जोड़नेवाली कड़ी मन है। यदि मन अपवित्र है, तो उसका प्रभाव अवश्य आत्मा पर पड़ेगा। राधा और उसकी मा की आपत्तियों का कारण मैं हूँ, इसलिये मैं स्वयं उत्तरदायी हूँ। उनका कलेवर चाहे भले ही अपवित्र हो गया हो, लेकिन उनकी आत्मा पवित्र है, उनका मन पवित्र है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"तब फिर आप स्वदेश जाइए, और समाज के सामने अपना आदर्श रखिए। हज़ारों-लाखों हिंदू-स्त्रियाँ, जो घर से निकल जाती हैं, उन्हें हिंदू-समाज में पुनः प्रवेश करने का अधिकार नहीं। आप उन्हें यह अधिकार दिलाने के लिये आंदोलन करें। इससे बढ़कर प्रायश्चित्त-कर्म आपके लिये नहीं। आप इस साम्यवादी आश्रम के सदस्य रहेंगे। वार्षिक आय का जो भाग होगा, वह आपको भेज दिया जाया करेगा। इस आश्रम का सर्व-प्रथम प्रचारक मैं आपको नियुक्त करता हूँ। हिंदू-समाज में सर्वोच्च समष्टिवाद के मंत्रों का प्रचार कीजिए, और व्यक्तिगत पूँजी का नाश करने का आंदोलन कीजिए।"

स्वामी गिरिजानंद ने सिर नत करके स्वीकार करते हुए कहा—"यह मुझे स्वीकार है, परंतु राधा के विवाह की समस्या सुलझाना बाक़ी है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"वह समस्या आपके सुलझाने

की नहीं, राधा उन्हें स्वयं सुलझा लेगी। जहाँ तक मुझे मालूम है, राधा विवाह नहीं करना चाहती। और, अगर वह अपना विवाह करेगी, तो मैं प्रबंध करूँगा।"

स्वामी गिरिजानंद ने संतुष्ट होकर कहा—"अब मैं निश्चिन्त हूँ।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"हम लोग यहाँ से कब चलेंगे?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आपकी सेवा में जहाज़ तैयार है, जब आपकी इच्छा हो, जा सकते हैं।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"तब तो कल प्रातःकाल हम लोग रवाना हो जायँगे।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"मैं सब प्रबंध कर दूँगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उठते हुए कहा—"तब मैं जाकर आभा और शची को तैयार होने के लिये कहूँ।"

यह कहकर वह उन लोगों को वहीं छोड़कर आभा के कमरे की ओर चले गए।

भारतेंदु ने कहा—"किंतु मेरा नाम तो भारतेंदु है, डॉक्टर हुसैनभाई नहीं।"

उनके व्यंग्य से अमीलिया तड़प उठी। उसकी शांत, मधुर आँखें सहसा जल उठीं। किंतु बड़े धैर्य से अपना क्रोध दबाकर कहा—"यह व्यंग्य तुम्हारे-जैसों के श्रीमुख से ही शोभा देता है।"

भारतेंदु आवेश में कह तो गए, किंतु उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वह काँपने लगे, और उनके मुख का रंग फीका पड़ गया।

अमीलिया कहने लगी—"तुम्हारी जाति का यह गुण है कि तुम लोग अर्ध-मृतकों पर भी अपनी वीरता आज़माने के लिये वार करने में संकोच नहीं करते।"

भारतेंदु ने सलज्ज कंठ से कहा—"मुझसे अपराध हुआ, मुझे क्षमा करो।"

अमीलिया ने थोड़ी देर सोचकर कहा—"क्या तुम वास्तव में अपने पिछले और इस अपराध की क्षमा चाहते हो?"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"हाँ।"

अमीलिया ने कहा—"तब तो तुम्हें एक बात की प्रतिज्ञा करनी होगी।"

भारतेंदु ने घबराए हुए स्वर में पूछा—"क्या?"

अमीलिया ने उनकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"तुम पर मेरा विश्वास नहीं; पहले ईश्वर को साक्षी कर प्रतिज्ञा करो कि मैं उसे पालन करूँगा।"

भारतेंदु का चित्त डावाँडोल होने लगा।

अमीलिया ने भ्रू कुंचित करके कहा—"क्यों, क्या आपत्ति है? मैं तुम्हारी धन-माया नहीं माँग लूँगी। घबराते क्यों हो?"

भारतेंदु ने लज्जित होकर अपना सिर नत कर लिया।

अमीलिया ने गंभीर होकर कहा—"अभी तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं होता, परंतु एक दिन होगा। वह उस दिन होगा, जब मैं संसार में न होऊँगी। उफ़, यह क्या? मैं कहाँ बहक गई। हाँ, तुमने प्रतिज्ञा कर ली। अच्छा, सुनो, तुम्हें क्या करना है।"

भारतेंदु ने उत्सुकता-पूर्वक पूछा—"कहिए, मैं प्रतिज्ञा-बद्ध हूँ; आदेश दीजिए।"

अमीलिया ने गंभीरता के साथ कहा—"मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचानती हूँ। जो कुछ तुम्हारे मन में है, वह मुझसे छिपा नहीं। तुमने मुझसे तिरस्कृत होकर यह विचार किया है कि किसी-न-किसी तरह तुम यहाँ से जाकर अपना जीवन विसर्जन कर दोगे। तुम चौंकते हो, यह नितांत सत्य है। यहाँ पंडितजी के सामने तुम्हें आत्महत्या करने का साहस न हुआ, क्योंकि इसमें तुम्हारी पाप-कथा प्रकट हो जाने का भय था। किंतु विदेश में जाकर, कोई आकस्मिक दुर्घटना का रूप दिखाकर अपनी इहलीला समाप्त करना चाहते हो। क्यों, क्या यह सत्य नहीं?"

भारतेंदु ने कोई उत्तर न दिया।

अमीलिया ने हृदय-भेदी दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए पूछा—"बोलो, क्या यह सत्य नहीं? संसार को तुम भले ही धोखा दे दो, किंतु मुझे नहीं दे सकते।"

भारतेंदु ने मलिन हास्य के साथ कहा—"पाप का प्रायश्चित्त हमेशा किया जाता है।"

अमीलिया ने ज़ोर से हँसकर कहा—"प्रायश्चित्त करने का यह तरीक़ा नहीं। यह कापुरुषों का काम है। यह क्या, मुझे तुम्हारे ऊपर दया आती है। क्या तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारे ऊपर दया करें। दया का पात्र होने की अपेक्षा... ..."

और तुम्हारा यही अंतिम मिलन है। मैं जाती हूँ, तुम्हारी प्रतिज्ञा की फिर याद दिलाए जाती हूँ।"

कहती-कहती अमीलिया अपनी आँखों का अश्रु-वेग छिपाने के लिये केबिन से सवेग निकलकर अदृश्य हो गई। भारतेंदु स्तब्ध होकर उसकी ओर देखते ही रह गए।

इस समय तक डॉक्टर नीलकंठ और स्वामी गिरिजानंद अपने परिवार के साथ पंडित मनमोहननाथ से विदा होकर जहाज़ पर चढ़ आए थे। जहाज़ चलने की सूचना दे चुका था। अमीलिया दौड़ती हुई जहाज़ से उतर गई। उसने अपने पिता से भी विदा नहीं माँगी। वह अचेत भागी जा रही थी, जैसे कोई उसे पकड़ने के लिये पीछे दौड़ा आ रहा हो।

कुछ ही क्षण बाद जहाज़ चल दिया। अमीलिया रुकी, और उसने पीछे फिरकर देखा। सामने ही डेक पर आभा खड़ी हुई उसे देख रही थी। आभा ने रूमाल हिलाकर विदा माँगी। अमीलिया ने भी रूमाल निकालकर हिलाना चाहा, किंतु वह उसके हाथ में ही रह गया, और वह अचेत होकर डॉक्टर हुसैनभाई की गोद में गिर पड़ी, जो उसके पीछे आकर उसी समय खड़े हुए थे।

समुद्र की तरंगें 'सुमित्रा' को खिलाती हुई पृथ्वी के उत्तरीय खंड की ओर बड़े वेग से ले चलीं।

चले गए। आभा वहाँ से सीधे अपने कमरे में जाकर अपनी मा का चित्र देखने लगी, और उसकी छवि का मिलान माधुरी के स्वरूप से करने में व्यस्त हो गई। उसकी मा 'सावित्री' का चित्र उसे आकृष्ट करने लगा। वह कहने लगी—"इस चित्र की आत्मा आज एक जीवित मनुष्य में व्याप्त है, जिसे मैं जानती हूँ, लेकिन उसे यह रहस्य विदित नहीं। एक समय था, जब वह इस चित्र में प्रतिष्ठित शरीर के संबंधी मनुष्यों से मिलने के लिये लालायित नहीं, आतुर थी, परंतु आज उसे वह ज्ञान नहीं है। मैंने अपनी मा को पाकर पुनः खो दिया।"

कहते-कहते वह विकल हो गई। उसके हृदय की आकुलता व्यग्र होकर उस चित्र में जड़ित शीशे पर गिरकर अश्रु-माल पहनाने लगी।

इसी समय प्रसन्नता से उमगती हुई मालती ने उस कमरे में प्रवेश किया। आभा ने चौंककर उसकी ओर देखा। आँसुओं की दो बड़ी-बड़ी बूँदें, जो सहसा किसी अपरिचित को मार्ग में आते देख, त्रस्त होकर, ठिठक गई थीं, अब उसे पहचानकर हर्ष के मारे जल्दी से गिरकर उस अश्रु-जल में सम्मिलित हो गईं, जो बहुत समय से चित्र के चौखटे के समीप एकत्र हो रहा था। मालती आभा की यह अवस्था देखकर किंचित् व्याकुल होकर सहमी हुई दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी। आभा सखी का स्वागत करने के लिये उठ खड़ी हुई, उसके मुख पर एक मलिन हास्य-रेखा थी। मालती को कुछ आश्वासन मिला। वह आगे बढ़ी। आभा अब अपने को न रोक सकी, दौड़कर बिछुड़े प्रेमियों की भाँति मालती से चिपट गई। मालती इसके लिये तैयार थी, उसने दोनों हाथों से उसे अपने हृदय से कसकर लगा लिया। हृदय अपनी मौन भाषा में एक दूसरे की धड़कन सुनकर बेताबी से कुशल-क्षेम पूछने लगे।

मालती ने आभा के अश्रु-सिक्त कपोल पर एक प्रेम-चिह्न अंकित

मालती ने हँसते हुए कहा—"शरमाती क्यों हो, आज नहीं, दो दिन बाद तो वह तुम्हारे ससुर होंगे ही, इसमें भी क्या संदेह है।"

आभा ने आँखें नीची करके कहा—"अब ऐसी आशा नहीं।"

मालती ने आश्चर्य के साथ कहा—"यह मैं क्या सुनती हूँ! नहीं, तुम मुझे सिर्फ परेशान करने के लिये ऐसा कहती हो।"

आभा ने धीमे स्वर में कहा—"मालती, क्या कभी मैंने तुमसे झूठ बात कही है। आज तक मैं उन्हें कभी ठीक से समझ नहीं पाई, हालाँकि इतने दिनों से मैं उन्हें जानती हूँ। यह मैं जानती हूँ कि उनके मन में कोई मानसिक पीड़ा है, जिसे वह अपने ही हृदय में छिपाए हुए हैं। कभी-कभी जब वह पीड़ा भयंकर हो उठती है, उनकी दशा बिलकुल पागल आदमियों के सदृश हो जाती है। जब हम लोग जा रहे थे, और हमारा जहाज़ वालपैराइजो पहुँचने ही वाला था, तब एक दिन शाम को उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया था—'मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकता।' इसके बाद उन्होंने आज तक कभी मुझसे एक शब्द न कहा, और न मैं उनसे कुछ पूछ ही पाई। अमीलिया भी उनके इस व्यवहार से असंतुष्ट थी, क्योंकि उसे ही यह भेद मालूम था, और मैंने उसे अपना भेद बताया था।"

मालती ने पूछा—"अमीलिया कौन है?"

होते थे। एक नारी-हृदय था, इसलिये सेवा से प्रेम कर अपना जीवन बिताना चाहता था, और एक पुरुष-हृदय था, जो मौन रहकर अपनी विपरीत परिस्थितियों से युद्ध कर रहा था। पुरुष का हृदय कुछ उतावला होता है, वह कठिनता के समय अधीर हो जाता है। भारतेंदु बाबू ज्यों-ज्यों वालपेराइज़ो के निकट पहुँच रहे थे, त्यों-त्यों अधीर हो रहे थे, यहाँ तक कि उस स्थान के समीप होते ही उनका मन विद्रोही हो उठा, और उन्होंने यह विद्रोहाग्नि शांत करने के लिये तुम्हें अपने मनोविकारों के संघर्ष का अंतिम निर्णय सुना दिया। इसके विपरीत अमीलिया एक उच्च-हृदया रमणी है। उसका प्रेम सागर-सा गंभीर है, उसमें झंझावात का प्रवेश नहीं, वह त्याग और उसका महत्त्व जानती है, और मानवता की सर्वोच्च भावना के वशीभूत होकर अपना प्राप्य तुम्हें समर्पित कर देती है, इस आदेश के साथ कि तुम फिर उसके मार्ग में पड़कर उसे विचलित न कर सको। तुम कहती हो कि वह डाक्टर हुसैनभाई से प्रेम करती है, यह बिलकुल ग़लत है, सत्य यह है कि डाक्टर हुसैनभाई उससे प्रेम करते हैं, और दूसरे भारतेंदु बाबू का प्रेम अपने से हटाने के लिये उसने यह प्रसिद्ध किया कि उसका विवाह स्थिर हो गया है, परंतु वह विवाह उनसे कदापि न करेगी।"

आभा ने उसकी ओर विस्फारित नेत्रों से देखते हुए कहा—"मालती, तुम तो इस प्रकार बातें कह रही हो, जैसे इस नाटक की सूत्रधार तुम्हीं हो। तुम्हारी बातों में मुझे बहुत कुछ सत्य प्रतीत होता है। अवश्य ही ऐसा कुछ मामला है।"

मालती ने मुस्किराते हुए कहा—"जो कुछ मैंने कहा है, वह पूर्ण सत्य है, नहीं तो तुम्हारी-जैसी सुंदरी से विवाह करने को कौन महामुनि अस्वीकार करेगा।"

यह कहकर उसने आभा के कपोलों को प्रेम के साथ उँगली से

सर रामकृष्ण ने चिंतित स्वर में कहा—"अब इसे किस उपाय से रोका जाय। दिन तो बहुत नज़दीक हैं, और अभी तक अनूप-कुमारी के पति का पता नहीं मिला, हालाँकि तमाम भारतवर्ष की पुलिस ढूँढ़-ढूँढ़कर परेशान हो गई है। देखता हूँ, अब कौशल काम नहीं देगा।"

लेडी चंद्रप्रभा ने उत्तर दिया—"यदि कौशल काम न दे, तो बल का प्रयोग करो। चाहे जैसे हो, राजा साहब का विवाह तो रोकना ही पड़ेगा।"

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"बड़ी सरकार सचमुच बड़ी सरकार हैं। नादिरशाही हुक्म लगाने में वह देर नहीं लगातीं। ख़ैर, मैं अभी हताश नहीं हुआ हूँ। अब भी आज से पूरे पंद्रह दिन हमारे सामने हैं। आशा है, इन दरम्यान कुछ-न-कुछ पता ज़रूर लग जायगा।"

लेडी चंद्रप्रभा ने पूछा—"आजकल धूर्तराज मातादीन कहाँ है?"

सर रामकृष्ण ने कहा—"वह अभी तक कलकत्ते गया हुआ था, आज वापस आया है। गुप्तचर की रिपोर्ट अभी कुछ देर पहले आई है। कलकत्ते जाकर उसने इतनी छान-बीन की, जिसका कोई ठिकाना नहीं। यह तो कहना पड़ेगा कि वह हाथ धोकर अनूपकुमारी के पीछे पड़ा है, उसे किसी तरह चैन नहीं।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"हमें उसका इलाज करना पड़ेगा। यदि वह इतने फेर हमें न दिए होता, तो हम लोग कुछ न कर पाते।"

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"बेशक, मगर वह काम इतने

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"तुम्हें कहीं आने-जाने की फ़ुरसत कहाँ रहती है। हाँ, मातादीन-जैसे पशुओं से बातें करने को बहुत समय मिलता है।"

इसी समय अर्दली ने आकर कहा—"मातादीन नाम का एक आदमी हुज़ूर से मुलाक़ात हासिल करने के लिये हाज़िर हुआ है। कहता है, मुझे ख़ास काम है।"

अर्दली की लखनवी तहज़ीब की गुफ़्तगू सुनकर सर रामकृष्ण ने व्यग्रता से कहा—"इसे प्राइवेट कमरे में बैठाओ, मैं अभी आता हूँ। लेकिन उसे वहाँ अकेले मत छोड़ना, उससे बातें करते हुए उसकी हरकत पर नज़र रखना।"

अर्दली आदाब बजाकर चला गया।

लेडी चंद्रप्रभा ने मुस्किराते हुए कहा—"इन कमबख़्त की उम्र भी बहुत है। नाम लेते ही शैतान की तरह हाज़िर हो गया।"

सर रामकृष्ण ने कहा—"ऐसे ही लोगों के गुरु-समूह का नाम शैतान है। इनका अस्तित्व शैतान की तरह अनादि और अनंत है। अच्छा, जाऊँ देखूँ, आज कोई-न-कोई समाचार लाया होगा। बहुत दिनों में आया है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने 'लीडर' उठाते हुए कहा—"ज़रूर जाइए, शैतान-पुराण आरंभ कीजिए।"

सर रामकृष्ण चले गए। उनके जाने के बाद लेडी चंद्रप्रभा उस दिन का 'लीडर' पढ़ने लगीं। रायबरेली के संवाददाता ने लिखा था—

सकीं, और क्रुद्ध होकर उस पत्र को मरोड़कर दूर फेंक दिया। फिर थोड़ी देर बाद, जब उन्हें उससे भी शांति न मिली, उठकर कमरे के बाहर चली गईं।

इधर सर रामकृष्ण को कमरे में प्रवेश करते देख बाबू मातादीन उठकर खड़े हो गए, और निहायत अदब से फ़र्शी अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गए। अर्दली उन्हें देखकर चुपचाप कमरे के बाहर हो गया, और दरवाज़ा बंद कर लिया।

सर रामकृष्ण ने बाबू मातादीन को बैठने का संकेत करते हुए कहा—"आज बहुत दिनों में दिखाई दिए? इतने दिनों तक कहाँ थे? मैं तो समझा था, तुम नाराज़ हो गए।"

बाबू मातादीन ने बड़े ही विनीत स्वर से कहा—"हुज़ूर यह क्या फ़रमाते हैं। नाहक़ कमतरीन को काँटों में घसीटते हैं। आज मैं हुज़ूर की ख़िदमत में एक ख़ुशख़बरी लेकर हाज़िर हुआ हूँ।"

सर रामकृष्ण ने उत्साहित करनेवाली हँसी मुँह पर लाकर कहा—"मैं समझता हूँ, तुम्हें अनूपकुमारी के पति का पता लग गया है।"

बाबू मातादीन ने सिर झुकाकर आदाब बजा लाते हुए कहा—"हुज़ूर का क़यास बहुत दुरुस्त है। मैं आज कामयाब हुआ हूँ। उसे मैंने कलकत्ते के बाज़ार में देखा। तब से मैं उसके पीछे छाया की भाँति लगा हुआ हूँ। आज वह लखनऊ आया है।"

सर रामकृष्ण ने प्रसन्न कंठ से पूछा—"वह कहाँ है?"

बाबू मातादीन ने सहर्ष उत्तर दिया—"बटलर-रोड में एक बँगले में ठहरा हुआ है। मैं वहाँ अपने दो आदमी छोड़ आया हूँ, जो उसका पीछा करेंगे, अगर वह कहीं जायगा। मेरे ख़याल से आप मेरे साथ तशरीफ़ लाएँ, और किसी बहाने से उसे अपने

डॉक्टर नीलकंठ ने मंद मुस्कान-सहित सर रामकृष्ण का स्वागत करते हुए कहा—"पधारिए, आज आपने बड़ी कृपा की। मैं आज ही दक्षिणी अमेरिका से लौटा हूँ, कल आपके दर्शनों को आता।"

सर रामकृष्ण ने सोफ़े पर बैठते हुए कहा—"मालवी जी से मुझे मालूम हुआ कि आप आ गए हैं, इसलिये मैं मिलने के लिये चला आया। कहिए, यात्रा तो कुशल-पूर्वक बीती?" फिर दरवाज़े की ओर देखते हुए कहा—"बाबू मातादीन, चले आइए।"

स्वामी गिरिजानंद, जो पास ही बैठे हुए थे, यह नाम सुनकर चौंके, और उत्सुकता से द्वार की ओर देखने लगे। इतने में बाबू मातादीन ने मुअद्दबाना तरीक़े से कमरे में प्रवेश किया। उन्हें देखते ही स्वामी गिरिजानंद उठ खड़े हुए, और उन्हें तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"कौन, बाबू मातादीन हैं क्या?"

बाबू मातादीन ने आगे बढ़ते हुए कहा—"हाँ, वाजपेयीजी, मैं ही हूँ।"

डॉक्टर नीलकंठ आश्चर्य के साथ बाबू मातादीन की ओर देखकर फिर सर रामकृष्ण तथा स्वामी गिरिजानंद की ओर कौतूहल-पूर्ण प्रश्न-भरी दृष्टि से देखने लगे। सर रामकृष्ण तो चुप रहे, लेकिन स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"यह मेरे बड़े उपकारी मित्र हैं। मेरे ऊपर इनके इतने एहसान हैं कि मैं कभी उऋण नहीं हो सकता।"

सर रामकृष्ण चुप होकर स्वामी गिरिजानंद की ओर देखने लगे। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि बाबू मातादीन क्या इतने अच्छे हो सकते हैं, जिनका यह इतना गुण-गान कर रहे हैं

रूप में राधा की माँ से कहीं बढ़-चढ़कर थी, किंतु मेरी ही भाँति हृदय-हीन थी। ईश्वर ने मेरे पापों का बदला लेने के लिये उसकी उत्पत्ति की थी। सती की आहें कभी निष्फल नहीं जातीं। उसी के प्रभाव से मेरी दूसरी स्त्री ने मुझे विष देकर मुझसे छुटकारा पाने का प्रयत्न किया। बाबू मातादीन की कृपा से मैं किसी तरह बचकर श्मशान-भूमि से वापस आया। जब ताक़त आने पर घर गया, तो देखा, वह ग़ायब हो गई है, उसका कहीं पता नहीं। हाथ मसलकर रह गया। मैं उसका पता लगाने लगा, लेकिन किसी तरह पता न लगा। अंत में निराश होकर और इसे दैविक प्रतिशोध के लिये छोड़कर संन्यासी हो गया। उस कठिन समय में बाबू मातादीन ने मुझे बहुत सहायता दी थी, और इन्हीं के सदुपदेश से मैंने यह भगवा वेष धारण किया है।"

कहते-कहते स्वामी गिरिजानंद कातरता के साथ तीनों व्यक्तियों की ओर देखकर नत दृष्टि से पृथ्वीतल की ओर देखने लगे।

सर रामकृष्ण ने वह निस्तब्धता भंग करते हुए कहा—"यदि आपकी दूसरी स्त्री आपको मिल जाय, तो आप उसके साथ क्या व्यवहार करेंगे?"

स्वामी गिरिजानंद ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"क्या करूँगा, क्षमा करूँगा, और उसे सुखी होने का आशीर्वाद दूँगा। जब मैं स्वयं इतना बड़ा पापी हूँ, तो किसी दूसरे को पाप का दंड देने का अधिकार मुझे कदापि नहीं।"

बाबू मातादीन की आँखें अपने आप सर रामकृष्ण की क्रुद्ध दृष्टि से मिल गईं।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आपके इतिहास का दूसरा खंड तो पहले से भी अधिक त्रास-जनक है। इसके पहले आपने कभी नहीं कहा, और इस विषय पर हमारी-आपकी कभी बातचीत नहीं हुई।"

आपकी भांजी राधा का जन्म हुआ है। वे दोनों मेरे साथ हैं। यदि आपकी इच्छा हो, तो उनसे मिलकर उनकी मुसीबतों का हाल पूछ लें।"

बाबू मातादीन तुरंत तैयार हो गए। स्वामी गिरिजानंद उन्हें लेकर भीतर चले गए।

सर रामकृष्ण ने उनके जाने के बाद कहा—"स्वामीजी का इतिहास बड़ा रहस्य-पूर्ण है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"ईश्वर की सृष्टि में यदि कोई रहस्यमय है, तो वह मनुष्य है। स्वामीजी की जीवन-कहानी स्वयं ही आश्चर्यमय है।"

सर रामकृष्ण गंभीर होकर कुछ सोचने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—"अपनी यात्रा का सविस्तर वर्णन तो कीजिए।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आज मैं आपको एक दूसरी आश्चर्य-घटना सुनाऊँगा, जिस पर शायद आपको विश्वास न हो। यदि मैं कहूँ कि आभा की मा का पुनर्जन्म हुआ है, और मैंने उसे देखा है तो आप क्या करेंगे?"

केवल एक क्षणिक विद्युत्-प्रकाश था, जो दूसरे ही क्षण
के काले बादलों में विलीन हो गया। मस्तिष्क के स्मृ
आततायी के अत्याचार से एक प्रकार का भूचाल आ ज
उसे पूर्व-जन्म की स्मृति हो गई थी, और फिर उसमें दु
होने से वह उसी क्षण लुप्त हो गई। इस समय उसे
नहीं। उसे केवल इस जन्म की स्मृति है।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"आप सविस्तर अपनी कहानी
आपने तो मुझे आश्चर्य में डाल दिया है।"

डॉक्टर नीलकंठ माधवी की कथा कहने लगे।

---

(१६)

जब से अमीलिया भारतेंदु को विदा कर आश्रम में वापस आई है, तब से वह बीमार है। उसकी बीमारी के कारण पंडित मनमोहननाथ और डॉक्टर हुसैनभाई बहुत चिंतित रहते थे। माधवी, जो अब पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गई थी, उसकी देख-भाल करती थी। दो महीने में वह इतनी कृश हो गई थी कि उसे पहचानना कठिन ही नहीं, असंभव हो गया था। किंतु उसका मुख अब भी देदीप्यमान था, और आँखों में एक विशेष चमक आ गई थी। डॉक्टर हुसैनभाई रात-दिन जी-तोड़ परिश्रम करते, किंतु वह अमीलिया को किसी भाँति आरोग्य न कर सके। इन दिनों अमीलिया केवल माधवी को छोड़कर किसी अन्य से बात भी न करती थी। यदि कभी पंडित मनमोहननाथ उससे उसकी तबियत का हाल पूछते, तो वह मलिन हास्य के साथ उन्हें सांत्वना देनेवाले दो-तीन शब्द कहकर चुप हो जाती। डॉक्टर हुसैनभाई के हृदय की अवस्था भी बड़ी चिंता-जनक थी। वह चाहते थे, अमीलिया खुलकर उनसे अपनी बातें करे, किंतु उनके मन की साध पूरी न होती थी, जिससे वह अधिकाधिक दुखी होते जाते थे। अमीलिया के साथ-साथ उनका भी स्वास्थ्य दिन-पर-दिन बिगड़ता जाता था, परंतु वह भी अपनी वेदना छिपाते हुए काम में व्यस्त रहते थे। अमीलिया की तीव्र दृष्टि से उनकी यह वेदना छिपी न थी। वह एक दुःख-भरी आह के साथ उनकी ओर देखकर अपने नेत्र पुनः बंद कर लिया करती थी।

दिसंबर का मध्य था। [illegible] के दिन छोटे होने लगे थे, और शीत-काल अपने ठंडे झोंकों के साथ बड़ा [illegible]

अमीलिया चौंक पड़ी, और उठकर बैठ गई। उसका हृदय वेग से धड़कने लगा, और भीत दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी।

डॉक्टर हुसैनभाई ने अपने को सँभालते हुए कहा—"आज दो-ढाई महीने से मैं यह देख रहा हूँ कि मेरी मौजूदगी में आपको बहुत कष्ट होता है। मैं ज्यों-ज्यों इस बारे में सोचता हूँ, त्यों-त्यों मुझे यह विश्वास होता है कि मेरी धारणा सत्य है। इस सबब से मैंने यह निश्चय किया है कि मैं अपने को आपकी दृष्टि से हमेशा के लिये छिपा लूँ। कल जहाज़ से मैं सिंगापुर वापस जा रहा हूँ, और इस्तीफ़ा लिखकर पंडितजी की मेज़ पर रख आया हूँ। मैं पुनः आपसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ।"

अमीलिया उनकी ओर एकटक देखती रही, उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर हुसैनभाई उठ खड़े हुए। उनकी आँखें अश्रु-पूर्ण थीं।

अमीलिया शून्य दृष्टि से उनकी ओर देखती रही। उसकी चेतना तिरोहित हो चुकी थी, और वह आराम-कुरसी पर अचेत होकर गिर पड़ी।

डॉक्टर हुसैनभाई ने क्षण-भर स्तंभित होकर उसकी यह दशा देखी, और फिर तुरंत ही उसे सजग करने के लिये जल के छींटे मारने लगे। उन्होंने नब्ज़ देखी, उसकी गति बहुत मंद थी। अमीलिया की कमज़ोरी ने उसकी बेहोशी को शक्ति प्रदान कर दी। डॉक्टर हुसैनभाई कुछ दवाओं की खोज में चले।

जब वह लौटे, अमीलिया उसी तरह बेहोश थी। वह बड़े संकट में पड़े। माधवी भी इस समय न थी, और पंडित मनमोहननाथ भी बाहर गए हुए थे। अंत में, साधन-सामग्री की सहायता से, उन्होंने अमीलिया को पलँग पर लिटाया, और इंजेक्शन देने की तैयारी करने लगे।

डॉक्टर हुसैनभाई तीसरा, पहले से भी उग्र, इंजेक्शन तैयार करने लगे। तीसरे इंजेक्शन ने किसी हद तक अपना असर दिखाया, अमीलिया की पलकों में एक हलका कंपन होने लगा। पंडित मनमोहननाथ को कुछ ढाढ़स बँधा। धीरे-धीरे अमीलिया की निश्चेतना तिरोहित होने लगी।

अमीलिया ने अपने नेत्र खोलकर चारों ओर क्लांत दृष्टि से देखा। वह स्पष्टरूप से कुछ देख न सकी।

पंडित मनमोहननाथ ने सप्रेम उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा—"अमीलिया, अब तुम्हारी कैसी तबियत है?"

अमीलिया ने उनकी ओर शून्य दृष्टि से देखा, किंतु कुछ उत्तर नहीं दिया।

पंडित मनमोहननाथ ने डॉक्टर हुसैनभाई को दवा पिलाने का संकेत किया।

डॉक्टर हुसैनभाई में साहस न था कि वह अमीलिया से दवा पीने का अनुरोध करें। पंडित मनमोहननाथ ने दवा का प्याला

उससे दूर भागने में ही उसकी भलाई है । उनके कारण ही वह इस मुमूर्षु-अवस्था को पहुँची है, और वहाँ अधिक दिनों तक रहने से उसका जीवन नष्ट होने का भय है । उन्हें जाना ही पड़ेगा, और असीलिया को त्यागना पड़ेगा ।"

उनके मन ने साहस पाकर उन्हें वहाँ से जाने के लिये संकेत किया । अवश होकर वह कमरे के बाहर जाने के लिये उद्यत हुए । लालसा की हार होते देखकर मन हँसने लगा । लालसा तिलमिला गई, और वह पूर्ण बल लगाकर युद्ध करने लगी । डॉक्टर दुर्विनभाई ठहर गए । उनकी आँखों का अश्रु, जो सूख चला था, ढलकता आया, और अपनी व्यथा कहने के लिये असीलिया के कान के पास कपोल पर गिर, वहाँ कुछ देर ठहर, फिर शय्या पर गिर पड़ा । वह शंकित होकर उसकी ओर देखने लगे, किंतु असीलिया गहरी निद्रा में निमग्न हास्य और शोक की भावनाओं से ओत-प्रोत स्वप्न-लोक में स्वच्छंद विचर रही थी । उसकी यह हालत देखकर उन्हें संतोष हुआ, उनका साहस भी बढ़ा । वह झुके, और दूसरे ही क्षण उन्होंने अपने उत्तप्त अधरों का एक चिह्न उसके चौड़े मस्तक पर अंकित कर दिया । और अपनी इच्छित वस्तु पाकर बेसुध तथा मस्त होकर उस माधुरी को पान करने में संलग्न हो गए । लालसा अपनी उन निःश्वासों से यह चोरी पकड़ाने के लिये असीलिया को जगाने लगी । उसके नेत्र सहसा खुल गए । सशंकित होकर दुर्विनभाई ने अपना मुख हटा लिया । असीलिया शून्य दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी । उसके मस्तक पर एक अद्भुत लाल-सी झलक हो रही थी । वह उसे सहलाने लगी । उसी समय उनकी आँखों का दूसरा अश्रु-कण उनकी उत्कट भावनाओं से आप्लुत, उसकी लालिमा को जाता हुआ देखकर, अपने दर्द की कहानी कहने के लिये, उसके कपोल पर गिर पड़ा । असीलिया सजग हो गई,

और डॉक्टर हुसैनभाई को पहचानकर कहा—"क्या मुझे त्यागकर जाते हो, क्या इसीलिये विदा लेने आए हो ?"

उन्होंने कुछ उत्तर न दिया।

अमीलिया उठकर बैठ गई, और मंद स्वर में कहने लगी—"तुम जा रहे हो मुझे बचाने के लिये, दूर भागकर जा रहे हो, किंतु क्या तुम जा सकते हो ? नहीं। तुम कल दिन को भी विदा माँगने आए थे, परंतु क्या तुम्हें विदा मिली ? आज फिर विदा होने आए हो, क्या तुम्हें विदा मिलेगी ? नहीं। तुम मुझे एक विचित्र स्त्री समझते हो, कभी पागल और कभी उससे भी बदतर। वास्तव में मैं पागल हूँ, अगर नहीं, तो शीघ्र हो जाऊँगी। एक दिन मैंने तुम्हें वचन दिया था कि मैं तुम्हारे साथ विवाह करूँगी, फिर एक दिन इनकार कर दिया। आज दो-ढाई महीने से, भारतेंदु के जाने के दिन से, मैं जब से वालपेराइज़ो में बेहोश हुई थी, आज तक अच्छी नहीं हुई। दिन-पर-दिन कुढ़ती हुई मृत्यु के समीप होती जा रही हूँ। क्या तुम्हें मेरे हृदय का हाल मालूम है, वहाँ कैसा भयंकर युद्ध हो रहा है ?"

कहते-कहते वह ठहर गई, और डॉक्टर हुसैनभाई को कुरसी पर बैठने का संकेत किया।

अमीलिया फिर कहने लगी—"अब मैं बहुत दिन नहीं जीवित रह सकती। मैं देख रही हूँ कि मेरा काल समीप आ रहा है। ऐसी हालत में क्या तुम अब भी मुझसे विवाह करना चाहते हो ? मैं तुम्हारे प्रेम की गहराई जानती हूँ, और यही ज्ञान तो मेरे लिये काल हो गया है। तुम जानते हो, मैं अपवित्र हूँ, और मैं यह नहीं चाहती कि तुम्हें किसी की जूठी वस्तु समर्पित करूँ......"

डॉक्टर हुसैनभाई के धैर्य का बाँध टूट गया था। उन्होंने आकुल स्वर में कहा—"प्रियतमे, मैं तुम्हें चाहता हूँ, तुम्हारे प्रेम को चाहता हूँ, तुम्हारे शरीर को नहीं चाहता।"

अमीलिया ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"यदि तुम्हें मेरे शरीर से प्रयोजन नहीं, तो मैं तुमसे विवाह करूँगी। अपने लिये तुम्हारे जीवन का सुख और शांति नष्ट नहीं करूँगी।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उसके समीप बैठकर उसके कपोलों को अपने प्रेमोद्गारों से अंकित करने का प्रयत्न किया, किंतु अमीलिया दूर छिटककर उठ खड़ी हुई, और कहा—"नहीं, नहीं मैं नहीं चाहती। मेरे स्पर्श से तुम्हारे आत्मा की उज्ज्वलता मलीन हो जायगी। यह शरीर तो उसी का हो चुका, जिसने मुझे भ्रष्ट किया है। मैं कह चुकी हूँ कि मेरा मन और आत्मा तुम्हारे हैं। वासना और लालसा की अग्नि शांत रखकर प्रेम-योग की तपस्या करनी पड़ेगी। हिंदुओं की भाँति जल में रहकर जल से परे रहने के लिये यदि तैयार हो, तो मैं भी मन-प्राण से तुम्हारी होने के लिये तैयार हूँ।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने सावधान होकर उत्तर दिया—"अमीलिया, मेरे प्राणों की अमीलिया, मैं तुम्हारी सब शर्तें स्वीकार करता हूँ। बिना तुम्हारी अनुमति के मैं तुम्हारा शरीर स्पर्श नहीं करूँगा।"

बाक़ी सब कुशल है, और अब मैं तुम्हारे विवाह का सुख-संवाद सुनने के लिये उत्कंठित हूँ। भगवान् से प्रार्थना है कि वह शुभ अवसर बहुत शीघ्र आवे।

तुम्हारी

अमीलिया"

पत्र लिखकर अमीलिया ने कहा—"तुम भी यह शुभसमाचार भारतेंदु को लिख दो, और आज ही हवाई डाक से भेज दो। मैं यह सुखसमाचार अपने ही दोनों के बीच नहीं रखना चाहती, क्योंकि मुझे भय है, कहीं मेरे विचारों में पुनः पागलपन न सवार हो जाय। और, आओ, हम दोनों चलकर पितृ-तुल्य पादरियों से भी सब हाल कहकर उनकी अनुमति माँग लें। उनकी आज्ञा मिलने पर हम लोग यथाशीघ्र विवाह कर अपना संबंध चिरस्थायी कर लेंगे।"

अमीलिया ने उनका हाथ चूमते हुए कहा—"पिताजी, हमें आज्ञा दीजिए कि हम दोनो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें।"

अब उन्हें ज्ञान हुआ कि यह स्वप्न नहीं, सत्य घटना है। वह तत्क्षण सब समझ गए, और हर्ष से मुस्किराते हुए कहा—"मुझे जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। ईश्वर से प्रार्थना है कि तुम दोनो का कल्याण हो। मेरी सर्वोत्तम मंगल-कामनाएँ तुम्हारे सारे दुःख दूर करें।" फिर डॉक्टर हुसैनभाई से मंद मुस्कान-सहित कहा—"क्या मैं अब भी तुम्हारा इस्तीफ़ा मंज़ूर करूँ?"

यह कहकर वह ज़ोर से हँस पड़े। डॉक्टर हुसैनभाई शर्म से कटकर लहू-लुहान हो गए, सूर्य की स्वर्ण-रेखाएँ भी वेग से विहँस उठीं।

लखनऊ में, शाहनजफ़-रोड पर, अनूपगढ़-हाउस की शान उस दिन निराली थी। चारो ओर सजावट होकर वह अपनी शान में फूला न समाता था। राजा सूरजबख़्शसिंह के आनंद का वार-पार न था, क्योंकि उसी दिन शाम को वह अपने मन की पुरानी कामना को कार्य-रूप में परिणत करनेवाले थे। अनूपकुमारी के भी हर्ष का ओर-छोर न था। वह उस दिन अनूपगढ़ की रानी होनेवाली थी। उसके मन की उमंगों ने एक बार फिर उसका गुज़रा हुआ यौवन उसे प्रदान कर दिया था। उसका स्वाभाविक सौंदर्य शृंगार से द्विगुणित होकर देदीप्यमान हो रहा था, जिसे देखकर राजा सूरजबख़्शसिंह फूले न समाते थे। इधर कई महीने से परदा बिलकुल उठा ही दिया गया था, और इधर-उधर फिरने के लिये अनूपकुमारी बिलकुल स्वतंत्र थी।

संध्या होते ही अनूपगढ़-हाउस इंद्र-धनुष के रंगों के विद्युत्-प्रकाश से चमक उठा, जिसकी छाया चारों कोनों के ऊपर पड़कर दर्शकों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करने लगी। कोठी के अहाते में लगे हुए फ़व्वारों में भी विद्युत्-प्रकाश का प्रबंध किया गया था, जो पल-पल-भर में अपना रंग बदलते थे, जिससे जल की आभा रंग-बिरंगी हो जाती थी। अनूपकुमारी दूसरी मंज़िल के बरामदे से यह अद्भुत दृश्य देखकर प्रसन्न हो रही थी। राजा सूरजबख़्शसिंह भी उसके पास खड़े होकर उसके मुख को, जो रंग-बिरंगी आभा से पल-पल में रंग बदल रहा था, देखने में संलग्न थे।

कमरे में कुछ शब्द हुआ। राजा सूरजबख़्शसिंह ने पीछे फिर-कर देखा, उनका नौकर खड़ा हुआ था। उनका संकेत पाकर वह सामने आया, और चाँदी की तश्तरी में विज़िटिंग कार्ड सामने कर दिया। उन्होंने उसे पढ़ा, और क्रोध से उसे फेंक दिया।

अनूपकुमारी ने पूछा—"किसका कार्ड है ?"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने क्रोध से काँपते हुए कहा—"हमारे चिर-शत्रु मातादीन का। उस दुष्ट की हिम्मत तो देखो, सिंह की माँद में आया है।"

मातादीन का नाम सुनते ही अनूपकुमारी का मुख उतर गया। किसी भावी आशंका से वह सिहर उठी।

उसने भय से, काँपते हुए कहा—"मैं तो समझती थी, विवाह निर्विघ्न बीत जायगा, किंतु देखती हूँ, वह दुष्ट कोई-न-कोई उपद्रव खड़ा करेगा।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने उत्तेजित स्वर में कहा—"इस दुष्ट से डरने की कोई आवश्यकता नहीं। वह वर्षों मेरा ग़ुलाम होकर रहा है। मेरे हाथ में शक्ति है। मैं एक पुश्तैनी रईस हूँ, वह मेरा अनिष्ट नहीं कर सकता। मैं उससे साक्षात् नहीं करूँगा, अभी उसे कान पकड़वाकर बाहर निकाले देता हूँ।"

अनूपकुमारी के हृदय से आशंका दूर होकर एक विचित्र प्रकार के साहस का संचार हो रहा था, जैसा अंतिम निराशावस्था में उत्पन्न हो जाता है, जब उस भय से दूर भागने के सब मार्ग बंद हो जाते हैं।

उसके मुख की आकृति भयंकर होने लगी। वह वहाँ से अपने ख़ास कमरे में शीघ्रता से चली गई।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने सिंह के समान गरजकर कहा—"जाओ, उस बदमाश को कान पकड़कर बाहर निकाल दो। मेरे हुक्म की लफ़्ज़-ब-लफ़्ज़ तामील होनी चाहिए।"

नौकर ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"उनके साथ बड़े कुँवर साहब के ससुर भी हैं।"

यह सुनकर वह किंचित् रुक गए, परंतु फिर तेज़ी के साथ कहा—"इन्हें भी निकाल दो। बिना बुलाए आनेवालों का यही उचित सत्कार है।"

इसी समय कमरे के अंदर बाबू मानादीन ने प्रवेश करते हुए कहा—"कमतरीन की गुस्ताख़ी माफ़ हो। हुज़ूर के सामने आने में कमतरीन से बेअदबी ज़रूर हुई, किंतु समय का तक़ाज़ा था, यह गुस्ताख़ी करनी पड़ी। रानी साहबा के भ्राता किशोरसिंह, कुँवर साहब और उनके ससुर, सब इस जलसे में शरीक होने के लिये तशरीफ़ लाए हैं, और भानुकुमारी को मुबारकबाद देने के लिये हुज़ूर की ख़िदमत में हाज़िर होना चाहते हैं।"

उसका कथन समाप्त होते ही रानी भानुकुँवरि के साथ राजा किशोरसिंह ने प्रवेश किया, और उनके पीछे-पीछे कुँवर कामेश्वर-प्रसादसिंह ने भी आकर पिता को प्रणाम किया।

क़ानून में पति के जीवित रहते स्त्रियाँ दूसरा विवाह नहीं कर सकतीं। हिंदू-कुलपति भी एक स्त्री से उसके पति की ज़िंदगी में विवाह नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त इस स्त्री को नर-हत्या करने की कोशिश करने का अभियोग लगाकर वारंट गिरफ़्तारी निकल चुका है, जिसे पुलिस किसी समय आकर अपनी तहवील में लेगी।"

राजा सूरजबख़्शसिंह क्रोध से उबल उठे, उन्होंने भीषण स्वर में कहा—"झूठ है, मैं इस पर न तो विश्वास करता हूँ, और न तुम्हारे-जैसे कुत्तों के भौंकने से चौंक उठ सकता हूँ...।"

राजा सूरजबख़्शसिंह कहते-कहते रुक गए, और क्षण-भर स्तब्ध होकर पुलिस-सब-इंस्पेक्टर की ओर देखने लगे, जो उसी क्षण चार कांस्टेबिलों और स्वामी गिरिजानंद के साथ उस कमरे में प्रविष्ट हुआ था।

बाबू मातादीन ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए, हँसती हुई आँखों के साथ, कहा—"अहल्या, क्या तुम गेरुए वस्त्र-धारी को पहचानती हो। शायद तुम न पहचानो, इसलिये मैं ही कह दूँ कि यह तुम्हारे चिर-परिचित पंडित गौरीशंकर वाजपेयी हैं, जिन्हें तुमने तारीख़ १८ सितंबर, सन् १९२१ को ज़हर देकर हत्या करने का प्रयत्न किया था, परंतु तुम अपनी कोशिश में कामयाब न हुईं।"

अनूपकुमारी भीत-दृष्टि से स्वामी गिरिजानंद को देखने लगी।

वाली मेरी स्त्री अहल्या उर्फ़ अनूपकुमारी सामने खड़ी है, उसे गिरफ़्तार कीजिए।"

पुलिस-सब-इंस्पेक्टर अनूपकुमारी को गिरफ़्तार करने के लिये आगे बढ़ा; किंतु विद्युत्-गति से तड़पकर अनूपकुमारी बाबू मातादीन के पास छिटककर जा खड़ी हुई, और दूसरे क्षण एक तेज़ कटार निकालकर ठीक उनके हृदय में घुसेड़ दी। बाबू मातादीन के कंठ से एक शब्द भी न निकल पाया, और वह पृथ्वी पर गिरने के पहले ही अपने प्रतिशोध की अग्नि में स्वयं भस्म हो गए। अनूपकुमारी पिशाचिनी की तेज़ी से उनके विद्ध हृदय से रक्त-रंजित छुरा निकालकर स्वामी गिरिजानंद की ओर तड़पी, मगर पुलिस के जवानों ने उसे पकड़ लिया। सिंहिनी की भाँति उसने दूसरा वार सबसे पहले पकड़नेवाले कांस्टेबिल पर किया, जो गर्दन में वार खाकर धराशायी हुआ। दूसरे कांस्टेबिलों ने उसे पकड़कर उस घातक कटार को उसके हाथ से छीन लिया। यह सब क्षण-मात्र में घटित हो गया।

अनूपकुमारी ने पास ही निर्जीव पड़े हुए बाबू मातादीन के शरीर को ठुकराते हुए कहा—"दोज़ख़ी कुत्ते, तू अपनी गति को पहुँच गया, अब मुझे मरने में संतोष है। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि तेरे कलेजे के रक्त से अपनी कटार को स्नान कराऊँगी, वह पूर्ण हो गई।"

यह कहकर वह भीषणता के साथ हँस पड़ी। उसकी पैशाचिक हँसी की प्रतिध्वनि उसके विवाह-मुहूर्त का परिहास करने लगी। बाबू मातादीन के शव की निष्प्रभ, अधखुली आँखें अब भी द्वेष के भाव से परिपूर्ण उसकी ओर देख रही थीं।

---

(१६)

प्रसन्नता का समुद्र अपने छोटे-से उर में छिपाए हुए मालती ने तेज़ी के साथ आभा के कमरे में प्रवेश किया। आभा [illegible] का पत्र पढ़ने में संलग्न थी, उसने चौंककर पीछे देखा, और मालती को देखकर प्रसन्न मुख से बोली—"आइए, मैं मुबारकबादी के लिये स्वयं आपकी ख़िदमत में हाज़िर होनेवाली थी; ख़ैर, यह बड़ा अच्छा हुआ कि आप स्वयं पधार गईं। मैं आपको हृदय से बधाई देती हूँ।"

मालती ने हँसते हुए कहा—"दुनिया का क़ायदा है कि प्यासा कुएँ के पास जाता है, न कि कुआँ प्यासे के पास। बधाई मुझे देना है, न कि आपको। आपको धन्यवाद देने के पहले मैं आपसे पूछती हूँ कि आप मुझे किस बात की बधाई देती हैं?"

आभा ने मंद मुस्कान के साथ कहा—"आप मुझे बधाई देने के लिये आई हैं। ऐसा कौन मैंने दिल्ली का क़िला फ़तह किया, जो आपको बधाई देने के लिये कष्ट करना पड़ा! अच्छा, आप ही बताइए, आप किस वास्ते बधाई दे रही हैं?"

आभा ने संकुचित होकर कहा—"अभी तक आपके ससुर साहब के दिल में कुछ मलाल था, लेकिन वह अब साफ़ हो गया है। इधर अनूपकुमारी की भी सब चालें व्यर्थ गईं, और आज वह हत्या के अपराध में गिरफ़्तार है।"

मालती ने शोक के साथ कहा—"अनूपकुमारी के लिये मुझे बड़ा दुःख है। वह पागल हो गई है। आज अभी उससे मिलने के लिये जेल गई थी। उसकी हालत देखकर मेरी आँखों में आँसू आ गए। उसने हममें से किसी को नहीं पहचाना। हमें देखकर कहने लगी—'मेरा राज्य मुझसे छीनने आई हो, मातादीन को तो यम-लोक पहुँचा दिया है, अब तुम्हें भी वहाँ का रास्ता दिखाऊँगी। अनूपगढ़ मेरा है, मेरे पृथ्वीसिंह का है। मैं संसार की महारानी हूँ, एक छोटा अनूपगढ़ क्या, पृथ्वीसिंह को संसार का राज्य दिला-ऊँगी।' उसकी कौन-कौन बात कहूँ। वह तो कभी रोती है, कभी हँसती है, और कभी चीत्कार करती है। उसका पतन देखकर मुझे बड़ा तरस आता है।" कहते-कहते मालती की आँखें घुचघुचा आईं।

आभा ने भी दुःखित होकर कहा—"ईश्वर सुख दिखाकर दुःख कभी न दिखावें, बस, यही प्रार्थना है। रानी होकर भिखारिनी होने का दुःख वही जानता है, जिस पर बीतती है।"

मालती ने कहा—"मैं उसे हृदय से क्षमा करती हूँ, और ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वह भी उसे क्षमा करें।"

आभा ने पूछा—"यह तो बताइए, आप किस बात की बधाई दे रही थीं?"

मालती ने मुस्किराते हुए कहा—"आज प्रोफ़ेसर साहब बाबूजी के पास आए थे, और वह तुम्हारे विवाह के विषय में बातें कर रहे थे। आगामी महीने में भारतेंदु बाबू से तुम्हारा विवाह हो

जायगा, इसके लिये तुम्हारे ससुरजी की भी ताकीद आई है, और उन्हें बुलाने के लिये एयर-मेल से पत्र भी भेज दिया है।"

आभा ने अपने हृदय का भाव छिपाते हुए कहा—"यह असंभव बात है। मैं तो तुमसे सब हाल कह चुकी हूँ, फिर भी तुम ऐसा कहती हो।"

मालती ने मुस्किराकर कहा—"यह ठीक है, पर तुम्हारे विवाह की बात पक्की हो गई है। प्रोफ़ेसर साहब ने एक दिन बाबूजी से कहा था कि वह भारतेंदु बाबू से इस विषय में बातचीत कर उनका विचार स्पष्ट रूप से जान लें। यह बात बाबूजी ने अम्मा से कही, और उन्होंने यह भार 'उन्हें' सौंप दिया, क्योंकि यह उनके समवयस्क हैं।"

आभा ने मुस्किराती हुई आँखों से पूछा—"'उन्हें' किन्हें? साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहतीं?"

मालती ने हँसकर कहा—'यह देखो, खुद तो विवाह करने के लिये जी खोए दे रही हैं, और मुँह से कहती हैं, कि मैं भारतेंदु बाबू से विवाह न करूँगी, और उन्हें भी जन्म-भर कुँवारा ही रक्खूँगी। अब मुझे सारा भेद मालूम हो गया है, तुमने मुझसे बहुत बातें छिपाई हैं। खैर, मौक़ा आने पर समझ लूँगी।"

आभा ने कनखियों से हँसते हुए कहा—"ख़ैरियत इतनी हुई कि वह तुम्हारे सामने रोए नहीं।"

मालती और आभा, दोनो हँसने लगीं।

इसी समय बाहर मोटर आने का शब्द सुनाई दिया। मालती उत्सुकता से बाहर जाने लगी। आभा ने उसे पकड़ते हुए कहा—"कुँवर साहब नहीं हैं, इतनी उतावली क्यों होती हो।"

मालती ने हाथ छुड़ाते हुए कहा—"जाने दो, शायद भावी वर अपनी भावी वधू से अपने अपराधों के लिये माफ़ी माँगने आया हो।"

इसी समय कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह के साथ भारतेंदु उस कमरे के सामनेवाले बरामदे में आते हुए दृष्टिगोचर हुए।

मालती ने आभा से कहा—"मैं कहती थी कि भारतेंदु बाबू ही हैं।"

आभा वहाँ से जाने के लिये उद्योग करने लगी।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"बिना बुलाए जो घर पर आता है, उसका सत्कार इसी भाँति किया जाता है। आप क्यों जाती हैं, मैं ही यहाँ बेगाना हूँ, इसलिये मैं ख़ुद चला जाऊँगा, आप तकलीफ़ न करें।"

आभा के पैर आगे न उठे। उसने झिझकते हुए कहा—"मालती से मैं अभी कहती थी कि कुँवर साहब ही तशरीफ़ लाए हैं। आइए, पधारिए, आज पधारकर यह घर पवित्र कर दिया।"

मालती ने कहा—"क्यों झूठ बोलती हो, तुमने तो व्यंग्य में कहा था कि कुँवर साहब नहीं हैं, क्यों उतावली होती हो। अब बातें बनाने लगीं।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने सोफ़े पर भारतेंदु को बैठाते हुए कहा—"आप यहाँ विराजिए, यह आपका घर है। आपके आने की मनाही

नहीं; 'बिना आज्ञा प्रवेश मत करो', यह आज्ञा तो हमारे ही लिये है। आप तो विशेषाधिकार-प्राप्त माननीय व्यक्तियों में हैं।"

भारतेंदु ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"यह विशेष अधिकार दिलाने का श्रेय तो आपको या हमारी चतुर महपालिका प्रातःस्मरणीया श्रीमती मालतीदेवी को प्राप्त है।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने हँसकर कहा—"इस गौरव के लिये मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ। परंतु आपकी महपालिका इस आदरणीय पद के योग्य हैं या नहीं, इसका निर्णय तो श्रीमती आभादेवी ही करेंगी।"

आभा ने मालती को दूसरे सोफ़े पर बैठाते हुए कहा—"कुँवर साहब तो ज़बरदस्ती दूसरे के प्राप्य को हड़प जाने में विशेष रूप से चतुर मालूम होते हैं, किंतु उन्हें भी यह जान लेना चाहिए कि जब अगले चुनाव में हमारी प्रिय सखी [illegible] [illegible] कर एसेंबली की माननीय सदस्या होंगी, तब पुरुषों की ऐसी धींगाधींगी को समूल नष्ट करने के लिये कई क़ानून बनवा देंगी, और पुरुषों के अधिकार समूल नष्ट हो जायँगे. स्त्री-जाति की गुलामी करनी पड़ेगी।"

मालती ने तुरंत ही उत्तर दिया—"बेशक, उस वक्त क़ानून के आगे पूर्व-जन्म के प्रेम की दुहाई भी कहीं नहीं सुनी जायगी, और इस सुख-स्वप्न को हमेशा के लिये बंद करना होगा।"

मात्र है। भारतेंदु बाबू का भाग्य देखकर किसी भी मनुष्य के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हो सकती है।"

भारतेंदु ने काँपे हुए स्वर में कहा—"मैं तब क्या सचमुच इतना भाग्यशाली हूँ? लेकिन मेरा तो ख़याल था कि ईश्वर के यहाँ, जब भाग्य बँट रहा था, तब जल्दी में मैं कोई बर्तन न मिलने से चलनी ही लेकर चल दिया था, और उससे सब भाग्य छनकर बह गया, जिससे मैं भाग्य-हीन हूँ। जब श्रीमती मालतीदेवी स्त्रियों की गुलामी करने का क़ानून बनवाएँगी, तब तो अभी से उसका अभ्यस्त होना चाहिए, वरना उस वक़्त तो बड़ी मुश्किल दरपेश आएगी, और तलाक़ मिलने का प्रबंध किया जायगा।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"जनाब, उस आड़े वक़्त में पूर्व-जन्म का प्रेम ही काम आएगा, बाक़ी इस जन्म के प्रेमवालों की तो यही शोचनीय दशा होगी। मगर आपको तो कोई डर नहीं, भय तो मुझे है।"

यह कहकर वह हँस पड़े। मालती कट गई, और आभा प्रसन्नता से खिल उठी। भारतेंदु ने उस हँसी में योग दिया।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"इन बातों से काम नहीं चलेगा, अब आप यह बताइए, हम लोग मिठाई की कब उम्मीद करें?"

भारतेंदु ने हँसते हुए उत्तर दिया—"जब श्रीमती मालतीदेवी एसेंबली की मेंबर होकर ऐसा क़ानून बनाएँगी।"

मालती ने उत्तर दिया—"अभी तो पूर्व-जन्म के प्रेम की मिठाई खानी है। जब वह समय आएगा, तब मैं ख़ुद खिला दूँगी, आप लोगों की तरह बहाने नहीं बनाऊँगी।"

भारतेंदु ने कहा—"उसके लिये तो तक़ाज़ा आप अपनी सखी से कर सकती हैं, क्योंकि यह बात तो आपके और उनके बीच की है।"

मालती ने हँसते हुए उत्तर दिया—"हमारी मन्त्री कौन, आभा-देवी कि मिस अमीलिया जैकसन?"

आभा सवेग हँस पड़ी, और भारतेंदु लज्जित होकर चुप रहे।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"जनाब, आप तो हैं बड़े भाग्यवान्, दो-दो शिकार करना आपके ही नसीब में है, फिर भी शिकायत है कि मैं भाग्य-हीन हूँ! मिस अमीलिया जैकसन का रहस्य तो आपने छिपा ही रक्खा।"

भारतेंदु उद्विग्न हो उठे। उनका चेहरा लाल हो गया।

इसी समय डॉक्टर नीलकंठ का कंठ-स्वर सुनाई दिया।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"प्रोफ़ेसर साहब आ गए। अब किसी दूसरे दिन यह किस्सा सुनेंगे।"

आभा और मालती दूसरे कमरे में चली गईं, और कुँवर कामेश्वरप्रसाद भारतेंदु के साथ डॉक्टर नीलकंठ के पास चले गए।

उन्हें देखकर उन्होंने कहा—"आज देवीजी को बुलाने के लिये तार भेज दिया है।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"सुबह तो आप बाबूजी से कह रहे थे कि एयर-मेल से पत्र भेजेंगे?"

लिये बाहर के कमरे में चले गए। कुँवर कामेश्वरप्रसाद भारतेंदु की ओर देखकर मुस्किराए, और कहा—"कहते हैं, फूल-माला के साथ तुच्छ सूत भी देवताओं के सिर चढ़ जाता है।"

भारतेंदु हँसने लगे, फिर कहा—"क्या गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद हँसने लगे।

---

(२०)

आभा और भारतेंदु का विवाह निर्विघ्न समाप्त हो गया। पंडित मनमोहननाथ हवाई जहाज़ से विवाह-तिथि के एक सप्ताह पूर्व पहुँच गए थे, और इतने ही दिनों में उन्होंने सब प्रबंध कर लिया था। यद्यपि विवाह-समारोह में किसी प्रकार की कमी न रक्खी गई थी, फिर भी सजावट सादी थी। नगर के सभी प्रमुख व्यक्ति निमंत्रित थे। डॉक्टर नीलकंठ ने भी इनका सत्कार करने में कुछ उठा न रक्खा था।

किंतु अब वह इस शरीर-संबद्धित भावों से परे है। एक दिन था, जब मुझे केवल कुछ घंटों के लिये तुम्हारा वह रूप देखने को मिला था, परंतु मेरे अभाग्य से वह भाव एक जन्म के लिये पुनः नष्ट हो गया। आभा तुम्हें प्राणों से प्रिय थी, आज उसे भी अपने हाथ से सदा के लिये खो दिया है। अब मेरा उस पर कोई अधिकार नहीं, किंतु संतोष इस बात का है कि वह सदैव तुम्हारे पास रहेगी......"

उन्होंने पद-शब्द सुनकर पीछे देखा, और नवदंपति को देखकर अश्रुओं को पोंछ डाला। आभा उनके मन की व्यथा जान गई। उसकी भी आँखों से अश्रु उमड़ने लगे। वह दौड़कर अपने पिता के कंठ से चिपट गई। पिता का हृदय हज़ार रोकने पर भी रुदन करने लगा। भारतेंदु के भी नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए।

आभा ने सिसकते हुए कहा—"पापा,......"

इसके आगे वह न कह सकी।

डॉक्टर नीलकंठ ने सिसकते हुए कहा—"बेटी, आभा......"

इसके आगे वह भी न कह सके।

थोड़ी देर बाद, आवेग शांत होने पर, उन्होंने कहा—"आभा, आज से तेरे ऊपर मेरा कोई अधिकार नहीं; तू पराई हो गई। लेकिन अभागे पिता को भूल मत जाना।"

कहते-कहते उनके आँसू पुनः प्रवाहित होने लगे।

भारतेंदु ने नत होकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—"यह आपका भ्रम है। अधिकार आपका नष्ट नहीं हुआ, वरन् अपनी सेवा के लिये आपने मुझे भी आबद्ध कर लिया। हम लोग पराए न होकर आपके और निकट आ गए हैं।"

डॉक्टर नीलकंठ का हृदय पुत्र-प्रेम से प्लावित हो गया। उन्होंने भारतेंदु के सिर पर हाथ रखते हुए कहा—"तुम्हारे इन गुणों के कारण ही मैंने तुम्हें अपना पुत्रस्थानीय बनाया है।"

फिर आभा की माँ सावित्री के तैल-चित्र की ओर संकेत करते हुए कहा—"तुम दोनों इस स्वर्गीया देवी को प्रणाम करो, जिसके आशीर्वाद से तुम्हारा कल्याण होगा।"

नवदंपति ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। डॉक्टर नीलकंठ को ऐसा मालूम हुआ कि उस चित्र में आत्मा का प्रवेश हो गया है, और वह प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दे रही है।

दंपति पुनः उन्हें प्रणाम करने के लिये भूमिष्ठ हुए। उन्हें सप्रेम उठाते हुए उन्होंने कहा—"मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि तुम दोनों के जीवन का विकास शुभ, समृद्धि और शांति के साथ आरंभ हो। तुम्हारा विकसित जीवन दूसरों के लिये आदर्श हो, और तुम दोनों एक कार्य-मन-वाचा से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करो।"

इसी समय राधा और गंगा वर-वधू को ढूँढ़ती हुई वहाँ आ गईं। आभा के विवाह की खुशी में गंगा का शारदा कानून छूट गया था।

फिर आभा की मा के चित्र की ओर देखते हुए कहा—"आभा की ओर से मैं आज विमुक्त हुआ। उसके सुखी करने का भार अब तुम वहन करो।"

निर्जीव चित्र मुस्किराने लगा। वह मुग्ध होकर उस शांत तथा स्नेह-प्लावित मुस्किराहट को देखने लगे।

का पूर्ण भार आप लोगों को सौंप रहे हैं। एक बार पुनः मैं आप लोगों से क्षमा-प्रार्थना करता हूँ। इति।

स्नेही
भारतेंदु"

पत्र समाप्त कर डॉक्टर हुसैनभाई ने आश्चर्य के साथ कहा—"मैं नहीं समझता कि क्यों वह बार-बार क्षमा माँगते हैं। उनका क्या अपराध है ?"

अमीलिया ने हास्य-भरी आँखों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"यदि मैं उनका अपराध बता दूँ, तो क्या तुम उन्हें क्षमा कर दोगे ?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने गंभीरता से कहा—"तुम्हारे कहने की आवश्यकता नहीं, मैं उन्हें पहले ही क्षमा कर चुका हूँ। उन्हें क्षमा करके तुमसे प्रेम किया है। मानव-हृदय कमज़ोरियों का समूह-मात्र है। उससे अपराध न होना अवश्य ही असंभव है, और अपराध होना उसके मनुष्य होने का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। प्रियतमे, जब तुमने उन्हें क्षमा कर इतनी मनोवेदना सहन की है, जिसके वह अपराधी हैं, तब मैं उन्हें क्यों नहीं क्षमा करूँगा। मैं उन्हें हृदय से क्षमा करता हूँ, और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह ऐसा अपराध फिर कभी न करें।"

अमीलिया हर्ष से उन्मत्त होकर उनके हाथ पकड़कर अपने प्रेम की गरमी से उत्तप्त करने लगी। मीनकेतन संध्या की लालिमा में अपने को छिपाकर अपने पुष्प-धनुष पर पुष्पों का बाण चढ़ाने लगा। डॉक्टर हुसैनभाई ने अमीलिया को आवेग के साथ अपने हृदय से लगाते और प्रेम-चिह्न अंकित करते हुए कहा—"प्रियतमे !"

अमीलिया ने आज अपने विवाह के बाद पहलेपहल उनके प्रेम-चिह्नों का प्रत्युत्तर देते हुए कहा—"प्रियतम।"

भगवान् मीनकेतन के परमबंधु चंद्रदेव पूर्व-दिशा के वातायन से झाँककर यह प्रेम-सम्मिलन देखकर हँस पड़े। उनकी धवल किरणें विरह में बेसुध लहरों को गुदगुदाकर प्रबुद्ध करने की चेष्टा करने लगीं।

अमीलिया ने अपना सिर उनके विशाल वक्षःस्थल में छिपाते हुए कहा—"तुम मुझे अब तक पागल समझ रहे थे!"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उसका सिर सूँघते हुए कहा—"नहीं, तुम्हारे उन्नत हृदय की मन-ही-मन प्रशंसा कर रहा था। तुम्हारी-जैसी स्त्री पाकर मेरे मानव-जीवन का विकास शुरू हुआ है।"

अमीलिया ने उनकी आँखों की ओर देखते हुए कहा—"नहीं, सच तो यह है कि हमारे और तुम्हारे जीवन का विकास आज से प्रारंभ होता है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल उसे अपने आलिंगन-पाश में आबद्ध कर लिया।

पूर्वीय क्षितिज से भगवान् चंद्रदेव अपनी किरणों से मुस्कुरा-मुस्कुराकर उनके जीवन को विकसित करने लगे, और ज्यूरिचलेक की छोटी-छोटी लहरें नवदंपति तक पहुँचने में असमर्थ होकर अपना आनंद नाव के तल से टकरा-टकराकर प्रकट करने लगीं। चंद्रमा हँस-हँसकर उन्हें उत्साहित करने लगा।